प्रकृति, पुरुष तथा परमात्मा
का
अविनाशी नाटक

प्रकृति, पुरुष तथा परमात्मा
का
अविनाशी नाटक

भाग-एक

(अंग्रेजी में मूल ग्रंथ 'दि एटरनल वर्ल्ड ड्रामा पार्ट-1' का हिन्दी भाषा में अनुवाद)

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय

पाण्डव भवन, आबू पर्वत, राजस्थान, भारत

लेखक :
राजयोगी ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र हसीजा

पुस्तक मिलने का स्थान :
साहित्य विभाग
पाण्डव भवन, **आबू पर्वत-307 501**

मुद्रक :
ओम् शान्ति प्रैस,
शान्तिवन, **आबू रोड-307 026**

कापी राइट :
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय,
पाण्डव भवन, आबू पर्वत-307 501
राजस्थान, भारत

प्राक्कथन

ज्ञान के मंथन की प्रक्रिया आरम्भ करने का एक छोटा-सा प्रयास

इस पुस्तक के लेखक के मन में बहुत दीर्घ काल से यह भावना रही है कि यदि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के निष्कर्षों पर निष्पक्ष रूप से तथा किसी भी प्रकार की 'भौतिकवादी उप-धारणाओं' (Materialistic presumptions) तथा 'विकासात्मक अभिनति' (Evolutionary Bias) के बिना विचार किया जाय और साकल्यवादी रीति (Holistic manner) से उन्हें सह-सम्बद्ध (correlate) करते हुए उनका अध्ययन किया जाय तो वे विश्व, समय-चक्र, विश्व-इतिहास तथा स्व-अभिज्ञ मन (self-aware mind) या आत्मा सम्बन्धी ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान का समर्थन करेंगे। चूंकि प्राकृतिक विज्ञान का लक्ष्य भौतिक क्षेत्र में तथा आध्यात्मिक ज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक तथा सामाजिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में सत्य को खोजना है और चूंकि पदार्थ तथा मन या शरीर तथा आत्मा एक-दूसरे पर अन्त:क्रिया करते हैं, अत: लेखक ने यह सोचा कि वैज्ञानिकों तथा अध्यात्मवादियों को मिल-जुलकर ऐसे विषयांगों पर चर्चा करनी चाहिए जो कि दोनों के लिये रुचिकर हो, ताकि 'स्व' (self), जगत् तथा विश्व-वृत्तान्तों का तथा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही प्रकार के समग्र सत्य का एक सशक्त तथा संगत रीति से सुग्रथित, सम्बद्ध तथा स्पष्ट अवबोध प्राप्त हो सके।

तथापि, लेखक को यह अनुभव हुआ कि उसने यह उपक्रम आरम्भ करने का कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है। किन्तु अन्य लोगों के साथ विचारों के आदान-प्रदान की उसकी इच्छा और 'स्व', त्रैलोक्य तथा विश्व-इतिहास के स्वरूप से सम्बन्धित उसके स्वयं के अवबोध ने उसे इस दिशा में कुछ करने के लिये प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त, अनेक देशों में विभिन्न विद्या-शाखाओं में पारंगत विद्वानों के साथ लेखक ने जो चर्चायें कीं, उन चर्चाओं ने उनसे उसे यह

जोखिम (Risk) उठाने का कुछ आत्म-विश्वास प्राप्त हुआ चाहे जोखिम जितनी भी बड़ी हो, क्योंकि उसने सोचा कि इससे कम-से-कम उन कुछ अन्य व्यक्तियों को, जो कि अधिक ज्ञान-सम्पन्न हैं, भविष्य में ज्ञान के प्रसार के हित में कोई अधिक सफल उपक्रम करने की प्रेरणा मिलेगी। इसलिये, सेवा की अभिप्रेरणा से, अन्ततः लेखक ने अपनी योजना आरम्भ की। यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि लेखक विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में पारंगतता का दावा नहीं करता। अधिक-से-अधिक वह यह दावा कर सकता है कि उसने ब्रह्माकुमारी संस्था में इस महान आन्दोलन के संस्थापक से कुछ वर्षों तक कुछ आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है तथा विज्ञान की कुछ शाखाओं का एक निष्पक्ष, 'प्रारम्भिक श्रेणी का' अध्ययनशील छात्र तो वह रहा है। इसलिये, वह विनम्रतापूर्वक यह निवेदन करता है कि इस पुस्तक को ज्ञान के मंथन का कार्य आरम्भ करने के एक छोटे-से प्रयास में वह अन्य लोगों को निमन्त्रित करता है।

इस पुस्तक की सामग्री, जिसे पाँच भागों में प्रकाशित करने की आयोजना थी, अनेक वर्षों की कालावधि में विभिन्न स्रोतों से संग्रहीत की गई। लेखक ने सैंकड़ों पुस्तकों से और पत्रिकाओं से सहायता ली है, किन्तु चूँकि, मूलतः, उसे यह कल्पना नहीं थी कि वह किसी दिन उस सामग्री को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करेगा, बल्कि वह स्वयं अपनी समझ को बढ़ाने और निखारने के लिये अध्ययन कर रहा था, इसलिये उसने कहीं-कहीं, उन लेखकों और उनकी रचनाओं के नाम नहीं लिखे, जिन्हें उसने पढ़ा था। इसके अतिरिक्त, उसने जो अन्य पुस्तकों या पत्रिकाओं से जब पंक्तियाँ या टिप्पणियाँ लीं, उनमें से कुछ पंक्तियाँ या टिप्पणियाँ स्रोत-पुस्तक के लेखक की पंक्तियों की शब्दशः प्रतिलिपि थीं, जबकि अन्य पंक्तियाँ, भाव या टिप्पणियाँ उसके अपने ही शब्दों में थीं। इतने समय के पश्चात् लेखक अपनी नोट-बुक या टिप्पणी-पुस्तक के कई खण्डों और अंशों के मामले में यह स्मरण नहीं रख पाया कि वे उसके अपने शब्दों में थे या स्रोत-पुस्तक के लेखक के शब्दों में और उस पुस्तक का लेखक कौन था और किस स्रोत-पुस्तक से वह अंश लिया गया था। इसलिये ऐसी

सामग्री का उपयोग करते हुए लेखक को बहुत झिझक हो रही थी, क्योंकि उसे भय था कि यदि जानकारी के उन अंशों का उपयोग किया जायेगा तो पुस्तक में उन लेखकों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख नहीं होगा। तथापि, लेखक ने सोचा कि यह सामग्री मूल्यवान है तथा उस विद्या-शाखा से भली-भान्ति परिचित लोगों को कुछ तो ज्ञात भी हो ही चुकी है तथा वह पाठकों के लिये भी बहुत लाभप्रद होगी, उस ने इस एहसास की वजह से अपने संकोच पर विजय पाई। किन्तु वह पूर्ण निष्ठा से उन लेखकों से क्षमा-याचना करता है, जिनके प्रति वह आभारी है, किन्तु ऊपर-उल्लिखित परिस्थितियों में जिनके नामों का उल्लेख वह नहीं कर सका है।

इस पुस्तक का मुद्रण कार्य वर्ष 1976 में आरम्भ किया गया था। किन्तु उसके कुछ पृष्ठों का मुद्रण हो जाने के पश्चात् कुछ अपरिहार्य कारणों से लेखक ने उसके मुद्रण का कार्य स्थगित कर दिया, जिनमें से एक कारण यह था कि वह अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त था। यद्यपि, आलेख का अधिकांश तैयार था, तथापि कुछ सन्दर्भों का अद्यतनकरण (Up-dating) आवश्यक समझा गया और इसलिये उसके अगले अंशों को मुद्रणालय में मुद्रण के लिये भेजने के पूर्व पुस्तक को अन्तिम रूप से पढ़ना आवश्यक समझा गया। इसके लिये न तो समय था और न ही उचित पर्यावरण था। मुद्रण का कार्य हाल ही में और अकस्मात् साढ़े छह वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् पुनः आरम्भ किया गया। यद्यपि इस कार्य में बहुत विलंब हो चुका था, फिर भी पुस्तक अन्ततः प्रकाशित हो गयी है। मुझे इस तथ्य के अतिरिक्त एक अन्य तथ्य से भी सांत्वना मिलती है कि इस पुस्तक के अनेक अध्याय 'वर्ल्ड रिन्युअल' के विभिन्न अंकों में अन्तर्वती अवधि में प्रकाशित हुए।[1]

पूर्वतर वर्ष 1975 में, लेखक ने अपनी कुछ रचनाओं में, जैसा कि वह तब समझता था, यह कहा था कि आत्मा एक अनन्त सूक्ष्म अन्तर्विवेकशील प्रकाश-

1. देखिये वर्ष 11, क्रमांक 3-4 तथा 5-6, अगस्त-सितंबर तथा अक्टूबर-नवंबर, 1980 तथा विभिन्न अन्य अंक।

बिन्दु है, जो कि अधश्चेतक-पियूष संयोजन (Hypothalamus-Pituitary combine) में निवास करती है। उदाहरणार्थ, उसने इसका उल्लेख महाभारत तथा गीता सम्बन्धी एक पुस्तक के एक अध्याय की पाद टिप्पणी (footnote) में स्पष्ट किया था।[2] अपनी अन्य पुस्तक में, जो कि ब्रह्मचर्य पर लिखी गई थी, लेखक ने एक आकृति प्रकाशित की थी, जिसमें अधश्चेतक (Hypothalamus) तथा पियूष ग्रंथि (Pituitary) की स्थिति दर्शाई गई थी और साधारण हिन्दी पाठकों के लिये हिन्दी भाषा में स्पष्ट किया था कि काम वासना के विचार किस तरह पियूष ग्रंथी को सक्रिय होने के लिये प्रेरित करते हैं और अन्ततः अपने स्रावों के ज़रिये गोनैडों (Gonads) को स्रावित होने के लिये प्रभावित करते हैं।[3] तथापि, चूंकि ये पुस्तकें आत्मा के निवास स्थान के प्रश्न पर विस्तार पूर्वक चर्चा करने के लिये नहीं लिखी गयी थीं और क्योंकि ये पुस्तकें एक भिन्न प्रकार के पाठकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये लिखी गई थीं, इसलिये लेखक ने मन-शरीर सम्बन्ध (Mind-body relationship) तथा आत्मा-शरीर अन्तःक्रिया (Soul-body inter-action) के विषय पर तन्त्रिका-विज्ञानों, जीव-विज्ञानों तथा मनोविज्ञान के निष्कर्षों के प्रकाश में चर्चा नहीं की थी। इसलिये, अन्य प्रवर्ग के पाठकों के लिये लेखक ने 1976 में इस पुस्तक का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसे कि भारी व्यस्तता के कारण स्थगित कर देना पड़ा। किन्तु, यह एक सुखमय संयोग है कि इस छोटे-से उल्लेख ने भी कुछ अन्य लोगों को इस विषय पर सोचने के लिये प्रेरित किया और इससे ज्ञान का प्रसार हुआ, क्योंकि उसके पश्चात् चिकित्सा-विज्ञानों के क्षेत्रों में अत्यन्त उच्च अर्हता प्राप्त अनेक व्यक्तियों ने अपने लेखों में उसका उल्लेख किया जिसके आरम्भ बिन्दु का मूल संकेत उपर्युक्त पुस्तकों तथा *'वर्ल्ड रिन्युअल'* में प्रकाशित लेखों द्वारा प्रदान किया गया था। लेखक के लिये यह बात कम प्रोत्साहक नहीं है।

---

2. *पुस्तक 'महाभारत और गीता का सच्चा स्वरूप और सार' के पृष्ठ 448 की पाद टिप्पणी देखिये।*
3. *'ब्रह्मचर्य व्रत का पालन' पृष्ठ 179, 191 तथा 192.*

प्रकाशनार्थ आयोजित पाँच ग्रंथ-खण्डों में से प्रथम ग्रंथ-खण्ड में मुख्यत: चेतना, विचार, मन या आत्मा पर चर्चा की गई है और यह प्रयास यह सिद्ध करने के लिये किया गया है कि एक अभौतिक आत्मा है जो अधश्चेतक में निवास करती है, जो कि तन्त्रिका तन्त्र (Nervous system) तथा शरीर के साथ उसके संयोजन (Conjunction) का बिन्दु है। लेखक ने इस विषय पर तन्त्रिका-विज्ञानों (neuro-sciences), मस्तिष्क-विज्ञानों (Brain sciences) आदि के दृष्टिकोण की इस विषय पर कुछ अधिक चर्चा की गयी है। प्रारम्भ में लेखक का विचार था कि कुछ और अध्याय भी हों क्योंकि लेखक धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण से भी कुछ सामग्री शामिल करना चाहता था। किन्तु, छोटे आकार को अधिमान (Preference) देते हुए यह विचार बाद में त्याग दिया गया।

द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ग्रंथ-खण्डों (Volumes) के कुछ अध्याय, जिनमें क्रमश: विश्व, समूचा मण्डल (Cosmos) तथा विश्व-इतिहास दर्शन अथवा इतिहास-निर्वचन (interpretation of World History), परमात्मा तथा राजयोग पर चर्चा होगी तथा निष्कर्षों का समाहार (conclusions and summary) किया जायेगा, उन आगामी खण्डों के भी कई अंश *'वर्ल्ड रिन्यूअल'* के कुछ अंकों में लेखों के रूप में प्रकाशित हुए हैं, किन्तु अनेक अन्य अध्याय प्रकाशित नहीं हुए हैं। इस प्रथम ग्रंथ-खण्ड के पश्चात् द्वितीय ग्रंथ-खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित होगा। हम यह आशा करते हैं कि अन्य ग्रंथ-खण्डों के प्रकाशन में भी बहुत अधिक समय नहीं लगेगा।

इस पुस्तक के प्रथम भाग के उद्देश्य यह दर्शाना है कि 'मैं' शब्द मस्तिष्क या शरीर का वाचक नहीं है और 'मन' मस्तिष्क (brain) ही की अभिव्यक्ति का नाम नहीं है बल्कि 'मन' आत्मा ही की विचार या अनुभव शक्ति की अभिव्यक्ति का वाचक है। वास्तव में 'स्व' (self) को शरीर (body) मान लेना तो सभी बुराइयों तथा पीड़ाओं का मूल है। यह सिद्ध करने की कोशिश करने के पश्चात् कि आत्मा का अस्तित्व है और यह स्पष्ट करने के पश्चात् कि आत्मा अभौतिक (metaphysical), अमर, व्यष्टिक (individual) है और अन्तर्विवेकशील प्रकाश का एक अनन्त सूक्ष्म बिन्दु है, लेखक ने अन्त में यह स्पष्ट किया है कि 'स्व' को

शरीर मान लेने से कैसे अनेक व्यक्तिगत, सामाजिक तथा वैश्विक समस्याओं का निर्माण हुआ है और आगे यह भी स्पष्ट किया है कि कैसे आत्म-सचेतना (soul-consciousness) से या राजयोग से अब आत्मा स्वास्थ्य तथा सुख प्राप्त करने योग्य बन सकती है। यदि इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् कम-से-कम कुछ पाठकों को यह विश्वास हो जाये कि आत्मा का अस्तित्व है तथा यदि वे राजयोग का अभ्यास करने लगें तो लेखक यह समझेगा कि उसके कार्य का प्रयोजन बहुत कुछ पूरा हुआ है।

लेखक शिव बाबा एवं ब्रह्मा बाबा को और आबू पर्वत में स्थित ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय की उन अनेक वरिष्ठ बहनों को, जो कि उसके आध्यात्मिक ज्ञान तथा प्रशिक्षण के मुख्य स्रोत रहे तथा जिनके प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन के कारण यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी, हार्दिक धन्यवाद देता है। भारत में और विदेशों में रहने वाले उन व्यक्तियों को भी वह हार्दिक धन्यवाद देता है, जो कि वार्तालाप के दौरान मुझे यह सुझाते रहे हैं कि आत्मा-सम्बन्धी इस जानकारी को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाय।

1 जनवरी, 1983

ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र
19/17, शक्ति नगर
दिल्ली - 110 007

पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के बारे में दो शब्द

चिरकाल से इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के लिये काफ़ी मांग थी । आज से काफ़ी पहले इसका हिन्दी अनुवाद हो भी चुका था । परन्तु हिन्दी अनुवाद में कई शब्द ऐसे थे जिन्हें साधारण हिन्दी जानने वाले लोग सहज ही नहीं समझ सकते थे । इस में कई शब्द ऐसे थे जो अंग्रेज़ी के ठीक अनुवाद तो थे परन्तु वे इतने प्रचलित नहीं थे कि लोग उन्हें झट से समझ सकें । वे पारिभाषिक (Technical) शब्द थे । अतः अनुवाद को दो-तीन बार इसलिये पढ़वाया गया कि या तो उन पारिभाषिक शब्दों के साथ अंग्रेज़ी भाषा के शब्द भी दे दें क्योंकि आजकल आम बोल चाल में लोग अंग्रेज़ी के उन शब्दों को हिन्दी के शब्दों की तुलना में अधिक सुगमता से समझ सकते हैं । उदाहरण के तौर पर वे 'तन्त्रिका-तन्त्र' की बजाय "nervous system" शब्द को अधिक जल्दी समझते हैं ।

इस विधि को अपनाने के बावजूद भी कई जटिल शब्द अभी भी हैं । उदाहरण के तौर पर *"interpretation of history"* के लिये प्रयोग किया गया *'इतिहास-निर्वचन'* शब्द जटिल है । परन्तु यदि सारे परिच्छेद को पढ़ा जाय तो प्रायः सब समझ में आ जाता है । **फिर, इस पुस्तक में कुछेक अध्याय ऐसे हैं जिन में विज्ञान का या पारिभाषिक शब्दों का ज़्यादा प्रयोग नहीं है । अतः वे जल्दी ही समझ में आ जाते हैं और बहुत उपयोगी भी हैं । पुस्तक के दूसरे खण्ड (Section II) के पहले 5 अध्यायों, अर्थात् क्रमांक 15 से 19 तक के अध्यायों तथा तीसरे खण्ड (Section III) के क्रमांक नं0 29 से 33 तक के पाँच अध्यायों को छोड़ कर बाकी सभी अध्याय सहज ही समझ में आ सकते हैं । अतः पाठक उन अध्यायों को तो अवश्य पढ़ें । उस से उन्हें बहुत जानकारी मिलेगी ।**

पाठकों से निवेदन है कि यदि पढ़ते समय वे ऐसा महसूस करें कि हिन्दी में फ़लां शब्द की बजाय अमुक शब्द प्रयोग किया जाता तो अधिक सहज और सुबोध होता, तो वे हमें पृष्ठ नं0, पंक्ति नं0 इत्यादि सहित उन शब्दों के बारे

में लिख भेजने की कृपा करें ताकि भविष्य में नये संस्करण में उनका प्रयोग कर सकें।

एक अन्य बात जिसके कारण से इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद देर से छापने के लिये दिया गया, यह थी कि इस पुस्तक में और बहुत-सी उपयोगी सामग्री जोड़ने की योजना थी। परन्तु समयाभाव के कारण उसे लिखा ही नहीं जा सका। अतः यह सोचा गया कि सम्प्रति इतना ही सही, इसे छाप दिया जाय ताकि इसका तो लाभ पाठकों को मिले। भविष्य में यदि समय मिला तो उसे भी इस पुस्तक में संजो दिया जायगा।

आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी जगत् में काफ़ी लाभकारी सिद्ध होगी।

अप्रैल, 1999 ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र

विषय सूची

प्राक्कथन iii

पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के बारे में दो शब्द ix

जीवन क्या है? आत्मा क्या है? 1

क्या निर्जीव पदार्थ से जीवित प्राणियों का आविर्भाव हो सकता है? 2

क्या किसी भी वैज्ञानिक द्वारा कोई जीवित रूप उत्पन्न किया गया है? 4

जीवन-अणु को संश्लेषित करने के ओपरिन तथा मिलर के प्रयत्न 5

2.जीवन उत्पन्न करने की दिशा में एक अन्य उपागम 7

जीवित प्राणी के तीन स्वीकृत लक्षण 11

निर्जीव पदार्थ से जीवन निर्मित करने में कोई भी सफलता नहीं मिली है 12

सिडनी फॉक्स द्वारा प्रोटीनॉएडों का संश्लेषण 13

अमीबा को संश्लेषित करने का प्रयत्न 13

क्या किसी 'जीवित शरीर' तथा किसी 'आत्मा' में कोई अन्तर है? 14

खण्ड-एक

आत्मा — विलक्षणतम सत्य 18

उपकरण सदैव किसी अन्तर्विवेकशील उपयोगकर्त्ता के लिये अभिप्रेत होते हैं 19

अनुभूत विषय अनुभवकर्त्ता से भिन्न होते हैं 20

तात्विक अन्तर 21

मानसिक तथा संवेगात्मक विक्षोभ 23

मन तथा बुद्धि शरीर का आन्तरिक अंग नहीं बल्कि आत्मा के 'अंग' हैं 24

मन तथा बुद्धि के बारे में सत्य 24

पुनर्जन्म की घटनायें आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं 26

गोपाल कहा करता था — 'मैं शक्तिपाल शर्मा हूँ!' 30

एक ब्राह्मण बालिका जो कि हरिजन थी 35

शरीर से बाहर का अनुभव 40

पशु के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले एक पशु की वास्तविक कहानी 46

अमर आत्मा ही ज्ञान प्राप्त करती है 51

अभिवृत्तियाँ या प्रवृत्तियाँ आत्मा के शाश्वत स्वभाव के रूप में विद्यमान रहती हैं 52

मूल प्रवृत्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि आत्मा अमर है 54

शरीर और मन या चेतना 55

आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में 55

दो भिन्न-भिन्न वास्तविकतायें 56

चिकित्सीय तथा रोग नैदानिक साक्ष्य इस सत्य का समर्थन करता है 57

विचार और विचारक 60

विचारों का स्वरूप 60

विचार तथा प्रत्यय — मस्तिष्क के उपोत्पाद नहीं हैं 62
विचार — आण्विक प्रक्रियाओं के उत्पाद नहीं है 64
विचार तथा प्रत्यय 'संवेदन' नहीं हैं 66
क्या मनुष्य विचारों का एक समूह है या मस्तिष्क की एक अनुघटना है? 68
क्या मैं एक विचारक हूँ या एक विचार हूँ, एक प्रत्यक्षणकर्त्ता हूँ या एक प्रत्यक्षण हूँ ? 68
ह्यूम के तर्क में दोष 70
'स्व' - प्रत्यक्षणों का अवलोकनकर्त्ता है 71
'स्व' के बिना प्रत्यक्षणों का समूह या संग्रह संभव नहीं है 72
किसी स्थाई 'स्व' के अभाव में स्मृति की व्याख्या नहीं की जा सकती 74
ह्यूम का सिद्धान्त — जानने और ज्ञान का भण्डारण करने की व्याख्या नहीं कर सकता .. 75
जो दर्शन— आत्मा के अस्तित्व को नकारता है वह दर्शन अशान्ति की ओर ले जाता है .. 76
'मन' — मस्तिष्क की कोई उपघटना नहीं है 77
सम्मोहन अवस्था में पुनर्जाग्रत गत जन्मों की स्मृतियों के मामलें 81
सम्मोहन क्या है? 81
सम्मोहन अवस्था के विभिन्न उपयोग 82
सम्मोहन प्रतीप-गमन 82
'मंथली मिरर' में प्रतिवेदित सम्मोहन प्रतीप-गमन के कुछ मामले 83
विभिन्न पुस्तकों में उल्लिखित कुछ अन्य मामलें 84
आर्नल ब्लाक्सहम द्वारा प्रतिवेदित जान इवान्स का मामला तथा अन्य मामलें 85
वर्वरा इवान्वा का मामला 86
अन्वेषण के पश्चात् प्रतिवेदन सत्य पाये गये 86
यदि स्मृति मस्तिष्क की एक अनुघटना है तो
मनुष्य गत जीवनों का स्मरण कैसे कर सकता है? 87
कोई व्यक्ति भौतिक रूप में अविद्यमान व्यक्तियों को कैसे देख सकता है ? 88
'आत्मा' — मस्तिष्क से भिन्न है किन्तु 'मस्तिष्क' आत्मा को परिसीमित करता है 89
मानसिक क्षमताओं के उत्कर्ष के मामलें 89
दृष्टि के अवरुद्ध हो जाने के मामले 91
वैज्ञानिक अन्वेषण भी 'आत्मा' के अस्तित्व को सिद्ध करता है 93
लकवा के मामले भी यह दर्शाते हैं कि 'आत्मा' पृथक् है 93
किसी अशरीरी मनुष्य के साथ संप्रेषण करने के लिये किसी माध्यम का उपयोग 94
मृतक की प्रेत-छाया 97
मन और पदार्थ 101
एक हानिकारक प्रवृत्ति 101
क्या 'विचार' — पदार्थक ऊर्जा का एक रूप है ? 102
क्या विचार के पास कालमान का कोई परिमाण या आयाम होता है? 103
'विचार' किस प्रकार की ऊर्जा है ? 105

तुम एक आत्मा हो, जिसका एक लक्ष्य है 109
मानव का क्रिया-कलाप भिन्न है 109
'मन', 'चेतना' तथा 'आत्मा' क्या है? 110
संज्ञान और स्नेह भाव — पदार्थ के गुण नहीं हैं 111
संवेग तथा अनुभूतियाँ किसी अति-भौतिक सत्ता की ओर संकेत करते हैं 112
'इच्छा' तथा 'प्रयास' आत्मा के होते हैं 113
आत्मा ही समन्वय तथा पुनःस्मरण करती है 114
चेतना, अनुभव आदि जैव-रासायनिक तन्त्र के गुण नहीं हैं 116
मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह है किन्तु वह उसका उपयोगकर्त्ता नहीं है ....:.. 122

खण्ड-दो

क्या मन एक अधि-भौतिक सत्ता है? 126
मन की योग्यतायें तथा क्रियायें 127
मन का आसन मस्तिष्क में है 127
मस्तिष्क के विभिन्न भाग तथा उनके कार्य 129
(1) प्रमस्तिष्क (2) अन्तरामस्तु लुंग (3) अनुमस्तिष्क (4) मस्तिष्क वृन्त —
अन्तस्था, पोन्स तथा मध्य मस्तिष्क 129-141
जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र तथा कायिक तन्त्रिका तन्त्र 144-146
अधश्चेतक — अन्तर्विवेक का रहने का स्थान 153
शरीर के ज़रिए मन कैसे कार्य करता है? 154
मन अथवा आत्मा 155
पेनफ़ील्ड के प्रयोग यह दर्शाते हैं कि प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था मन का आसन नहीं है...... 156
दाहिना तथा बायाँ गोलार्ध मन के आसन नहीं हैं 159
मन मानसिक सत्ता है जो कि दो गोलार्धों के बाहर अवस्थित है 161
मस्तिष्क बिना जन्मे शिशु 165
योग; चेतना की परिवर्तित अवस्था तथा
तनाव से भी आत्मा का अस्तित्व सूचित होता है 166
योग — मस्तिष्क में आत्मा के अस्तित्व को सूचित करता है 166
योग के प्रभावों से निकाले गये निष्कर्ष 169
औषधियों द्वारा उत्पन्न परिवर्तित अवस्थायें 170
तनाव को समझना 172
निद्रा तथा स्वप्न से भी 'आत्मा' का अस्तित्व सूचित होता है 174
निद्रा — शरीर के कतिपय भागों को विश्राम देती है 174
शरीर-तन्त्र — निद्रा तथा जागरण को अधोरेखित करता है 175
रोग-निदानात्मक साक्ष्य यह दर्शाता है कि
अधश्चेतक निद्रा का विनियमन करने वाला क्षेत्र है 176
निद्रा की घटना भी मस्तिष्क में आत्मा की विद्यमानता को सूचित करती है 177

नींद में चलने तथा नींद में बोलने के मामले भी आत्मा का अस्तित्व सूचित करते हैं 181
निद्रा, स्वप्न तथा आत्मा 182-183
क्या मस्तिष्क में अधि-भौतिक मन या आत्मा है? 185
मस्तिष्क उद्दीपन के परे कार्य नहीं कर सकता 188
उद्दीपन की अपेक्षा के परे कार्य करने की इच्छा का प्रयोग कौन करता है? 189
मस्तिष्क की क्रिया को वाञ्छित दिशा में कौन ले जाता है? 190
कौन अपने स्वयं के विचारों का मूल्यांकन करता है? 192
मन या आत्मा द्वारा मस्तिष्क में परिवर्तन उत्पन्न किए जाते हैं 194
तन्त्रिकीय, आनुभविक तथा संक्रियात्मक एकता 'आत्मा' के कारण होती है 194
कौन स्वयं के लिये सर्वनाम ''मैं'' का उपयोग करता है? 195
वह कौन है जो कि उपभोग करता है तथा गुण विवेचन करता है? 197
मस्तिष्क, स्मृति तथा आत्मा 199
अल्पकालिक स्मृति तथा दीर्घकालिक स्मृति 200-202
क्या आत्मा स्मृति-प्रकिया में व्यस्त रहती है? 205
स्मृति-उद्धरण 206
मस्तिष्क से आधार-सामग्री का उद्धरण करने के लिये मन युक्तियाँ अपनाता है 207
मन के सन्तोष या मन की निराशा की अनुभूति 208
स्मृतिगत आधार-सामग्री का चयन करने तथा अस्वीकृत करने का कार्य 'मन' का है ... 209
मन न केवल आधार-सामग्री को प्राप्त करता है बल्कि उसमें सुधार भी करता है 209
पेनफ़ील्ड के प्रयोग यह दर्शाते हैं कि मन एक प्रेक्षक है 209
आत्मा, अव-चेतन तथा अस्पष्ट स्मृति 211
आत्मा तथा स्मृति-लोप के मामले 213
स्थायी स्मृति आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करती है 216
कोई भी बात पूर्णत: या हमेशा के लिए भुलाई नहीं जाती 217
स्मृति — आत्मा की एक शक्ति है, न कि मस्तिष्क की 222
मस्तिष्क मर जाता है, किन्तु आत्मा जीवित रहती है 223
मस्तिष्क के बिना 'स्मृति' सम्भव है 224
यदि आत्मा विद्यमान न हो तो अव-चेतन मन क्या है? 225
स्मृति या स्मृति-उद्धरण की क्रिया में मस्तिष्क की भूमिका 225
आनुवंशिक तन्त्र तथा आत्मा का पुनर्जन्म 229
वैज्ञानिक इन अन्तरों की व्याख्या किस प्रकार से करने का प्रयत्न करते हैं? 230
क्या आनुवंशिकता अथवा पर्यावरण आधारभूत कारक है? 231
आनुवंशिकता का जनन-सिद्धान्त 233
1. साधारण बुद्धि वाले माता-पिता का शिशु विलक्षण प्रतिभाशाली कैसे हो सकता है? 235
2. मन या आत्मा एक पृथक् सत्ता है और वह माता-पिता से प्राप्त नहीं होती 238

खण्ड-तीन

तुम एक आत्मा हो जो कि शान्ति तथा आनन्द का अनुभव कर सकती है ... 244

शरीर-क्रियात्मक परिवर्तन इस बात को सिद्ध करते हैं 245

प्रायोगिक साक्ष्य समर्थन करता है कि अधश्चेतक संवेग-जागरण का आसन है 248

भावनाओं से शारीरिक भागों का वियोजन भी आत्मा की उपस्थिति दर्शाता है 250

1. संवेगात्मक बाह्यकरण के विविधतापूर्ण प्रतिरूप के लिए कौन उत्तरदायी है? 252

2. आत्मा के सिवाय संवेगात्मक बाह्यकरण को कौन रोकता या अवरुद्ध करता है? 253

3. संवेग का अनुभव कौन करता है— अधश्चेतक या आत्मा? 254

दो प्रकार के तन्त्र —सुविधाकारक तथा अवरोधक 256

अमर आत्मा, ईश्वर और तीन लोकों का रूप 258

सम्पूर्ण मण्डल अथवा तीन लोकों का रूप 259

आत्मा तथा ईश्वर प्रकाश के शाश्वत बिन्दु हैं 259

आत्मायें— आत्माओं के लोक से आती हैं
जो सूर्य और सितारों से भी परे है 263

विज्ञान का अद्भुत चमत्कार 263

वैज्ञानिकों का स्वप्न पूरा नहीं हुआ 265

दार्शनिक विवक्षायें 268

ग्रहीय अवकाश के परे है— सूक्ष्म लोक 269

आत्मा का लोक 269

आत्मायें प्रकाश से भी द्रुततर वेग से संचार कर सकती हैं 271

प्रकाश की अनन्त या अकल्पनीय गति 274

एक पृथक सत्ता के रूप में 'आत्मा' का अनुभव 277

देह-अभिमान ने विचारों को विकृत कर पीड़ाओं को जन्म कैसे दिया है? 278

राजयोग का अभ्यास 282

आत्म-सचेतन — सुख की कुँजी है 284

मन तथा शरीर के बीच विसामंजस्य 285

अधश्चेतक की केन्द्रीय भूमिका है और मानसिक कारक ही प्रधान कारक है 286-287

राजयोग के लाभ 288

मन एवं शरीर की पारस्परिक क्रिया और सुख तथा स्वास्थ्य का प्रश्न 290

पारस्परिक क्रिया का तन्त्र 291

प्रतिबल — रोग उत्पन्न करता है 293

अभिवृत्तियाँ तथा विचार — इस नाटक में मुख्य अभिनेता हैं 294

आत्मा अधश्चेतक के अपवाही संयोजनों के ज़रिए कैसे कार्य करती है ? 296

आत्मा अधश्चेतक में निवास करती है जहाँ वयोवृद्धि घड़ी अवस्थित है 298

आत्मा तथा ईश्वर मोनैडों के रूप में 299

लाइबनित्ज ने मोनैडों के संप्रत्यय का निरूपण कैसे किया? 300

मोनैड क्या हैं? उन के लक्षण 300-301

विश्व में निरन्तरता 304

ईश्वर — सर्वोच्च मोनैड 305

विश्व और अनिष्ट 306

ईश्वर के महावाक्यों से तुलना तथा विषमता 307

ईश्वर ने आत्माओं को निर्माण नहीं किया; आत्मायें अजात हैं 308

आत्मायें 'खिड़की रहित' नहीं हैं 308

ईश्वर के स्वभाव के बारे में लाइबनित्ज का संभ्रम 309

लाइबनित्ज अनिष्ट की समस्या को हल करने में असफल रहे हैं 311

आत्मायें अनेक हैं किन्तु वे परमात्मा का अंश नहीं हैं 314

सभी आत्मायें परमात्मा की अविनाशी सन्तान हैं 315

आत्मा— परमात्मा में संविलीन नहीं होती 316

योग का अनुप्रयोग तथा 'स्व' का दिव्यीकरण 316

चिनगारियों और अग्नि के सम्बन्ध का साम्यानुमान 318

आत्मा तथा पुनर्जन्म के प्रश्न पर वैज्ञानिक क्या कहते हैं? 320

सर फ्रांसिस वाल्शेड, तन्त्रिका विज्ञानी 320

मैक्स प्लैन्क, विश्व विख्यात् भौतिकविद् 321

इर्विन शोडिंगर 322

अल्बर्ट आइन्स्टाइन 323

एलेक्सिस कैरेल 324

थॉमस एच. हक्सले, जीव-विज्ञानी 325

हबर डी. कर्टिस, खगोल-भौतिकविद् 327

लुईस फिगुअर 327

गुस्टाफ स्ट्रॉमबर्ग, खगोलविद् 328

रेनर सी. जॉन्सन, भौतिकविद् 329

सर हम्फ्री डैवी, इंग्लिश रसायन शास्त्री 330

सर एडवर्ड टेलर, जिन्हें मानव-विज्ञान का जनक कहा जाता है 331

डॉ. जे.बी. राइन, डायरेक्टर, पैरासाइकॉलौजिकल लेबॉरेटरी, ड्यूक युनिवर्सिटी 331

रीडर्स डाइजेस्ट, मार्च 1955 में प्रकाशित लेख 333

इयान स्टीवेन्सन, मनश्चिकित्सक 334

कार्ल जी जुंग , मनश्चिकित्सक तथा मनोवैज्ञानिक 335

डब्ल्यू.एफ.जी.स्वान, भौतिकीविद् एवं पूर्व अध्यक्ष, बर्टोल रीसर्च फाउन्डेशन 337

विलियम जेम्स, विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक ३३७

आत्मा और पुनर्जन्म-दो 339

आत्मा और पुनर्जन्म-तीन 349

आधार ग्रंथ 357

भूमिका :

जीवन क्या है? आत्मा क्या है?

किसी परखनली (Test Tube) में जीवन निर्मित किया जा सकता है?

"शरीर के अतिरिक्त एक ऐसी सत्ता है जिसकी तात्त्विक प्रकृति है — चेतना (Consciousness) । यह अन्तर-विवेकशील सत्ता (Conscient entity) अपने 'जीवित' शरीर का उपयोग प्रत्यक्षण (perception) तथा क्रिया के उपकरणों के एक संयोजन के रूप में करती है । वह एक 'जीवित' शरीर के माध्यम से सुख तथा पीड़ा का अनुभव करती है । इसे 'आत्मा' कहा जाता है । शरीर 'जीवित' रहता है और मर जाता है, किन्तु आत्मा सदैव जीवित रहती है । स्वयं को एक आत्मा के रूप में जानो और अपने शरीर को अभिव्यक्ति के एक अद्भुत माध्यम के रूप में जानो"

— शिव भगवानुवाच

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होने वाले वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा प्रयोगों सम्बन्धी लेखों को पढ़कर कुछ सामान्य पाठक गलती से यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि वैज्ञानिक अपनी परख-नलियों में जीवित तथा अन्तर्विवेकशील रूपों (Conscient forms) को निर्मित करने में सफल हो गये हैं । इसलिये वे पूछते हैं — "जब वैज्ञानिक सचेतन जीवन का निर्माण करने में सफल हो गये हैं तो कौन-सी अन्य बात धार्मिक लोगों को किसी शाश्वत तथा अमर आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करने के लिये प्रेरित करती है ?" ऐसे लोग न केवल स्वयं अनीश्वरवादी (atheists) अथवा नास्तिकवादी (agnostics) हो जाते हैं, बल्कि जब कभी कोई व्यक्ति आत्मा या आत्म-सचेतना के बारे में बात करता है तो वे दूसरों को यह सुझाव देते हैं कि वे इस पुराने विश्वास को त्याग दें, क्योंकि स्पष्टत: उनका यह विचार होता है कि केवल वही लोग आत्मा

के अस्तित्व में विश्वास करते हैं जो लोग वैज्ञानिक आधार पर विचार नहीं करते।

इसलिये इस विषयांग पर चर्चा करना आवश्यक है — भले ही संक्षेप में। मेरे विचार से ऐसे चार प्रश्न हैं जिनका स्पष्टत: उत्तर दिया जाना चाहिए :— (i) जीवन के कौन-से लक्षण हैं और क्या इन स्वीकृत लक्षणों के अनुसार किसी भी वैज्ञानिक द्वारा किसी प्रयोगशाला में जीवित प्राणियों को — चाहे वे जितने भी छोटे हों — संश्लेषण किया जा सकता है? (ii) क्या विज्ञान निर्णायक रूप से सिद्धान्तत: यह साबित कर सकता है कि आजीवित या निर्जीव पदार्थ से जीवित प्राणियों का आविर्भाव हो सकता? (iii) क्या जीवन और चेतना के बीच और 'किसी जीवित शरीर' तथा 'किसी आत्मा' के बीच कोई अन्तर है? (iv) यदि हम अभौतिक आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करें तो क्या उससे हमारे व्यक्तिगत अथवा सामाजिक जीवन में कोई अन्तर आता है?

क्या निर्जीव पदार्थ से जीवित प्राणियों का आविर्भाव हो सकता है?

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते समय आइये हम द्वितीय प्रश्न को सबसे पहले लें। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विश्वास कि "जीवन अजीवित या निर्जीव पदार्थ से उद्भूत (arise) हो सकता है", डार्विन के विकास के सिद्धान्त (Theory of Evolution) से आया है, जिसके अनुसार जब किसी उष्ण छोटे पोखर में सभी प्रकार के अमोनिया तथा फॉस्फोरिक एसिड, लवणों, प्रकाश, ऊष्मा तथा विद्युत के मिश्रण वाले आदिम सूप में उपयुक्त वातावरण में प्रोटीड्स (proteids) की रचना हुई और एकल कोशीय जीवन उद्भूत हुआ तो संयोगवश जीवन का स्वत: जनन हुआ। डार्विन के इन विचारों के प्रकाशन के पश्चात् जीव-रसायनज्ञों तथा जैव-रसायनज्ञों ने प्रयोगशाला में जीवन के निर्माण के अनेक प्रयत्न किये, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि यदि उस वातावरण का निर्माण किया जाय जो कि विश्व की उत्पत्ति के समय विद्यमान था तो जीवन वा जीवित रूपों को संश्लेषित किया जा सकता है।

तथापि, उन्नीसवीं शताब्दी के महान वैज्ञानिक लुईस पाश्चर (Louis Pasteur) के निष्कर्षों से इस विश्वास का खंडन हो गया है। लुईस पाश्चर को सूक्ष्म जीव-विज्ञान (Micro-biology) का जनक समझा जाता है। लुईस पाश्चर के विचारों के ज्ञात तथा स्वीकृत होने तक यह विश्वास किया जाता था कि निर्जीव पदार्थ से जीवन का उद्भव हो सकता है। उन दिनों में 'सूक्ष्म जीव के स्वत: जनन का सिद्धान्त' प्रचलित था। इस बारे में अनेक प्रकार के विचित्र विचार प्रचलित थे कि जैव (Organic) तथा अजैव (Inorganic) निर्जीव पदार्थ से चूहों, मच्छरों तथा कीटकों का जन्म कैसे होता है। उदाहरणार्थ, यह समझा जाता था कि मक्खियों का जन्म स्वत: ही खाद के ढेरों से होता है।[1] पाश्चर ने यह दर्शाया कि मक्खियाँ कूड़े से पैदा नहीं होतीं, बल्कि उन अंडों से पैदा होती हैं जो कि अन्य मक्खियों द्वारा कूड़े पर जमा किये जाते हैं। इसलिये, स्वत: जनन के सिद्धान्त को त्याग दिया गया। इसलिये, सिद्धान्तत: केवल जीवन ही जीवन को उत्पन्न कर सकता है और कोई भी जीवित प्राणी निर्जीव पदार्थ से उत्पन्न नहीं हुए, यद्यपि सभी जीवित प्राणी अपने भोजन में कुछ अजैव पदार्थ लेते हैं तथा उन्हें अपने शरीर के उपयुक्त जैसे रूपों में परिवर्तित करते हैं। पाश्चर (1857) के अनुसंधान तथा पश्चातवर्ती अन्य अनुसंधानों के प्रकाश में इस विश्वास को हमेशा के लिये परित्यक्त कर दिया गया होगा कि पदार्थ से जीवन का संश्लेषण किया जा सकता है, किन्तु डार्विन के विकास सिद्धान्त के कारण और उस सिद्धान्त में जीवन की उत्पत्ति के विषय में किये गये अनुमान के कारण वह विश्वास करते हैं और साथ-ही-साथ जीवन की उत्पत्ति विषयक डार्विन के विचारों पर भी विश्वास करते हैं, यद्यपि ये निष्कर्ष परस्पर विरोधी हैं।

---

1. *प्राचीन इजिप्ती, ग्रीक तथा अन्य लोगों का यह विचार था कि परिपक्व प्राणी अजीवित पदार्थ से स्वत: जन्म द्वारा अस्तित्व में आये। अरिस्टॉटल ने यह कहा कि मेंढ़क तथा चूहे गंदगी तथा आद्र मिट्टी से उत्पन्न हो सकते थे। कहा जाता था कि चूहों का जन्म नील नदी में बाढ़ें आने के बाद हुआ था। यह माना जाता था कि साँप घोड़े के बाल से पैदा हुए थे। किसी समय लोगों का यह विश्वास था कि मक्खियों का जन्म सड़े हुए मांस से हुआ था। तथापि फ्रांसिस्को रेडि (Francesco Redi) ने वैज्ञानिक प्रणालियों का उपयोग करते हुए यह साबित किया कि मक्खियाँ अपरिपक्व अवस्थाओं से या मांस पर मक्खियों द्वारा जमा किये गये अण्डों से पैदा हुये।*

क्या किसी भी वैज्ञानिक द्वारा कोई जीवित रूप उत्पन्न किया गया है?

आइये, अब हम प्रथम प्रश्न को लें और यह देखें कि क्या वैज्ञानिक प्रयोगशाला में जीवन के किसी भी रूप को, चाहे वह जितना भी छोटा हो, संश्लेषित (synthesise) कर सके हैं? विषाणु (Virus) सभी जीवित प्राणियों में सबसे छोटे हैं। विकासवादी उन्हें अत्यन्त 'आदिम' समझते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि विषाणु आदिमतम काल में (सब से पहले) प्रकट हुए थे। विषाणु के शरीर में एक ही प्रोटीन अणु (Protein Molecule) होता है। उसमें प्रोटीन तथा न्यूक्लेइक एसिड (Nucleic Acid) होते हैं। विषाणु अधिकतर विषैले होते हैं तथा पीला बुखार, चेचक तथा पोलियो जैसे रोग पैदा करते हैं। उनका आकार अत्यन्त छोटा होता है तथा उन्हें किसी इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के बिना देखा नहीं जा सकता। अब जो लोग विकास के सिद्धान्त में तथा 'निर्जीव पदार्थ से स्वत: पैदा होने' (Spontaneous generation from inanimate matter) के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं वे लोग यह सोचते हैं कि विषाणु सभी जीवित प्राणियों में सबसे सादे (simple) तथा सबसे सूक्ष्म होने के कारण उन्हें परख-नली में संश्लेषित किया जा सकता है। यह बात भुला दी गई कि विषाणु परजीवियों (Parasites) की तरह ही पोषक कोशिकाओं (Host-Cells) के भीतर रहते हैं और चूँकि वे स्वतन्त्र अस्तित्व रखने में अक्षम होते हैं, इसलिये उन्हें अत्यन्त आदिम नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यदि ऐसे अन्य जीवित प्राणी नहीं होते जिनकी कोशिकायें विषाणुओं के लिये पोषक कोशिकाओं का काम करती हैं, तो विषाणु अस्तित्व में न होते। फिर भी उन्हें उत्पन्न करने के प्रयत्न किए गये। किन्तु, जो-कुछ किया जा सका वह इतना ही था कि विषाणु को प्रोटीन तथा न्यूक्लेइक एसिड में खंडित किया गया और उन्हें फिर से जोड़ दिया गया।

जैसा कि हमने पहले कहा है, इस वर्ग के वैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि जीवन का आरम्भ किसी ऐसी निर्जीव (non-living) भौतिक वस्तु से हुआ जो कि जैव (living) हो गई और प्रोटिनिक (proteinic) हो गई। वे यह सोचते हैं कि

प्रोटीन जीवन है (Protein is life) और इसलिये वे परख-नली में प्रोटीनों का संश्लेषण करते हैं। परन्तु वास्तव में प्रोटीन ही जीवन नहीं है; हाँ, जीवन के लिये प्रोटीन ज़रूरी है।

जीवन-अणु (Life Molecule) को संश्लेषित करने के ओपरिन तथा मिलर के प्रयत्न

'दि ओरिजिन ऑफ़ लाइफ़' के लेखक ए.आई. ओपरिन (A.I.Oparin) का यह विश्वास था [2] कि हाइड्रोकार्बन जैसे सरल जैव, जीवन जैसे यौगिकों (Compound) से सावधानीपूर्ण प्रयोगशालान्तर्गत स्थितियों (careful laboratory conditions) में जीवन का स्वत: जनन हो सकता है। ओपरिन के विचार और कार्य के आधार पर कोलंबिया विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ़ फ़िजिशियन्स एण्ड सर्जन्स (College of Physicians and Surgeons) के एस.एल. मिलर (S.L. Miller) ने गैसों के एक ऐसे वातावरण से, जैसे आदिम वातावरण और उनके विचार से इस ग्रह पर रहा होगा, विद्युत के एक स्फुलिंग (Spark) को गुज़ारा। इस प्रयोग में मिलर अपनी प्रयोगशाला में एमिनों एसिड उत्पन्न कर सके। चूँकि, एमिनो एसिड (Amino Acid) प्रोटीनों के निर्माण-खण्ड होते हैं इसलिये जो वैज्ञानिक विकास के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं उन्होंने यह सुझाया है कि आदिम वातावरण में पृथ्वी को आवृत्त कर रही गैसयुक्त वाष्प से होकर तडित (Lightning) की एक विशाल कौंध (Flash) गुज़री होगी और इस प्रकार जीवन का निर्माण हुआ होगा तथा यह जीवन समुद्र में गिर गया और बढ़ने तथा विकसित होने लगा। किन्तु न तो ओपरिन और न ही मिलर और न ही उनकी विचारधारा वाले अन्य वैज्ञानिक वैसे जीवन को उत्पन्न कर सके हैं जैसे जीवन को हम सभी लोग जानते हैं। वे केवल एमिनो-एसिड अथवा प्रोटीनों को संश्लेषित (synthesise) कर सके हैं।

इस संदर्भ में यह बात याद रखी जानी चाहिए कि यद्यपि किसी जीवित

2. *'The Origin of Life', Mac Millan Co., New York.*

कोशिकाओं (Living Cells) के निर्माण-खण्डों के रूप में प्रोटीन अणु आवश्यक है तथापि वह प्रोटीन ही जीवन नहीं है, क्योंकि जीवन अनेक समकालीन कारण-कारकों पर निर्भर होता है, जो कि न केवल उसकी उत्पत्ति के लिये बल्कि उसके अनुरक्षण के लिये भी आवश्यक होते हैं। किसी एक कोशिका में भी लाखों प्रोटीन अणु होते हैं और कोशिका में सभी अणुओं तथा कणों को एक ही स्थान पर तथा एक ही समय उपस्थित रहना होता है।

इसलिये, यह स्वाभाविक ही है कि मास्को में अगस्त 1957 में जीवन की उत्पत्ति पर जो परिचर्चा हुई उसमें उपस्थित अनेक वैज्ञानिकों ने यह महसूस किया की ओपरिन का यह सुझाव अविश्वसनीय है कि जीवन सदृश्य अणु अजैव या निर्जीव पदार्थ से स्वत: उत्पन्न होते हैं। उन्होंने यह कहा कि वे इस बात पर विश्वास नहीं करते कि सही प्रकार के प्रोटीनों ने काफी बड़े आकार के अणु जीवन का जैव आधार बनने के लिये स्वत: उत्पन्न हो सकते हैं। कोलंबिया विश्वविद्यालय के डॉ0 इर्विन चार्टाफ (Erwin Chartaff) ने कहा : ''संभवत: हमारा समय वह समय है जब पुराण कथा आण्विक स्तर पर अन्तर्भेदन कर गयी है।''[3]

इसलिये यदि अजैव पदार्थ से जीवन की स्वत: उत्पत्ति के बारे में डार्विन का अनुमान ग़लत है तो पाश्चर का विचार निर्णायक रूप से तथा मनन्य रूप से सही होगा और निर्जीव पदार्थिक संघटनों से किसी परख-नली में जीवन को उत्पन्न करने के प्रयास करना निरर्थक होगा।

इसके अतिरिक्त, यह बात याद रखी जानी चाहिए कि मृत कोशिकाओं (Dead Cells) में मृत प्रोटीन (Dead Protein) भी हो सकते हैं, जिससे यह प्रकट होता है कि प्रोटीन जीवन नहीं है। यदि प्रोटीन जीवन होता तो वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अन्त तक अनेक जीवन रूपों को उत्पन्न करने में सफल हो गये होते। प्रोटीन के निर्माण की प्रक्रियायें पूर्णत: भौतिक-रासायनिक स्वरूप की होती हैं और उनमें उनके परिणाम में जीवन का कोई भी चिह्न नहीं होता। संद्रवाव क्षेत्र

3. *Erwin Chartaff, 'Nucleic Acids as carriers of Biological Information'. The Origin of Life on Earth, p.298, 299.*

(Coacervates) किसी जीवित तन्त्र प्रणाली की परिभाषा को सन्तुष्ट नहीं करते, जिस पर हम इस अध्याय में आगे चल कर चर्चा करेंगे।

इसके अतिरिक्त हाल ही में विश्व के दो अत्यन्त विख्यात वैज्ञानिक, जो लन्दन में रहते हैं, अपने वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये विवश हो गये हैं कि जीवन प्राकृतिक चयन द्वारा क्रमिक विकास के माध्यम से अस्तित्व में नहीं आ सकता था, जैसे कि डार्विन ने परिकल्पना की है। इनमें से एक वैज्ञानिक है प्रोफेसर फ्रेड हॉयल (Fred Hoyle), जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड-विज्ञान पर लिखे गये लेख अब विश्व विदित हैं। दूसरे वैज्ञानिक हैं प्रोफेसर विक्रम सिंघे जो कि प्रयुक्त-गणित (Applied Mathematics), खगोल विज्ञान के एक विख्यात प्रोफ़ेसर हैं। प्रोफ़ेसर हॉयल ईसाई पृष्ठभूमि वाले एक अनीश्वरवादी व्यक्ति थे तथा प्रोफ़ेसर विक्रम सिंघे एक बौद्ध थे और बौद्ध धर्म ईश्वरवादी धर्म नहीं है। अपने स्वतन्त्र अनुसंधान के दौरान इन वैज्ञानिकों ने जीवन के स्वत: आरम्भ होने के संयोग को गणितीय रूप से ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। प्रत्येक ने इस बात का पता लगाया कि जीवन के संयोगवश प्रज्वलित होने के विरुद्ध संयोग $10^{40,000}$ हैं। विक्रम सिंघे कहते हैं (उन्हीं के शब्दों में), ''वह संख्या विश्व में इतनी अचिन्तनीय है कि मैं 100 प्रतिशत निश्चित रूप से यह समझता हूँ कि पृथ्वी पर एक रासायनिक संयोग के रूप में खोजना वैसे ही होगा जैसे बालू के किसी विशिष्ट कण को ब्रह्माण्ड के सभी ग्रहों के बालू तरों (Beaches) पर खोजना और उसे पा लेना। जीवन के यादृच्छिक रूप से उत्पन्न होने की अधिसंभाव्यता इतनी अधिक न्यूनतम है कि ऐसा कहना व्यर्थ हो जाता है।'[4]

2.जीवन उत्पन्न करने की दिशा में एक अन्य उपागम

उपर्युक्त वर्ग के वैज्ञानिकों के उपागम (Approach) से भिन्न एक उपागम उन वैज्ञानिकों का है जो कि डी.एन.ए. (D.N.A.) पर जो अनुसंधान कर रहे हैं।

4. *ज्योफ्रे लेवी (Geoffrey Levy) द्वारा लिखित तथा दि हिन्दुस्थान टाइम्स के संडे मैगजीन के 6 सितम्बर 1981 के अंक में प्रकाशित लेख 'गॉड अलोन नोज' देखिये।*

भारतीय वैज्ञानिक डॉ0 हरगोविन्द खुराना को आनुवंशिक कूट (Genetic code) की खोज के लिये 1968 में नोबेल प्राइज प्रदान किया गया था। डॉ0 खुराना के अतिरिक्त निरेनबर्ग (Nirenberg) तथा होली (Holley) नामक दो अन्य वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में कार्य किया था। अन्ततः, 1970 में सादे जैव पदार्थों से एक सम्पूर्ण जीन (Total gene) विश्लेषित किया गया। चूँकि डी.एन.ए. किसी मनुष्य की आँखों के रंग, मनुष्य के शरीर की आकृति, मनुष्य के व्यक्तित्व तथा ऐसे अन्य कारकों को नियन्त्रित करता है, जो कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से और मनुष्य को कुत्ते से भिन्न बनाते हैं। इसलिये यह सोचा गया है कि डी.एन.ए. जीवन का अणु है और यह कि प्रयोगशाला में डी.एन.ए. उत्पन्न कर लेने पर किसी परख-नली में जीवन का निर्मित करना संभव हो जायेगा।

इस सिलसिले में इस क्रांति पर विचार करने के पूर्व कि क्या किसी डी.एन.ए. अणु का संश्लेषण करने का अर्थ किसी परख-नली में जीवन का संश्लेषण करना है, डी.एन.ए. के बारे में कई अधिक तथ्यों को जानना उपयोगी होगा।

अक्षर डी.एन.ए. का अर्थ है डी-ऑक्सी-रिबो न्यूक्लेक एसिड (de-oxy-ribose nucleic acid)। जबकि प्रत्येक जीवित कोशिका में अनेक संघटक भाग होते हैं,[5] जिनमें से एक जीवद्रव्य (Protoplasm) कहलाता है, वहीं कोशिका के केन्द्रक (Nucleus) में धागे जैसे संरचनायें होती हैं जिन्हें गुणसूत्र (Chromosomes) कहा जाता है। किसी जीव में प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्र की संख्या तो निश्चित होती है और भिन्न-भिन्न प्रजातियों के जीवों की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों

---

5. मानव-कोशिका की संरचना इस प्रकार की होती है — पहले एक झिल्ली होती है। कई सूक्ष्म वस्तुयें कोशिका की झिल्ली से होकर भीतर जा सकती हैं तथा कई अन्य वस्तुयें उसके बाहर आ सकती हैं। अन्य वस्तुयें उससे होकर गुजर नहीं सकतीं। उसके बाद की झिल्ली के भीतर की ओर कोशिका सार नामक एक पदार्थ होता है। कोशिका सार में असंख्य लवणों आदि के द्रव भरे होते हैं। कोशिका सार में नाभिक केन्द्रक तिरता रहता है। केन्द्रक के भीतर और कोशिका के विभाजन की प्रक्रिया में अर्थात् समसूत्रण में वे राज्यकण (Chromitin granules) आपस में मिलकर शलाकाओं का आकार ले लेते हैं जिन्हें गुणसूत्र कहा जाता है। प्रत्येक प्रजाति में गुणसूत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक मानव कोशिका में 46 गुणसूत्र होते हैं और यह अनुमान लगाया गया है कि इनमें आठ हजार लाख जीन होते हैं जो कि शरीर के निर्माण से सम्बद्ध रखते हैं।

(Chromosomes) की संख्या नियत या निश्चित होती है और भिन्न-भिन्न प्रजातियों के जीवों की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरणार्थ— प्रत्येक मानव-कोशिका में 46 गुणसूत्र होते हैं तथापि प्रत्येक प्रजाति की जनन-कोशिका (Germ-Cell) में किसी भी अन्य कोशिका में जितने गुणसूत्र होते हैं उनके आधे गुणसूत्र होते हैं। इसलिये जब पुरुष तथा स्त्री की जनन-कोशिकाओं के गुणसूत्र संयुक्त हो जाते हैं तो एक नई कोशिका का निर्माण होता है, जिसमें किसी प्रजाति के लिये अपेक्षित कुल गुणसूत्र सही संख्या में अन्तर्विष्ट होते हैं। उदाहरणार्थ पुरुष और स्त्री की प्रत्येक जनन-कोशिका में 23 गुणसूत्र होते हैं और जब वे संयुक्त हो जाते हैं तो किसी मानव-शरीर की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की कुल संख्या 46 हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गुणसूत्र अनेक सत्ताओं से निर्मित होता है, जिन्हें जीन (Gene) कहा जाता है। यह माना जाता है कि प्रत्येक जीन व्यक्ति के कुछ लक्षणों को नियन्त्रित करता है। इसके अतिरिक्त जीनों के विभिन्न संयोजन लक्षणों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं। अब यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक जीन डी-ऑक्सी-रिबोस न्यूक्लेक एसिड (de-oxy-ribose nucleic acid) के बहुत जटिल अणु का एक भाग होता है, जिसकी विस्तृत संरचना को किसी विशिष्ट रीति से किसी विशिष्ट शरीर का निर्माण करने के लिये कूटबद्ध (Coded) किया जाता है। भ्रूण या गर्भ परिवर्तित होता रहता है तथा निरन्तर विभाजित होने वाली कोशिकायें स्वयं को पाचन-तन्त्र, श्वसन-तन्त्र, परिसंचरण-तन्त्र तथा अन्य तन्त्रों (Systems) के रूप में निर्मित करती है और इस प्रकार डी.एन.ए. अणु में, जो कि गुणसूत्र में होता है, जो कि कोशिका के केन्द्रक में होता है इन आनुवंशिक कूट के आधार पर पुरुष या स्त्री की जटिलता में निर्मित हो जाती है।

अब चूँकि डी.एन.ए. अणु स्वयं को और गुणसूत्रों को भी द्विगुणित करता है और कोशिका विभाजन या जिसे समसूत्रण (Mitosis) कहा जाता है उस प्रक्रिया के माध्यम से शरीर का निर्माण करता है इसलिये उसे जीवन का प्रधान अणु (Master molecule of life) माना गया है और यह सोचा गया है कि यदि इसे

संश्लेषित किया जाता है तो हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि प्रयोगशाला में जीवन का संश्लेषण किया जा सकता है। हम पहले ही यह कह चुके हैं कि डॉ. हरगोविंद खुराना जी ने एक 'ई.कोली'(E.Coli) जीन का संश्लेषण किया। इसलिये इससे क्या हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि डॉ. खुराना तथा अन्य वैज्ञानिक किसी परख-नली में जीवन का संश्लेषण करने में सफल हुये हैं? आइये, इसके पूर्व कि हम कोई अधिमत दें, हम एक क्षण प्रतीक्षा करें तथा उस पर सोचें।

जीन को पूर्णतः संश्लेषित नहीं किया गया

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि जीन आनुवंशिकता की मूलभूत इकाइयाँ हैं और आनुवंशिक कूट का ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उससे मनुष्य जीनों में रासायनिक रूप से वाञ्छित परिवर्तन ला सकेगा, फिर भी यह कहना गलत होगा कि 'जीन' जीवन के लिये पूर्णतः उत्तरदायी होते हैं या यह कि जीनों को रासायनिक रूप से पूर्णतः संश्लेषित किया जा सकता है। जीनों सम्बन्धी हमारा ज्ञान केवल हमें यह बताता है कि कोशिकायें रासायनिक रूप में कूटबद्ध सन्देशों का उपयोग करती हैं और यह कि हम इस तथ्य का उपयोग हमारे लाभ के लिये कर सकते हैं। किन्तु, प्रोटीनों, हार्मोनों, लिपिडों, विटामिनों तथा जीनों जैसे अधिकांश रसायनों के संश्लेषण द्वारा जो कि प्राथमिक रूप से जीवित कोशिकाओं में पाये जाते हैं, वैज्ञानिक प्रयोगशाला में किसी पूर्ण 'जीवित कोशिका' का संश्लेषण करने के निकट कहीं भी नहीं पहुँचे हैं। वाट्सन तथा क्रिक (Watson and Crick) द्वारा डी.एन.ए. की दोहरी सर्पिल (Double helical) संरचना की खोज की जाने के पश्चात् कुछ आण्विक जीव-विज्ञानियों (Molecular biologists) ने जो बड़ी आशा व्यक्त की थी वह अब धुंधली पड़ गई है जब इस विषय पर अनेक नये तथ्य प्रकाश में आये हैं।

वस्तुतः, डॉ. हरगोविन्द खुराना द्वारा 'ई.कोली जीन' का संश्लेषण किया गया उसे आगे यह दर्शाना चाहिए कि जीवन का संश्लेषण नहीं किया जा सकता, क्योंकि यद्यपि उन्होंने जीनों के कई खंडों को संश्लेषित किया और उन्हें रासायनिक

तथा एक से दो होती हैं और इसी प्रकार आगे बहुगुणित होती हैं। अब चूँकि डी.एन.ए. अणुओं तथा जीनों के पास संवृद्धि का कूट (Code) या संवृद्धि की आयोजना होती है, वे प्रतिकृतिकरण या द्विरूपकरण में सक्षम होते हैं इसलिये उसे जीवन का अणु समझा जाता है किन्तु इस सन्दर्भ में इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि डी.एन.ए. एन्जाइमों — डी.एन.ए. बहुकारक (Polymerase) के बिना अकेले ही स्वयं का द्विरूपकरण नहीं कर सकता। स्व-द्विरूपकरण (Self duplication) संपूर्ण अविकल कोशिका का एक गुणधर्म है; डी.एन.ए. अणु स्वयं ही परख-नली में जनन नहीं करते। इसके अतिरिक्त डी.एन.ए. स्वयं अपने एन्जाइमों का द्विरूपकरण नहीं कर सकता। इसलिये, इस अर्थ में डी.एन.ए. जीवन के सामान्यतः सहमत लक्षणों को पूरा नहीं करता। डी.एन.ए. जीवित कोशिका के बाहर कार्य नहीं करता, बल्कि जीवित कोशिका के भीतर कार्य करता है।

निर्जीव पदार्थ से जीवन निर्मित करने में कोई भी सफलता नहीं मिली है

इस प्रकार कुछ वैज्ञानिक यह कह सकते हैं कि वे जीवन निर्मित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वस्तुतः वे भौतिक-रासायनिक (मनो-भौतिक या मनो-रासायनिक नहीं) स्थितियाँ निर्मित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिनमें कोई जैव तन्त्र किसी जीवित तन्त्र की तरह व्यवहार करे। उदाहरणार्थ वैज्ञानिक जेम्स वाट्सन (James Watson) ने अपनी पुस्तक 'मॉलीक्युलर बायोलॉजी ऑफ दि जीन' (Molecular Biology of the Gene) में कहा है कि जीवन एक समन्वित रासायनिक क्रिया है। किन्तु यह तथ्य बना ही रहता है कि समन्वित रासायनिक क्रिया तथा स्थितियों के ज़रिये जीवन निर्मित नहीं किया जा सकता, बल्कि वह सामग्री निर्मित की जा सकती है जो कि जैव सामग्री के सदृश्य हो, वैज्ञानिक जिसे कोशिका-मुक्त तन्त्र (Cell-free system) कहते हैं। आप एटीपी (ATP) के बाहर सक्रिय कारक एन्जाइमों, बहुकारकों (Polymerase) तथा एटीपी को परख-नली में पा सकते हैं और आप प्रोटीन संश्लेषण को देख सकते हैं किन्तु जैसा कि

पहले कहा गया है, ये संरचनायें उपापचयन का कार्य कर सकती हैं और बढ़ सकती हैं तथा बहुगुणित हो सकती हैं, किन्तु ये रूप जैसे कि हम देखते हैं एक आवश्यक पहलू में जीवित रूप नहीं है, जिस पर हम इस अध्याय में आगे चलकर चर्चा करेंगे।

सिडनी फॉक्स द्वारा प्रोटीनॉएडों (Proteinoids)का संश्लेषण

इस संदर्भ में हम फ्लोरिडा स्थित मियामी युनिवर्सिटी के एक वैज्ञानिक सिडने फॉक्स (Sydney Fox) द्वारा किये गये प्रयोगों का उल्लेख कर सकते हैं। उन्होंने लगभग सात या आठ एमिनों एसिडों को लिया और उन्हें कई घंटों तक लगभग 120 डिग्री सेन्टीग्रेड पर रखा। इस प्रकार उन्हें सामग्री मिली जिसे उन्होंने प्रोटीनॉएड (Proteinoids) कहा। उन्होंने विनिर्दिष्ट वातावरणीय स्थितियों को बनाये रखते हुए इन प्रोटीनॉएडों में कुछ पोषक तत्व मिलाये। परिणाम-स्वरूप कई आण्विक संरचनायें प्राप्त हुईं। उन्होंने यह कहा कि ये सूक्ष्म गोले (माइक्रो स्फीयर; Microspheres) प्रयोगशाला में बढ़े तथा बहुगुणित (multiply) हुये अर्थात् संख्या में बढ़े। उन्होंने यह भी दावा किया कि ये प्रोटीनॉएड सूक्ष्म गोले कोशिका के रासायनिक मूल बिन्दु थे। किन्तु अनेक वैज्ञानिक, जिन्होंने फॉक्स के प्रयोगों की जाँच की है, फॉक्स के अनुमान [8] से सहमत नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यह कहा गया है कि इन सूक्ष्म गोलों में पेप्टाइडों तथा पॉलीपेप्टाइडों (Peptides and polypeptides) के गुणधर्म हैं, इनमें कोई भी मानसिक या अन्य चिह्न नहीं हैं, जो कि जीवित प्राणियों के लिये आवश्यक है।

अमीबा को संश्लेषित करने का प्रयत्न

एक अन्य रुचिकर प्रयोग वह था जो कि बफैलो के डेनिएल्ली (Danielli of Buffallo) द्वारा किया गया था। यह प्रतिवेदित किया गया कि उन्होंने एक अमीबा को लिया और उस अमीबा से उन्होंने कुछ एन्जाइमों तथा रसायनों को पृथक

8. *Orgel L.E. and Miller S.L. : 'The Origin of Life on Earth', Prentice Hall Inc. 1974, p.144-145.*

कर दिया और उन्होंने उस अमीबा की झिल्ली (Membrane) को विदारित किया। उन्होंने इस सभी संघटकों तथा घटकों को परख-नली में रखा। उन्होंने एक अन्य परख-नली में अमीबा की पुनर्रचना के लिये अपेक्षित कुछ आवश्यक एन्जाइम पहले से ही डाल रखे थे। यह कहा जाता है कि उन्होंने इन दो परख-नलियों की अन्तर्वस्तुओं को एक साथ मिश्रित कर दिया और उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने एक अमीबा को पुनर्उत्पादित किया है। अनेक वैज्ञानिकों ने डेनिएल्ली के कार्य पर प्रतिकूल टिप्पणी की है तथा उनके प्रयोगों तथा निष्कर्षों की हंसी उड़ाई है, क्योंकि वस्तुत: निर्जीव पदार्थ से ऐसी कोई भी चीज़ संश्लेषित नहीं की गई है जिसे वास्तव में 'जीवन' कहा जा सके।

क्या किसी 'जीवित शरीर' तथा किसी 'आत्मा' में कोई अन्तर है?

आइये, अब हम तीसरे प्रश्न पर विचार करें : "क्या जीवन तथा चेतना के बीच या किसी 'जीवित शरीर' तथा किसी 'आत्मा' के बीच कोई अन्तर है?"

अब वैज्ञानिकों द्वारा जो प्रयोग किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि प्रोटीनों, डी.एन.ए. आदि जैसे अनेक महत्वपूर्ण संघटकों या घटकों को प्रयोगशाला में संश्लेषित किया जा सकता है तथा किसी **'जीवित शरीर'** जैसी या सदृश किसी चीज को संश्लेषित किया जा सकता है, यद्यपि किसी परख-नली में जीवन के समरूप कोई चीज़ उत्पन्न नहीं की जा सकती। इससे स्पष्टत: यह प्रकट होता है कि शरीर भौतिक संघटकों से निर्मित होता है। किन्तु वैज्ञानिक जो कुछ भी संश्लेषित कर सकते हैं उसमें चेतना का अभाव है जो कि किसी जीवित प्राणी का आवश्यक लक्षण है। प्रोटीनॉएडों या डी.एन.ए. में सोचने, अनुभव करने या संवेगों तथा मनोभावों को अभिव्यक्त करने की योग्यता नहीं होती।

इसलिये, संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि पदार्थ दो प्रकार का होता है— एक 'मृत पदार्थ' (अजीव) तथा दूसरा 'जीवित पदार्थ' (जीव)। जब पदार्थ किसी रासायनिक या जैव रचना होती है कि वह उपापचय (Metabolic) का कार्य कर सकता है तथा बढ़ सकता है और बहुगुणित हो सकता है तो वह

चेतना के लिये उसके माध्यम से अभिव्यक्त होने या कार्य करने का उपयुक्त माध्यम होता है। उसकी क्रियाशील मानव-कोशिका उसके जीवद्रव्य (Protoplasm) केन्द्रक (Nucleus) कोशिका सार (Cytoplasm), गुणसूत्र (Chromosomes), डी.एन.ए. और उन सभी चीजों के साथ जो कि उसके साथ होती है, 'जीवित कोशिका' होती है। किन्तु, स्वयं इस पदार्थ या उस कोशिका में चेतना का गुण नहीं होता, यद्यपि चेतना के प्रभाव के अन्तर्गत जिसका स्रोत पूर्णत: एक भिन्न सत्ता होती है जो कि अभौतिक और अपदार्थिक होती है और 'आत्मा' कहलाती है — ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें चेतना का गुण है।

पुन: इस प्रकाश में सोचने पर 'जीवन' भौतिक अस्तित्व की उस अवस्था को दिया गया नाम है जब किसी भौतिक तन्त्र में आत्मा होती है और उसकी चेतना कार्यशील रहती है, भले ही वह निम्न मात्रा में क्रियाशील हो। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि क्रियाशील (Living) शरीर की अवस्था या अवस्थाओं को जीवन विशेषत: तब कहा जाता है जब उसमें कोई आत्मा निवास करती है, जबकि आत्मा एक अभौतिक सत्ता है और स्थूल शरीर को छोड़ देने के बाद भी उसको अस्तित्व हो सकता है या अस्तित्व की अवस्था हो सकती है (या अवस्थायें हो सकती हैं)। 'चेतना' आत्मा के आवश्यक विशेषणों में से एक विशेषण है। वह अभिव्यक्त हो सकती है या सुप्त रह सकती है। इस अर्थ में यद्यपि जीवन तथा चेतना किसी भौतिक तन्त्र में घनिष्ठत: सम्बद्ध हो सकते हैं तथापि उनके दो भिन्न अर्थ हैं। कोई शरीर कुछ समय के लिये, चाहे वह जितना भी छोटा हो जीवित शरीर [9] में तब भी बना रह सकता है जब आत्मा ने उसे छोड़ दिया हो और वह वातावरण में विचरण कर रही हो। इस अवस्था में शरीर में चेतना नहीं होगी, यद्यपि फिर भी उसमें तीन स्वीकृत लक्षण हो सकते हैं। तथापि उसे पुनर्जीवित करने की किसी प्रक्रिया के ज़रिये सामान्य अवस्था में

9. *स्मरण रहे कि 'जीवित सत्व' का अर्थ वही नहीं है जो कि 'जीवित शरीर' का है। 'जीवित सत्व' का अर्थ है किसी क्रियाशील शरीर में एक आत्मा का अस्तित्व, जबकि 'जीवित शरीर' एक ऐसा शरीर है जो कि अपनी तीन विशेषताओं उपापचय, संवृद्धि तथा प्रजनन के साथ अस्तित्व में रहता है।*

लाया जा सकता है और आत्मा भी पुन: लौट सकती है या उस माध्यम के ज़रिये स्वयं को अभिव्यक्त कर सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आत्मा अपनी चेतना तथा अपने अन्य गुणों के साथ किसी भौतिक शरीर के बिना अस्तित्व में रह सकती है और कोई भौतिक शरीर कुछ समय के लिये किसी जीवित शरीर के बिना ही जीवित शरीर बना रह सकता है — यह समय इस बात पर निर्भर होता है कि कितनी देर तक कोई जीव (Organism) अपनी तीन स्वीकृत विशेषताओं या तीन क्रियाओं को कायम रख सकता है।

किन्तु इस परम सत्य को न जानने के कारण मनुष्य स्वयं को एक जीवित शरीर मानता है। वह इस तथ्य को आसानी से भूल जाता है या नजरअंदाज कर देता है कि वह एक 'आत्मा' है जिसके पास सोचने, अनुभव करने, स्मरण करने तथा परखने की योग्यतायें हैं। किन्तु ग़लती से वह इन योग्यताओं को मन से सम्बद्ध करता है या उनका श्रेय मन को देता है, जिसके बारे में उसके पास कोई स्पष्ट विचार नहीं है या जिसे वह गलती से एक सूक्ष्म भौतिक सत्ता या मस्तिष्क का एक कार्य मानता है।

शरीर के साथ गलत तादाम्य ही मनुष्य की विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं का मुख्य कारण है। इसलिये, इस पुस्तक में यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि 'चेतना' या 'मन' जिसकी अभिव्यक्ति, विचार, भावना, निर्णय आदि के रूप में होती है, शाश्वत है तथा शरीर से भिन्न है और यह कि मन या आत्मा अभौतिक सत्ता है और मस्तिष्क में उपस्थित है।

खण्ड-एक

आत्मा — विलक्षणतम सत्य

पदार्थ से निर्मित वस्तुयें स्वयं अपने लिये नहीं होतीं

''इस स्वयं-प्रकाशमान सूक्ष्म बिन्दु 'आत्मा' में — 'स्व' के समस्त अशरीरी अस्तित्व के संस्कार होते हैं और इसी में भावना घटित होती है। इस 'स्व' की शुद्धि ही शान्ति की कुँजी है।''

— शिव भगवानुवाच

पूर्वगामी अध्याय में हमने तीन मुख्य बातों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इनमें से एक बात यह थी कि 'मन' तथा 'बुद्धि' स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ के उत्पाद या विकसन नहीं है। वे शरीर-तन्त्र से, जिसमें मस्तिष्क तथा उसके कार्य सम्मिलित हैं, भिन्न हैं। दूसरी बात यह थी कि 'मन' और 'प्रज्ञा'— सोचने, कल्पना करने, समझने, निर्णय करने अनुभव करने आदि की योग्यताओं तथा क्रियाओं के नाम हैं और ये आत्मा से सम्बन्धित हैं। तीसरी बात यह थी कि आत्मा द्वारा किये गये कर्म उस पर संस्कार छोड़ जाते हैं और इनसे प्रवृत्तियों, प्रवणताओं, दृष्टिकोण, लक्षणों, प्रेरणाओं, आवेगों, संकल्पों का अर्थात् आत्मा के संस्कारों का निर्माण होता है और जब आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेती है तो वे उसके साथ चले जाते हैं। नि:सन्देह, जीनों (Genes) में शरीर की वृद्धि और शरीर के विकास की और व्यक्तित्व की या जिन्हें आनुवंशिक लक्षण कहा जाता है उनकी रूपरेखा कूटबद्ध (Coded) रूप में होती है, तथापि कोई व्यक्ति किस प्रकार के और किसी गुणवत्ता वाले जीन विरासत में पायेगा यह बात आत्मा के कार्यों तथा कर्मों तथा परिणामी लक्षणों तथा प्रवृत्तियों द्वारा अर्थात् उसके पूर्व जन्मों में निर्मित संस्कारों द्वारा निश्चित होती है।

अब यद्यपि ये सरल सत्य विद्यमान हैं, फिर भी ऐसे लोग, जिन्होंने उन पर चिन्तन-मनन नहीं किया, एक पृथक विवेकशील सत्ता के रूप में आत्मा के

अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। इसलिये कई तर्कों को विस्तारपूर्वक दोहराना आवश्यक है। ताकि यह महत्वपूर्ण सत्य अधिक स्पष्ट हो जाये और इस विचार के साथ हम इस बात पर चर्चा करते हैं कि सामान्य तर्क के आधार पर हम आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करने के लिये कैसे प्रेरित होते हैं? इस प्रयास में हमें कुछ अपरिहार्य पुनरावृत्ति पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

उपकरण सदैव किसी अन्तर्विवेकशील उपयोगकर्त्ता के लिये अभिप्रेत होते हैं

यह बात हम प्रतिदिन देखते हैं कि उपकरणों, मशीनों आदि जैसी निर्जीव चीजें स्वयं उनके लिये अभिप्रेत नहीं होतीं, बल्कि किसी अन्तर्विवेकशील उपयोगकर्त्ता के लिये अभिप्रेत होती हैं। उदाहरणार्थ, टेलीफोन उसके स्वयं के उपयोग के लिये अस्तित्व में नहीं होता, बल्कि यह मनुष्यों द्वारा उपयोग के लिये होता है। टेलीफोन नामक उपकरण के जरिये बोलने या सुनने वाला स्वयं उस उपकरण से भिन्न एक मनुष्य होता है। इसी प्रकार मनुष्य के कान, मनुष्य का मुँह तथा मनुष्य के अन्य अंग उनके अपने लिये नहीं होते, बल्कि आत्मा द्वारा उपयोग किये जाने के लिये होते हैं जिसका स्वयं का अस्तित्व कानों या मुँह के अस्तित्व से भिन्न होता है।

इसी प्रकार कोई घर उसके स्वयं के लिये नहीं होता, किन्तु उसका निर्माण किसी मनुष्य के उपयोग के लिये किया जाता है। घर की कुर्सियाँ और मेज़ें भी अन्तर्विवेकशील सत्ताओं के उपयोग के लिये होती हैं। इसलिये यदि शरीर से भिन्न कोई अन्तर्विवेकशील सत्ता न हो तो इन वस्तुओं का कोई भी उपयोग या प्रयोजन साबित नहीं किया जा सकता। इसलिये, हम यह पूछ सकते हैं कि 'क्या शरीर केवल उसके स्वयं के लिये होता है ?' नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी घर या उसमें कुर्सियों और मेज़ों का अस्तित्व उस घर में अन्तर्विवेकशील व्यक्ति का निर्णायक सबूत है जो कि उस घर में रहता है और उन कुर्सियों तथा मेजों का उपयोग करता है और उस घर या उन कुर्सियों आदि से भिन्न सत्ता होता है। ठीक उसी प्रकार, शरीर का अस्तित्व यह साबित करता

है कि जो सत्ता उसमें विश्राम करती है या उस शरीर का उपयोग करती है वह सत्ता एक भिन्न व्यक्ति है जो कि शरीर नामक वस्तु से पूर्णत: भिन्न तथा स्वतन्त्र है।

किसी घर की सफाई की जाती है तथा उसमें पंखों तथा प्रकाश की तथा ठंडे पेय जल की व्यवस्था की जाती है। यह सब किसी जीवित तथा सोचने वाले व्यक्ति के प्रयोजनों को पूरा करने के लिये किया जाता है। ठीक उसी प्रकार, शरीर में रहने वाली जीवित सत्ता के लिये शरीर में चल रही किसी एक या अधिक या सभी प्रक्रियायें, उदाहरणार्थ श्वसन तथा पाचन प्रक्रियायें, रक्त परसंचरण प्रक्रियायें तथा अन्य गति-विधियाँ इस शरीर रूपी घर में चलती रहती हैं जो कि अन्तर्विवेकशील सत्ता का डेरा है। उस सत्ता को 'आत्मा' कहा जाता है। जब आत्मा शरीर को छोड़ देती है तो सभी शारीरिक प्रक्रियायें सहज इसलिये समाप्त हो जाती हैं कि जिसके लिये ये प्रक्रियायें चलती रही थीं वह उस शरीर में नहीं रह गया है। जब घर में कोई न रहा तो किसके लिये पंखें चलें या आग जलाई जाये या कमरों में रोशनी की जाये? जब आत्मा शरीर को छोड़ देती है तो सभी गति-विधियाँ समाप्त हो जाती हैं।

हम इसे एक दूसरे ढंग से कह सकते हैं। जब कोई घर गिर जाता है या जब उसमें हवा और प्रकाश आदि की उचित व्यवस्था न हो तो मनुष्य उसे छोड़ देता है। शरीर के साथ भी ऐसा ही होता है। जब शरीर की दशा ऐसी हो कि आत्मा की तात्विक गति-विधियाँ सही ढंग से नहीं चलतीं और आत्मा को असुविधा या पीड़ा का अनुभव होता है तो आत्मा शरीर को छोड़ देती है।

अनुभूत विषय अनुभवकर्त्ता से भिन्न होते हैं

आत्मा के अस्तित्व के प्रश्न पर एक दूसरे ढंग से विचार कीजिये। यह विश्व मनुष्य के उपभोग के लिये असंख्य वस्तुओं से परिपूर्ण है। इन वस्तुओं की सूची बहुत लंबी है जिसमें फल, फूल, साग-सब्जी, अनाज आदि वस्तुयें शामिल हैं। क्या ये वस्तुयें उनके अपने लिये हैं? न तो फल स्वयं को खाता है और न ही जल स्वयं नहाता है। सभी दशाओं में कोई अन्तर्विवेकशील सत्ता ऐसी है जो कि इन वस्तुओं से अपना प्रयोजन पूरा होता हुआ पाती है। जिस प्रकार भौतिक वस्तुयें

अन्तर्विवेकशील प्राणियों के उपयोग के लिये अभिप्रेत होती हैं ठीक उसी प्रकार शरीर, जो कि पदार्थ से निर्मित है, चेतन प्राणियों के उपयोग के लिये अभिप्रेत है। इसीलिये अन्तर्विवेकशील सत्ता आनन्द या दु:ख का अनुभव करती है जो कि शरीर नहीं है, बल्कि 'आत्मा' है जो उस आनन्द का अनुभव करती है जो कि विभिन्न प्रकार की भौतिक वस्तुओं के उपभोग से मिलता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शरीर— विषय या साधन है, जबकि आत्मा— विषयी या अनुभवकर्त्ता है।

इस प्रकार, जो लोग कम्प्यूटर जैसे मस्तिष्क से भिन्न मन के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते उन लोगों के दृष्टिकोण पर विचार करने पर उनके दृष्टिकोण की ग़लती उजागर हो जायेगी। जब हम यह स्मरण करें कि पदार्थ के सभी रूप भले ही वे किसी स्वत: चालित इलेक्ट्रॉनिक तन्त्र की तरह कार्य कर रहे हों, अपने स्वयं के लिये नहीं हैं। वे किसी अन्तर्विवेकशील उपयोगकर्त्ता के लिये, किसी चेतन सत्ता के लिये अभिप्रेत होते हैं।

तात्विक अन्तर

इसके अतिरिक्त, हमें यह जानना चाहिए कि ये भौतिक वस्तुयें न तो अपने भविष्य के बारे में सोच सकती हैं और न ही अपने अतीत के बारे में सोच सकती हैं। वे यह नहीं सोच सकतीं कि अतीत में वे क्या थीं और भविष्य में वे कौन-सा रूप लेंगी।

पुन: इन भौतिक वस्तुओं में विषयों को सभी दृष्टिकोणों से देखने की अन्तर्निहित योग्यता नहीं होती और वे क्रिया के अध:स्थ स्रोत को समझ नहीं सकतीं। उन्हें किसी अन्तर्विवेकशील शक्ति द्वारा कार्यक्रमित किया जाना होता है। उदाहरण के लिये 'वाइकिंग-एक' (Viking-I) के मामले को लें, जिसे वैज्ञानिकों ने मंगल ग्रह (Mars) पर उतारा था। यद्यपि उसमे रखे गये उपकरणों द्वारा प्रयोग किये, जिनका उद्देश्य इस बात का पता लगाना था कि मंगल ग्रह पर किसी भी प्रकार का जीवन है या नहीं या सूक्ष्म जीव अथवा बृहदाणु हैं या नहीं फिर भी उपकरण या साधित्र (Apparatus) द्वारा कोई भी अनुमान निकाला नहीं

जा सका। अनुमान या निष्कर्ष वैज्ञानिकों को निकालना पड़ा और परिणाम तथा आनन्द या निराशा का अनुभव वैज्ञानिकों अर्थात् अन्तर्विवेकशील व्यक्तियों द्वारा किया गया।

इसलिये इस बात पर बल देना गलत नहीं होगा कि कोई यन्त्र या कोई संगणक (Computer) किसी भी चीज का अनुभव नहीं करता और न ही उसमें कोई संवेग होता है और न कोई चेतना होती है। किसी ग्रामोफोन रिकार्ड या चुम्बकीय टेप का उदाहरण लीजिये, जो कि पदार्थ से बना करता है, किन्तु उसमें प्रेम या घृणा या सहानुभूति या क्रोध या आनन्द या पीड़ा की कोई भी भावना नहीं होती, जबकि वह रिकार्ड या टेप वही शब्द विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न भावनायें संप्रेषित करती है। टेप रिकार्डर या कम्प्यूटर आनन्द को नहीं समझता और उसका अनुभव तो करता ही नहीं। किसी कम्प्यूटर के लिये 'प्रेम', 'आत्म-बलिदान', 'त्याग', 'समर्पण' या 'ईश्वर के प्रति अर्पण की भावना' न तो कोई व्यवहारिक उपयोगिता है और न उनका कोई अर्थ है; और न ही कोई कम्प्यूटर या टेप रिकार्डर कभी मुक्ति पाने की सोचते हैं जैसे कि कुछ आत्माओं ने शरीर और मस्तिष्क से मुक्ति पाने के प्रयास किये। कम्प्यूटर कभी भी भारहीनता, प्रबोध या शरीर से पृथकता का अनुभव नहीं करता, जिनका अनुभव राजयोग या आध्यात्मिक चिन्तन द्वारा आत्मायें करती हैं।

मशीन किसी क्रिया के पीछे छिपे विचार को भी नहीं समझती। हम एक अन्य उदाहरण द्वारा उपर्युक्त बात को स्पष्ट करेंगे। जब किसी तराजू के एक पलड़े पर हाथ रख दिया जाता है तो वह यह दर्शाता है कि पलड़ा बोझ से भारी हो गया है, किन्तु वह यह व्यक्त या संकेतित नहीं कर सकता कि उस पर हाथ संयोगवश रख दिया गया था या किसी प्रयोजन से रखा गया था या किसी अन्य विचार से रखा गया था। किन्तु अन्तर्विवेकशील व्यक्ति उसे प्रकट कर सकता है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति यह सोचने लगता है कि पहले व्यक्ति ने उसके सिर पर हाथ क्यों रखा ? वह यह अनुमान लगा सकता है या समझ सकता है कि पहले व्यक्ति ने उसके सिर पर हाथ उसे आशीर्वाद देने के लिये रखा या उसे

आराम पहुँचाने के लिये रखा या उसे अपमानित करने के लिये रखा। वह न केवल पहले व्यक्ति की इस क्रिया को परख सकता है बल्कि वह आशीर्वाद देने आदि की अभिप्रेरणा का अनुभव भी कर सकता है।

इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव करने की योग्यता मस्तिष्क में नहीं होती। 'आत्मा' ही सोचती है और अनुभव करती है। वह शाश्वत है और शब्द 'मैं' — आत्मा के लिये आता है।

मानसिक तथा संवेगात्मक विक्षोभ

किन्तु यह पूछा जा सकता है कि "शारीरिक तथा मानसिक व्याधि कभी-कभी भय, संदेह, क्रोध आदि जैसे संवेगात्मक विक्षोभ उत्पन्न क्यों करती हैं?"

जैसा कि हम कह चुके हैं भौतिक शरीर, मस्तिष्क, जीन, गुणसूत्र, रक्त तथा शरीर के अन्य संघटक वे माध्यम हैं जिनके जरिये आत्मा अपनी इच्छा व्यक्त करती है। माध्यम में उत्पन्न होने वाला विक्षोभ अभिव्यक्ति को ठीक उसी प्रकार से विक्षुब्ध कर देता है जिस प्रकार कोई दोषपूर्ण रेडियो सेट ध्वनि के श्रवण को विक्षेपित कर देता है तथा वस्तुत: अच्छे गाने के बजाय कर्कश ध्वनि सुनाई देती है या अवरोधित स्वर सुनाई देता है। इसलिये यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि संवेगात्मक तथा मनोवैज्ञानिक संस्कार आत्मा से सम्बन्धित होते हैं, न कि शरीर से, किन्तु कोशिकायें (Brain Cells) तथा कतिपय ग्रंथियाँ (Glands) तथा तन्त्रिकायें (Nerves) आत्मा के संवेगों के कारण प्रभावित हो जाती हैं और वे आत्मा के संवेगों की अभिव्यक्ति को प्रभावित करती हैं।

संक्षेप में, यह बात स्पष्टत: समझ ली जानी चाहिए कि दो शाश्वत सत्तायें हैं— पदार्थ तथा आत्मा (मन आत्मा की एक शक्ति मात्र है)। पदार्थ या प्रकृति अपनी सेवायें आत्मा अर्थात् पुरुष को देती है। पदार्थ भविष्य को देखने या उसके लिये आयोजित करने में सक्षम नहीं होता और न ही वह अतीत पर चिन्तन करने में सक्षम होता है। क्योंकि उसमें सोचने और किसी क्रिया से परम शुभ को निस्सारित करने की योग्यता नहीं होती और न वह प्रभावों को महसूस कर सकता है। मन तथा प्रज्ञा कोई सूक्ष्म, आन्तरिक, भौतिक अंग नहीं हैं,

बल्कि आत्मा की शक्तियों के विभिन्न नाम हैं, जैसा कि नीचे उल्लिखित सादृश्य (Analogy) से स्पष्ट हो जायेगा।

मन तथा बुद्धि शरीर का आन्तरिक अंग नहीं बल्कि आत्मा के 'अंग' हैं

हम सभी लोग यह जानते हैं कि विद्युत एक प्रकार की ऊर्जा है। जब उसका उपयोग रसोई घर में कोई खाद्य पदार्थ पकाने या गर्म करने के लिये किया जाता है तो इस विद्युत को 'ऊष्मा' कहा जाता है। जब किसी विद्युत ऊर्जा का उपयोग रेफ्रिजरेटर में किया जाता है तो वह 'शीतलता' देती है और बल्ब के जरिये 'प्रकाश' देती है। इन सभी मामलों में वही विद्युत है, किन्तु उसका उपयोग विभिन्न प्रकार से तथा विभिन्न कार्यों के लिये किया जाता है तो उसे शक्ति, प्रकाश, शीतलता तथा ऊष्मा जैसे भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जब आध्यात्मिक ऊर्जा जो कि 'आत्मा' है अर्थात् चेतना की शक्ति जो कि आत्मा है, स्वयं को इच्छा, संकल्प, अभिलाषा, ध्यान, भावना या विचार के रूप में अभिव्यक्त करती है तो हम यह कहते हैं कि हमारा 'मन' कार्य कर रहा है। जब वह स्वयं को समझ, तर्कना या निर्णय के रूप में अभिव्यक्त करती है तो हम यह कहते हैं कि हमारी 'बुद्धि' कार्य कर रही है और जब वह 'स्मृति' के रूप में प्रकट होती है तो हम यह कहते हैं कि हमारा चित्त कार्य कर रहा है। इसलिये वे आत्मा की चेतना की केवल विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

मन तथा बुद्धि के बारे में सत्य

ईश्वर द्वारा हमें प्रदान किये गये ज्ञान के आधार पर तथा पूर्ववर्ती पृष्ठों में स्पष्ट किये गये आधारों पर हम विश्वासपूर्वक यह कह सकते हैं कि मन तथा बुद्धि आत्मा से भिन्न सत्ता नहीं हैं और न ही ये आत्मा के भौतिक विशेषक हैं और न ही वे किसी भौतिक तथा सूक्ष्म आच्छद (Sheath) के अन्य नाम हैं बल्कि वे आत्मा की प्रत्यक्षण करने, अनुभव करने, ध्यान देने, अनभिज्ञ होने तथा सोचने की योग्यतायें हैं। मस्तिष्क, तन्त्रिका-तन्त्र तथा जैव-रासायनिक परिवर्तन

इनकी अभिव्यक्ति केवल नैमित्तिक हैं। मन, बुद्धि आदि आत्मा की स्वयं की चेतना के इन रूपों को या आत्मा की इन अभिव्यक्तियों को दिये गये नाम हैं।

शरीर में जो आत्मा निवास करती है वह एक स्वयं 'प्रकाशमान बिन्दु' है। वह सूक्ष्मतम की अपेक्षा भी सूक्ष्म है, अनादि है, अमर है और मन तथा बुद्धि उसमें होती हैं, क्योंकि वे आत्मा से सम्बद्ध हैं। मन तथा बुद्धि को आत्मा से भिन्न मानना और उन्हें पदार्थ के रूप मानना — आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करना है, क्योंकि यदि किसी सत्ता में चेतना या चैतन्य न हो तो उसे 'आत्मा' नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इस सूक्ष्म बिन्दु आत्मा में, आत्मा के सभी अस्तित्वों में, सभी विचार, सभी भावनायें तथा संस्कार उसके भाग स्वरूप होते हैं तथा फिर भी अदृश्य तथा अनभिव्यक्त होते हैं। यही वह विलक्षणतम सत्य है जिसे परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा के मुख से हमें समझाया है।

विचार, मन, बुद्धि, चेतना या आत्मा की प्रकृति पर कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करने के बाद और यह निष्कर्ष निकालने के बाद कि 'आत्मा' शरीर और मस्तिष्क से भिन्न एक सत्ता है और यह कि मन मस्तिष्क की एक अनुघटना नहीं है, यद्यपि आत्मा मस्तिष्क का उपयोग करता है। आइये, अब हम इस बात पर चर्चा करें कि मस्तिष्क में आत्मा कहाँ रहती है और शरीर तथा मन का सम्बन्ध क्या है ?

पुनर्जन्म की घटनायें आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं

"यदि कोई व्यक्ति अपने कर्मों के फल इस जन्म में नहीं पाता तो वह उन्हें अगले जन्म में पाता है। इस प्रकार कर्म का नियम अनुल्लंघनीय है। इसलिये बुरे कर्म कभी न करो, क्योंकि जहाँ-कहीं भी आत्मा जाती है कर्म उसके साथ जाते हैं"

— *शिव भगवानुवाच*

जीव-विज्ञानी, तन्त्रिका-विज्ञानी तथा मनोविज्ञानी जो कि यह विश्वास करते हैं कि आत्मा या अभौतिक मन नामक कोई भी सत्ता नहीं है, किन्तु केवल मस्तिष्क है। लेकिन कुछ बच्चों द्वारा बताई गई पुनर्जन्म की कुछ कहानियों की व्याख्या वे लोग नहीं कर सकते। यहाँ उनमें से कुछ कहानियाँ दी गई हैं, जो कि 'नवभारत' 1976 के एक विशेष अंक में प्रकाशित कहानियों से हैं। ये सभी कहानियाँ इस सत्य को प्रकट करती हैं कि 'आत्मा' नामक एक सत्ता है जो कि भौतिक मृत्यु के बाद भी उत्तरजीवित रहती है तथा कोई अन्य शरीर ग्रहण कर लेती है।

यह वस्तुत: एक विचित्र बात थी कि इस्माईल नामक एक छोटा लड़का अपने जन्म-स्थान से लगभग तीन-चौथाई मील की दूर पर स्थित एक स्थल पर पहुँचा जहाँ उसने एक आइसक्रीम विक्रेता को देखा। इस्माईल ने अकस्मात् उससे पूछा, 'क्या तुम मुझे पहचानते हो?' मेहमत नामक आइसक्रीम विक्रेता उसे पहचान न सका, क्योंकि उसने उस बच्चे को पहले कभी भी नहीं देखा था। इसलिये उसने नकारात्मक भाव में अपना सिर हिला दिया। इस पर इस्माईल ने मेहमत से पूछा

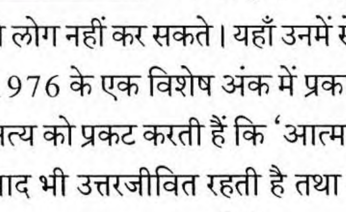

इस्माईल

कि उसने आइसक्रीम बेचना कब से आरम्भ किया, क्योंकि वह पहले तो सब्जी बेचा करता था।

अत्यन्त आश्चर्य से फैली हुई आँखों से इस्माईल की ओर देखते हुए मेहमत ने स्वीकार किया कि उसने इस्माईल को पहचान लिया है, यद्यपि उसे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि वह छोटा-सा लड़का स्वयं को आबित सुजुल्मस कैसे कह रहा था ! वह यह बात अच्छी तरह से जानता था कि आबित सुजुल्मस फलों और सब्जियों का थोक व्यापार किया करता था, जिन्हें वह अपने बागों में पैदा किया करता था, जिनकी देखभाल उसके नौकर किया करते थे, किन्तु तीन व्यक्तियों ने मिलकर पहले ही उसका खून कर दिया था। इसलिये मेहमत यह बात समझ नहीं पा रहा था कि वह छोटा लड़का स्वयं को आबित सुजुल्मस कैसे कह रहा था। इसलिये मेहमत की आँखें एक प्रश्न चिह्न की भाँति खुली की खुली रह गईं।

मेहमत को बताया गया कि यह छोटा लड़का इस्माईल जब साफ-साफ बोल भी नहीं सकता था तब वह अपने पिता को अपने पुनर्जन्म के बारे में बताने लगा। डेढ़ वर्ष की आयु में उसने कहा, 'मैं यहाँ के जीवन से उकता गया हूँ। मैं अपने बच्चों को देखने के लिये अपने घर जाता हूँ।' उसका पिता यह सुनकर भौंचक्का रह गया तथा कुछ भी न बोल सका। वह एक कसाई था तथा अदन में उसका धन्धा फल फूल रहा था, न केवल वह अपने बेटे की बात सुनकर उलझन में पड़ गया, बल्कि उसके सगे सम्बन्धी भी चकरा गये थे।

इस्माईल का जन्म 1956 में हुआ था और वह अपने पिता का नौवाँ बेटा था और उसके नाक नक्शे दूसरे बच्चों से भिन्न थे। उसके सिर पर घाव जैसा एक निशान था जो कि उसके बढ़ने के साथ धुंधला पड़ता गया।

जैसे ही इस्माईल ने बोलना सीखा वैसे ही वह अपने पूर्व जन्म से सम्बन्धित बातें बताने लगा। उसने कहा कि वह उसके स्थान से तीन-चौथाई मील की दूरी पर स्थित एक नगर का निवासी है। उसकी स्मरण-शक्ति देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। एक धनी व्यापारी होने के नाते आबित सुजुल्मस उस

नगर में सुविख्यात था। उसकी पहली पत्नी हातिस थी, जिससे उसे कोई सन्तान नहीं प्राप्त हुई। इसलिये आबित ने उसे तलाक दे दिया और उसे अपनी कुछ सम्पत्ति दे दी। उसके पश्चात् उसने एक सुन्दर लड़की से विवाह किया जिससे उसे कई बच्चे प्राप्त हुये।

उसके बाद एक दु:खद घटना हुई। 31 जनवरी, 1956 को आबित सुजुल्मस 50 वर्ष का था। उसने अपने बागों में काम करने के लिये पड़ोस के गाँव के तीन आदमियों को नौकरी पर लगा रखा था।

उस दिन उन तीन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति आबित सुजुल्मस के पास आया और उसने आबित से कहा कि वह अपने अश्वशाला चलकर एक घोड़े को देखे जो कि लंगड़ा हो गया था। सुजुल्मस तत्काल उसके साथ अश्वशाला गया जहाँ दो अन्य व्यक्ति पहले से ही उपस्थित थे। कोई भी सन्देह न करते हुए जैसे ही आबित उस घोड़े के पैरों की जाँच करने के लिये झुका वैसे ही उनमें से एक व्यक्ति ने लोहे की एक छड़ से उसके सिर पर जबरदस्त वार किया। परिणाम स्वरूप, सुजुल्मस ने केवल एक गहरी सांस ली और ढेर हो गया।

तथापि, उसकी कराह उसकी पत्नी शाबिदा तथा उसके बच्चों ने सुन ली और वे लोग तुरन्त भागते हुए अश्वशाला में पहुँचे, किन्तु जैसे ही वे वहाँ पहुँचे वैसे ही उन्हें भी मार डाला गया।

उसके बाद हत्यारे लोग भाग खड़े हुये, किन्तु उन्हें एक सप्ताह के भीतर गिरफ्तार कर लिया गया। उनमें से दो व्यक्तियों को फाँसी दे दी गई, किन्तु तीसरे व्यक्ति को कारावास का दण्ड दिया गया, जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अदन में हुई इस घटना के कुछ माह बाद उस स्थान से लगभग तीन-चौथाई मील की दूरी पर इस्माईल का जन्म हुआ, जिसके सिर पर घाव का एक निशान था। ईश्वर ही जानता था कि क्या यह निशान उसी घाव का था जो कि आबित सुजुल्मस के सिर पर किये गये घातक वार के परिणाम स्वरूप लगा था।

जब इस्माईल तीन वर्ष का हो गया तो उसके दोनों परिवारों के सदस्यों ने अर्थात् वर्तमान परिवार तथा पूर्व जन्म का परिवार के सदस्यों ने उसे उनसे मिलने

की पूरी अनुमति दे दी। अब वह स्पष्ट शब्दों में कहने लगा कि वह एक विवाहित व्यक्ति था, यह कि उसने दो बार विवाह किया था, क्योंकि उसकी पहली पत्नी नि:सन्तान थी, यह कि उसकी दूसरी पत्नी शाबिदा बहुत सुन्दर थी, यह कि 50 वर्ष की आयु में उसके एक नौकर ने उसकी हत्या कर दी थी। उसने यह भी कहा कि रमजान नामक उसके एक नौकर ने लोहे की एक छड़ से उसके सिर पर वार किया था जिसके परिणामस्वरूप वह मर गया था, यह कि उसकी पत्नी चीख सुनकर अपने दो पुत्रों इस्माईल और जिनू के साथ भागती हुई उसके पास आई थी और उन तीनों को भी मार डाला गया। ये सभी बातें सच थीं और नगर के लोग सुजुल्मस की दु:खद मृत्यु के बारे में सब कुछ जानते थे।

अब इस्माईल अपने पूर्व जन्म के नगर गया जहाँ उसका कारोबार बन्द हो गया था और उसकी पहली पत्नी दो कमरों वाली एक मिट्टी की झोपड़ी में रहती थी। उसे इस दयनीय दशा में देखकर इस्माईल की आँखों में आँसू भर आये। प्रेम के आवेग में छोटे इस्माईल ने आगे बढ़कर अपने छोटे-छोटे हाथों से उसका आलिंगन किया जैसा कि कोई प्रेमपूर्ण पति अपनी पत्नी को असुखद दशा में देखकर करता है। अब भी इस्माईल अपनी पूर्व जन्म की पत्नी के घर जाता रहता है, किन्तु वह अपनी पत्नी को उसकी दयनीय दशा से मुक्त करने के लिये धनी होकर अपने पूर्व जन्म में लौट नहीं सकता। इसलिये छोटा इस्माइल हमेशा दु:खी रहता है।

इस्माइल अपने पूर्व जन्म की पत्नी के साथ

यह सुनकर आइसक्रीम विक्रेता इस्माईल को आश्चर्यचकित होकर देखता रहा। इस बीच इस्माईल ने उस आइसक्रीम विक्रेता से कुछ आइसक्रीम खरीदकर खाया था। जब इस्माईल का पिता उस आइसक्रीम विक्रेता को पैसे देने लगा तो

इस्माइल ने कहा, ''पिताजी उसे पैसे न दीजिये। वह अभी भी मेरा कर्जदार है। मेरे पूर्व जन्म में वह मुझसे सब्जियाँ उधार लेकर बेचा करता था और उस पर मेरी रकम बकाया है।'' इधर इस्माइल के पिता ने आइसक्रीम विक्रेता मेहमत की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा तो मेहमत की आँखों में आश्चर्य का भाव उतर आया और उसने कहा, ''कृपया पैसे न दीजिये, इस्माईल का कहना सही है।'' ऐसा कहते हुए मेहमत की आँखें किसी अज्ञान कारण वश आँसुओं से भर आई और उसने कहा, ''अल्लाह महान और महिमावान है।''

गोपाल कहा करता था — 'मैं शक्तिपाल शर्मा हूँ !'

अपने पिता की एक उंगली पकड़े हुए छोटा गोपाल एक विवाह समारोह की धूमधाम देख रहा था — शहनाइयाँ बज रही थीं, बाजे बज रहे थे, लोगों ने नये-नये तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र पहन रखे थे और चारों ओर सजावट थी। आठ या नौ वर्ष का वह बालक बाजे वालों द्वारा बजाई जा रही धुन में खो गया था।

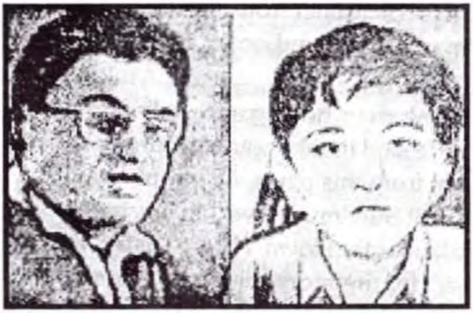

शक्तिपाल शर्मा *गोपाल गुप्ता*

किन्तु अकस्मात् वह चीख उठा उसकी नजर भीड़ में शामिल किसी व्यक्ति पर जा पड़ी थी जिसे देखकर वह इतना भयभीत हो गया कि वह अपने पिता के शरीर से लिपट गया और उसकी बांहों में आश्रय पाने की कोशिश करने लगा। पूर्व जन्म की कुछ घटनायें अचानक एक के बाद एक उसके मन में कौंध गईं और वह रोते हुए कहने लगा : 'पिताजी, यह स्थान तुरन्त छोड़ दीजिये, यह मनुष्य मुझे मार डालेगा.......... उसने एक बार पहले भी मेरा खून बहाया था।'

छोटा गोपाल डर से काँप रहा था तथा अपने पिता के पैरों से लिपट रहा था। उसे इस तरह रोता हुआ देखकर उसका पिता चौंक उठा और विवाह

समारोह में शामिल कुछ लोगों का ध्यान भी उसकी ओर आकृष्ट हुआ। गोपाल का पिता यह जानता था कि बचपन से ही गोपाल ऐसी असम्बद्ध बातें किया करता था। ढाई वर्ष का होने पर गोपाल यह कहने लगा कि वह मथुरा का निवासी था और उसका वास्तविक नाम 'शक्तिपाल शर्मा' था। उसका पूरा परिवार मथुरा में रहता था जहाँ 'सुख संचारक कंपनी' नामक एक बड़ी फर्म थी। तथापि गोपाल की माता को अस्पष्ट रूप में यह मालूम था कि वह पूर्व जन्म की बातों का स्मरण कर रहा है और बुजुर्गों का यह कहना था कि पूर्व जन्म का स्मरण उसकी आसन्न मृत्यु का संकेत था।

किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि गोपाल अब भी जीवित है और अपने माता-पिता के साथ दिल्ली में रह रहा है। उसके पिता एक गैस स्टेशन के मैनेजर हैं तथा अपने माता-पिता का इकलौता प्यारा बेटा है। जब आरम्भ में उसकी माता ने उसे ऐसी बातें करते हुए सुना था तो उसे डांटकर चुप करा दिया था। किन्तु माता को कभी-कभी ऐसी आशंका होती थी कि उसके बेटे को कोई हानि तो नहीं होगी? दूसरी ओर, गोपाल के पिता अपने बेटे की बातों की उपेक्षा कर देते थे। किन्तु उस दिन जब आठ या नौ वर्ष का बालक गोपाल अपने पिता के साथ दिल्ली के सीताराम बाजार में एक विवाह समारोह में गया था और एक व्यक्ति को देखकर चीख पड़ा था और रोने लगा था तो उसके पिता अपने भयभीत बालक को देखकर हैरत में पड़ गये तथा घबरा गये। इसलिये उन्होंने यह निर्णय किया कि बालक की दशा की ओर किसी का ध्यान जाने के पहले ही वे घर लौट जायें।

घर लौटने पर भी गोपाल की दशा बिल्कुल नहीं बदली और वह तब भी उतना डरा हुआ था कि बार-बार रो रहा था। इसे देखकर उसके माता-पिता ने पहली बार पूरी तरह से सुनने की कोशिश की कि वह क्या कहना चाहता था। सौभाग्यवश गोपाल के पिता के एक अन्तरंग मित्र एक दिन अपनी पत्नी के साथ गोपाल के घर आये। जब उन्होंने गोपाल से बात की तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वे सोच रहे थे कि बालक की बातें उसके पूर्व जन्म की घटनाओं से

सम्बन्धित तो नहीं थी या कहीं उसका दिमाग तो खराब नहीं हो गया था या कि वह बातें बालक की कल्पना तो नहीं थी या बालक मतिभ्रमित तो नहीं हो गया था?

गोपाल ने कहा कि विवाह समारोह की भीड़ में जिस व्यक्ति को देखकर डर गया था वह व्यक्ति उसका सगा भाई था जिसने उसे पूर्व जन्म में गोली मार दी थी। इस बात पर विचार और चर्चा करने के बाद गोपाल के पिता तथा उनके मित्र इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि गोपाल को मथुरा ले जाकर मामले की पूरी तरह से जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए, ताकि यह देखा जा सके कि गोपाल मथुरा की सड़कों, गलियों आदि से पूर्णत: परिचित था या नहीं। इससे यह भी प्रकट हो जाता है कि बालक ने जो कुछ भी कहा था वह कहाँ तक सच था।

इसलिये गोपाल के पिता अपने दो या तीन मित्रों को साथ लेकर गोपाल को मथुरा ले गये। गोपाल ने बताया कि एक विशिष्ट गली के कोने पर एक पनवाड़ी की दुकान थी। वे मथुरा पहुँचे और उन्होंने गोपाल को एक ऐसे स्थान पर छोड़ दिया जो कि गलियों और छोटी गलियों तथा उनकी शाखाओं और प्रशाखाओं की भूल-भुलैया में स्थित था। वे यह जानना चाहते थे कि क्या गोपाल उन्हें पहचान लेगा और उनसे गुजरते हुए उस स्थान पर पहुँच जायेगा जो कि उसने बताया था। गोपाल अपने जन्म के बाद मथुरा कभी भी नहीं गया था, किन्तु आश्चर्य की बात थी कि गोपाल उन गलियों की भूल-भुलैया से विश्वासपूर्वक और आसानी से आगे बढ़ता जा रहा था मानो कि वह उनसे भली-भाँति परिचित था। उसने न तो किसी मोड़ पर रुककर इधर-उधर देखा और न वह किसी चौराहे पर रुका। वह तब तक आगे बढ़ता गया जब तक कि वह गली के कोने पर न पहुँच गया जहाँ उसने अपने पिता और उनके मित्रों को पनवाड़ी की दुकान दिखाई। वह आगे बढ़ता गया और उस स्थल पर पहुँचा जहाँ 'सुख संचारक कम्पनी' का परिसर स्थित था और उसने कहा, "यही मेरी फर्म — सुख संचारक कम्पनी है।" यह सब आश्चर्यजनक था, फिर भी सच था।

लोगों को आश्चर्य हुआ, किन्तु कुछ लोगों को सन्देह था। उन्होंने यह

सोचा कि गोपाल ने फर्म का साइन बोर्ड पढ़ लिया होगा और फिर कह दिया होगा कि यही वह फर्म है। उसके पिता के साथ आये एक मित्र ने कहा, "बेटे, अब अपना घर ढूँढ़ो।" गोपाल अपने पूर्व जन्म के घर की ओर बढ़ गया मानो कि वह उन रास्तों पर बरसों चलता रहा हो। इस बीच बाजार में यह अफवाह फैल गई कि दिल्ली से लाया गया एक बालक यह दावा कर रहा है कि वह सुख संचारक कम्पनी नामक विख्यात मेडीकल फर्म का प्रोपराइटर शक्तिपाल शर्मा है। लोग यह जानते थे कि 1948 में शक्तिपाल शर्मा की मौत हुई थी। आठ साल के बाद सन् 1956 में उसका पुनर्जन्म हुआ था। यह देखकर वे लोग उलझन में पड़ गये थे कि पूर्व जन्म की घटनाओं के बारे में बालक ने जो कुछ भी कहा था वह बिल्कुल सही था। इसलिये भारी भीड़ गोपाल के पिता और उनके मित्रों के पीछे चलने लगी। वे लोग यह जानना चाहते थे कि ये बातें कहाँ तक सच थीं या दूसरे शब्दों में, पुनर्जन्म एक सच्ची घटना है या किसी बीमार दिमाग द्वारा गढ़ी गई मनगढंत कहानी है?

लोगों का आश्चर्य उस समय पराकाष्ठा पर जा पहुँचा जब गोपाल एक भव्य भवन के सामने पहुँचा और उसने कहा कि यह मेरे पूर्व जन्म का घर है। आश्चर्य चकित लोग एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। विशाल, भव्य भवन की बालकनी में खड़ी एक महिला भी इस दृश्य को आश्चर्य पूर्वक देख रही थी। उसने छोटे बालक को ऊपर आने का इशारा किया। चूँकि बालक उस भवन के दरवाजों, खिड़कियों, बरामदों तथा सीढ़ियों से पूर्व जन्म से ही परिचित था इसलिये उसने उस भवन में प्रवेश किया और फुर्ती से सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ पल भर में वहाँ जा पहुँचा जहाँ वह महिला खड़ी हुई थी। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि बालक उस स्थान पर इतनी आसानी से कैसे जा पहुँचा जहाँ लंबे और जटिल गलियारों तथा बारामदों आदि को पार करने के बाद ही पहुँचा जा सकता था। क्या बालक का वस्तुत: पुनर्जन्म हुआ था? क्या वह बालक अपने पूर्व जन्म में वस्तुत: शक्तिपाल शर्मा था? लोग कानाफूसी करने लगे। उनके मन में हजार प्रश्न उठने लगे ओर वे बालक से कुछ प्रश्न पूछने लगे।

यह देखकर गोपाल अर्थात् शक्तिपाल शर्मा के पूर्व जन्म के परिवार के सदस्य भी आश्चर्य में पड़ गये। गोपाल ने उन्हें बताया कि उसकी पत्नी हमेशा उसका विरोध करती थी। उस दिन जब उसने अपनी पत्नी से 5 हजार रुपये माँगे तो वह अप्रसन्न हो गयी थी। पत्नी ने क्रोधित होकर यह कहा कि वह कम्पनी के खाते में से रकम ले ले। गोपाल के पूर्व जन्म की पत्नी ने गोपाल के इस कथन को स्वीकार किया। गोपाल ने आगे लोगों को यह बताया कि उसी दिन उसके छोटे भाई ने उसे गोली मार दी थी। उसने लोगों को वह स्थल दिखाया जहाँ उसकी हत्या हुई थी।

उसके पश्चात् गोपाल को फर्म 'सुख संचालक कम्पनी' के परिसर में ले जाया गया और वहाँ उसने हर चीज और हर जगह को पहचान लिया। उसके पूर्व जन्म के नौकरों सहित सभी लोगों के प्रति उसका व्यवहार पूर्णत: स्वाभाविक तथा परिचित था जैसा कि उसके पूर्व जन्म में हुआ करता था। उसने उस स्थान को भी ठीक-ठीक पहचान लिया जहाँ वह बैठा करता था और कार्य किया करता। उस कुर्सी और मेज को भी पहचान लिया जिनका उपयोग वह किया करता था। उसके बावजूद गोपाल अर्थात् पूर्व जन्म के शक्तिपाल शर्मा के एक मित्र श्री नारायण ने कहा, "थोड़ा ठहरिये, मैं एक और परीक्षा लूँगा और यदि वह उसमें खरा उतरता है तो मुझे विश्वास हो जायेगा।"

शक्तिपाल शर्मा का वह मित्र कहीं से एक अल्बम ले आया और उसने वह अल्बम बालक के सामने रख दिया। उसने एक फोटोग्राफ उठाया और बालक से कहा कि वह स्वयं को उस फोटोग्राफ में पहचाने और यह भी बताये कि वह फोटोग्राफ कब लिया गया था।

फोटोग्राफ में अनेक चेहरे थे। इसके पहले कि दूसरे उत्सुक लोग यह अनुमान लगाते थे कि फोटोग्राफ में शक्तिपाल शर्मा कौन था, गोपाल ने फोटोग्राफ में एक पर्दे के पीछे छिपे एक व्यक्ति के पैरों की ओर इशारा किया और तुरन्त कहा, "यह रहा ! मेरा चेहरा और शरीर पर्दे के पीछे छिपा हुआ है। यह फोटोग्राफ आस्ट्रेलियन हाई कमिश्नर के दौरे के दौरान लिया गया था जब मैं उनके साथ

नाव में था।'' गोपाल अर्थात् पूर्व जन्म के शक्तिपाल शर्मा के मित्र श्री नारायण आश्चर्य से अवाक् रह गये और आश्चर्य से फैली हुई आँखों से गोपाल को देखने लगे, क्योंकि गोपाल ने न केवल फोटोग्राफ में स्वयं को पहचान लिया था बल्कि ठीक-ठीक यह भी बता दिया था कि फोटोग्राफ कब लिया गया था।

गोपाल आज भी जीवित है और अपने माता-पिता के साथ दिल्ली में रहता है। यह ज्ञात नहीं कि क्या इन सारे सबूतों के आधार पर उसे उसके पूर्व जन्म की सम्पत्ति में कोई हिस्सा दिया गया या नहीं। इस सन्दर्भ में कानूनी दृष्टिकोण से यह कहा नहीं जा सकता है कि उसके पूर्व जन्म की उसकी सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार है या कि उससे वंचित कर दिया जायेगा।

एक ब्राह्मण बालिका जो कि हरिजन थी

उत्तर प्रदेश में मैनपुरी नामक एक जिला है। दस वर्ष पूर्व उसकी कंकरिया नामक बस्ती में एक घटना हुई। वह रामनवमी उत्सव का दिन था। लालाराम नामक एक हरिजन (भंगी) ने अपनी पत्नी पूना को क्रोध में आकर झाड़ू के डंडे से पीटा था। पूना को इस पिटाई से बहुत क्रोध आया और कोयला बीनने का बहाना बनाकर वह रेलवे लाइन की ओर चली गई और वहाँ उसने शिकोहाबाद से आ रही एक रेलगाड़ी के सामने स्वयं को झोंक दिया और मर गई। यह समाचार पाते ही पूना के परिवार के लोग रोते-कलपते हुए घटना स्थल पर पहुँचे। उसके बाद उन्होंने पंचायत बुलाई और पूना का दाह संस्कार किया। उसके कुछ दिनों बाद पूना के परिवार के लोग उस दु:खद घटना को भूल गये।

उसके बाद 1969 में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र की पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम मधु रखा गया। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र मैनपुरी के निवासी थे और वैद्य थे। जब मधु बोलने लायक हुई तो वह विशेषत: सूअर के मांस के बारे में विचित्र बातें कहने लगी। यद्यपि बालिका के माता-पिता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, फिर भी उन्होंने बालिका की बातों को बचकानी बातें मानकर उनकी उपेक्षा कर दी।

मधु

एक दिन लक्ष्मीनारायण वैद्य अपनी बालिका को साथ लेकर रेलवे स्टेशन पर घुमाने गये। वहाँ मधु ने एक रेलगाड़ी को देखा तो वह चिल्ला पड़ी, 'पिताजी, इसी रेलगाड़ी से मैं कटी थी।' तब भी लक्ष्मीनारायण ने मधु की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

वर्ष 1973 में होली के त्यौहार के दिन लक्ष्मीनारायण अपने घर के दरवाजे के पास बैठे हुए थे। घर के पास लकड़ी में बुरादे का ढेर पड़ा हुआ था। वहाँ एक भंगी आया और उसने कहा, "वैद्यजी, मैं थोड़ा लकड़ी का बुरादा लेना चाहता हूँ।" वैद्य ने कहा, "तुम उसका क्या करोगे?" सच्ची बात बताने के लिये मजबूर होकर उस भंगी ने कहा, "आज होली का त्यौहार है। मैंने एक सूअर मारा है, जिसे मैं लकड़ी के बुरादे में भुनना चाहता हूँ।"

वैद्य जी उसकी बात समझ गये और उन्होंने उसे बुरादा ले जाने दिया। छोटी बालिका मधु उस समय अपने पिता के पास खड़ी थी और अपने पिता और उस भंगी का वार्तालाप सुन रही थी। जब भंगी बुरादा लेने लगा तो मधु ने अपने पिता से कहा, "पिताजी, चलिये आज हम भी जाकर सूअर का मांस खायें।"

मधु की बात सुनकर वैद्यजी भौचक्का हो गये। उन्होंने कहा, "तुम सूअर के मांस के बारे में क्यों कह रही हो ? आज होली का त्यौहार है और घर में स्वादिष्ट पकवान बन रहे हैं। क्या तुमने मेरे घर में कभी मांस देखा है ? क्या तुम मूर्ख हो कि सूअर के मांस की बात कर रही हो?"

मधु ने साहस बटोरकर कहा, "पिता जी मैं एक भंगिनी हूँ। यह आप नहीं जानते। कांकरिया में मेरा एक घर है। वहाँ मेरी एक बहू भी है। वहाँ मेरा पति भी है। वहाँ पुआल के नीचे कुछ करेन्सी नोट हैं। मेरे कपड़े मेरी बहू के संदूक में रखे हुए हैं। मैंने ज़मीन में भी कुछ रुपये गाढ़ रखे हैं। छोटी मधु एक ही साँस में यह सब कह गई। उसकी बातें सुनकर वैद्य जी आश्चर्यचकित आँखों से मधु को देखने लगे।'

वैद्य जी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। उनकी एक दवाई की दुकान भी है। वे बहुत लोकप्रिय हैं। उन्होंने मधु से अनेक प्रश्न पूछे और मधु ने सभी प्रश्नों के उत्तर दिये। वैद्य जी ने मधु से पूछा उसका पति कहाँ रहता था और उसका नाम क्या था? मधु ने स्पष्टत: कहा कि उसके पति का नाम लल्लाई था और वह कांकरिया बस्ती में रहता था। उसने आगे यह कहा कि उसके घर के पास एक नीम का पेड़ था, एक चबूतरा भी था और एक सिनेमा भवन भी था और पास ही एक बड़ा नाला भी था। मधु की परीक्षा लेने के लिये वैद्य जी ने उससे पूछा कि क्या वह अपने पति लल्लाई को पहचान सकती है? मधु ने संकुचाते हुए कहा, "उन्हें लल्लाई मत कहिये, वे मेरे पति हैं।" जब वैद्य जी ने मधु से कहा वह अपने परिवार के सदस्यों के नाम बताये तो मधु ने कहा, "मेरी अनेक बेटिया हैं जिनमें से एक नाम है — वासंती।"

मैंने * जुलाई 1973 में यह घटना सुनी। सबसे पहले मैं लक्ष्मीनारायण वैद्य से मिला जिन्होंने सबूत के तौर पर मधु को हाजिर कर दिया। उसे मैनपुरी की छपट्टी नामक बस्ती में स्थित वैद्य जी की दुकान पर बुलाया गया। मुझे अजनबी जानकर मधु पहले-पहले तो झिझकी। मैंने मधु को एक आम दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। वैद्य जी की उपस्थिति में मैंने मधु से अनेक प्रश्न पूछा और उसने उन प्रश्नों के सही-सही उत्तर दिये। मधु ने उस धन को जो कि उसने अपने पूर्व जन्म में ज़मीन के नीचे गाढ़ रखा था और उन करेन्सी नोटों को जो कि उसने पुआल के नीचे छिपा रखे थे, पाने की बहुत उत्सुकता दर्शाई। वह अपनी बहू के संदूक से अपने कपड़े भी निकाल लेना चाहती थी। मधु से वार्तालाप करने के बाद मैं कांकरिया बस्ती के हरिजन क्षेत्र में गया। जब मैंने वहाँ के निवासियों से लालाराम के बारे में पूछा तो वहाँ के निवासी उलझन में पड़ गये और उन्होंने कहा कि वहाँ इस नाम का कोई भी व्यक्ति नहीं था। मैंने उनसे पूछा कि वहाँ लल्लाई नाम का कोई भंगी था ? लोग खामोश रहे। जब मैंने अपना प्रश्न दोहराया तो एक व्यक्ति ने कहा, "हाँ, लल्लाई यहाँ रहता था। किन्तु वह मर चुका है।"

* *वह लेखक जिसने समाचार पत्र में यह लेख लिखा था।*

मैंने पूछा, "उसे मरे कितने दिन हुये?" एक निवासी ने कहा, "लगभग दो वर्ष हुए।" अपनी उत्सुकता को छिपाते हुए मैंने पूछा कि लल्लाई की पत्नी का क्या नाम है और वह कहाँ रहती है? मुझे बताया गया कि लल्लाई की पत्नी पूना लगभग दस वर्ष पूर्व राम नवमी के दिन एक चलती हुई रेलगाड़ी से कटकर मर गई थी।

इसके बाद मेरे पास बहुत से लोग इकट्ठा हो गये। जब मैंने लल्लाई के परिवार के सदस्यों के बारे में जानना चाहा तो उन्हें आश्चर्य और सन्देह होने लगा। जब मैंने आश्वस्त किया तो लल्लाई का पुत्र इन्दर आगे आया और उसने अपनी माता पूना तथा अपने पिता लल्लाई के बारे में सब कुछ बताया। वासंती ने कहा कि उसका विवाह हो गया है। इन्दर ने बताया कि पूना वासंती को बहुत चाहती थी। इन्दर ने मुझे अपना घर भी दिखाया। नीम का पेड़, मिट्टी का चबूतरा और एक पुराना कुआँ आज भी वहाँ हैं। मैंने लोगों से पूछा कि रेल से कटकर पूना की मृत्यु क्यों और कैसे हुई ?

इन्दर ने कहा, "मेरी माता कोयले के टुकड़े बीनने के लिये रेलवे लाईन के पास गई थी। शिकोहाबाद से आती हुई रेलगाड़ी उसके सिर पर से निकल गई और उसके शरीर के दो टुकड़े हो गये।" जब मैंने इन्दर से पूछा कि क्या रेलगाड़ी से कटकर आत्महत्या करने के लिये रेलवे लाइन के पास गई थी तो उसने कहा, "नहीं, वह कोयले बीनने गई थी किन्तु अचानक रेलगाड़ी से कट कर मर गई।"

इन्दर के इस कथन को सुनकर अन्य बूढ़ा व्यक्ति मुस्कुरा उठा और उसने मेरी ओर इशारा करते हुए यह सूचित किया कि इन्दर का कहना सही नहीं था। तथापि मैंने उस विषय को समाप्त कर दिया। फिर मैंने वहाँ के निवासियों से पूछा कि क्या पूना को सुअर का मांस बहुत पसन्द था? उन सभी लोगों ने एक स्वर में उत्तर दिया कि पूना को सुअर का मांस बहुत पसन्द था। फिर मैं वैद्य जी और मधु से मिला। मैंने मधु से पूछा कि सुअर का मांस कौन पकाता था और कहाँ? मधु ने तुरन्त उत्तर दिया, "मेरी बहू पीतल के एक बड़े बर्तन में सुअर का मांस पकाया करती थी।" वैद्य जी ने मधु से पूछा कि क्या उनके घर में लोहे की कढ़ाई

नहीं थी? मधु ने उत्तर दिया, "नहीं।" आगे मैंने पूछा कि रेलगाड़ी से कट जाने के बाद वह कहाँ गई? छोटी मधु इन प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी। अपनी जिज्ञासा शानत करने के लिये मैंने मधु से पूछा कि लल्लाई किस किस्म का व्यक्ति था और वह उसे क्यों पीटा करता था? मधु ने कहा, "उसने बहुत शराब पी रखी थी और जब मैंने उसे रोका तो उसने झाड़ू के डंडे से मुझे पीटा।"

मधु के वर्तमान जन्म में उसके परिवार के सदस्य मांस और मछली नहीं खाते, फिर भी मधु सूअर के मांस की बातें करती रहती है। इस सन्दर्भ में वैद्य जी ने मुझे एक दूसरी बात बताई। उन्होंने कहा, "एक दिन मैं मधु को अपने साथ लेकर मेला देखने मैनपुरी गया। वहाँ मधु ने मुझसे कहा, "पिताजी, मुझे एक मंजीरा खरीद दीजिये।" मैंने उससे पूछा, "किस लिये?" उसने बताया कि वह मंजीरा बजाया करती थी। उसने बताया कि होली के त्यौहार के दिन उसका पति शराब पीकर नाचा करता था और उसकी बहू ढोलक बजाया करती थी। मैं कांकरिया की हरिजन बस्ती में लौटा जहाँ मैंने इन्दर को बुलाया। मेरे पूछने पर इन्दर ने बताया कि होली के दिन उसका पिता शराब पीकर आनन्दपूर्वक नाचा करता था और उसकी माता मंजीरा बजाया करती थी।"

दर्शनशास्त्र सम्बन्धी भारतीय पुस्तकों में पुनर्जन्म के विषय में बहुत लिखा गया है और उस पर यहाँ चर्चा करना अनावश्यक है। तथापि यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि मनुष्य के पूर्वजन्म के संस्कार अगले जन्म में उसके साथ जाते हैं।

पुनर्जन्म की इन घटनाओं का सत्यापन कोई भी व्यक्ति कर सकता है। ये घटनायें हमें इस बात पर विश्वास करने के लिये प्रेरित करती हैं कि 'आत्मा' नामक एक शाश्वत सत्ता है जो कि शरीर के मर जाने पर भी वह नहीं मरती। यह सत्ता भौतिक या पदार्थिक या प्रकृति नहीं है बल्कि अति-भौतिक, अधिभौतिक या आध्यात्मिक स्वरूप की है। जब तक हम इस बात पर विश्वास नहीं करते कि 'आत्मा' का अस्तित्व है तब तक हम विश्व की व्यवस्था तथा जीवन के प्रयोजन को समझ नहीं सकते।

शरीर से बाहर का अनुभव

"आत्मा एक पक्षी की तरह है और शरीर एक घोंसले या पिंजरे की तरह है। शरीर की तुलना पाँच घोड़ों वाली एक गाड़ी या मोटर-कार से की जा सकती है और आत्मा की तुलना एक चालक से की जा सकती है। जिस प्रकार कोई पक्षी किसी घोंसले या पिंजरे से बाहर निकल कर उड़ सकता है या जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने घर से बाहर विचरण कर सकता है या जिस प्रकार कोई चालक अपने वाहन के बाहर जा सकता है उसी प्रकार आत्मा शरीर के बिना भी विचरण कर सकती है और कार्य कर सकती है। स्मरण रहे कि शरीर एक सराय की तरह है, जिसे आत्मा किसी दिन छोड़ देगी। इसलिये शरीर के प्रति आसक्ति न रखो।"

—शिव भगवानुवाच

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी संस्था के संस्थापक ब्रह्मा बाबा को इस महान संस्था की स्थापना करने के पूर्व, एक बार यह आभास हुआ कि काका मूलचन्द जी के शरीर से उसकी मानव-आत्मा प्रचंड वेग से बाहर निकली और क्षण भर में दृष्टि पथ से विलुप्त हो गई। मूलचन्द जी दादा लेखराज (ब्रह्मा बाबा) के चाचा जी थे।[1] काका मूलचन्द एक लोकोपकारी व्यक्ति थे तथा हाथी दान्त से बनी वस्तुओं का व्यापार करते थे। जब दादा नगर के बाहर गये हुए थे तो काका की मृत्यु हो गई। दादा ने यह दृश्य एक दूरस्थ शहर में देखा। इस दृश्य ने दादा के इस विश्वास का समर्थन किया कि आत्मा अमर तथा शाश्वत है।

हमने यह भी सुना है कि कैसे ब्रह्मा बाबा ने व्यक्तिगत रूप से यह समझाया था कि उन्होंने कुछ समय तक शारीरिक असमर्थता का सामना करने के पश्चात् अपना स्थूल शरीर छोड़ दिया और अशरीरी होकर पवित्र, सूक्ष्मदेवता, अतीन्द्रिय

---

1. *'एक अद्भुत जीवन कहानी', ब्रह्माकुमारीज, माउण्ट आबू, पृष्ठ-24*

अवस्था प्राप्त की। अब वे हमारे बीच आते हैं और शिव बाबा के साथ मिलकर हमें उच्च सद्गुणों तथा उत्कृष्ट आचरणों का अमृत तुल्य ज्ञान प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार की अनेक अन्य घटनाओं के अतिरिक्त अशरीरी होने की ये घटनायें नि:संदिग्ध रूप से शरीर में आत्मा की विद्यमानता, उसके जीवनोत्तर तथा शरीर वाह्य अस्तित्व के मूलभूत सत्य को साबित करती हैं। एक ऐसी घटना सर ऑकलैन्ड गेड्डे [2] (Sir Auckland Geddes) द्वारा 26 फरवरी, 1937 को रॉयल मेडिकल सोसाइटी ऑफ एडिनबर्ग के सामने बताई गई। हम यहाँ नीचे उसका एक उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। इसमें एक ऐसे मनुष्य के अनुभव का वर्णन है, जिसकी मृत्यु हो गई थी किन्तु कुछ समय बाद वह जीवित हो गया। चिकित्सकीय उपचार उन कारणों में से एक कारण हो सकता है जिनके कारण वह शरीर में लौटा। इस व्यक्ति के अनुभव को शीघ्रलिपि द्वारा एक प्रवीण सचिव ने तब अभिलिखित किया था जब आत्मा शरीर में पुनर्वासित हो रही थी। उद्धरण नीचे दिया जा रहा है :

शनिवार, 9 नवंबर के दिन आधी रात के कुछ मिनट बाद मैं स्वयं को बहुत बीमार महसूस करने लगा और दो बजे तक मैं निश्चय ही तीव्र गैस्ट्रो-एन्ट्राइटिस से पीड़ित था, जिसके कारण लगभग 8 बजे तक मैं उल्टी तथा दस्त करता रहा। 10 बजे तक मुझमें बहुत तीव्र विष-बाधा, गहन गैस्ट्रोइटिस पीड़ा, अतिसार (diarrhoea) के सभी लक्षण विकसित हो गये, नाड़ी की गति तथा श्वसन गति को गिनना बहुत असम्भव हो गया। मैं सहायता के लिये टेलिफोन करना चाहता था, किन्तु मैंने यह पाया कि मैं ऐसा नहीं कर सकता था और बहुत शीघ्र मैंने अपनी सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति को समझ लिया। उसके बाद मुझे कभी भी ऐसा नहीं लगा कि मेरी चेतना किसी भी प्रकार से धुंधली हुई है, किन्तु अकस्मात् मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि मेरी चेतना एक अन्य चेतना से, जो कि मैं ही था, पृथक हो रही है। वर्णन के प्रयोजनार्थ हम उन्हें 'क' तथा 'ख' चेतनायें कहेंगे तथा बाद में जो कुछ होता है उस पूरे दौरान में अहम् 'क' चेतना से संलग्न

---

2. डॉ. गेड्डेस को 1977 में 'नाइक' की उपाधि दी गई थी।

रहेगा। मैंने यह जाना कि 'ख' व्यक्तित्व शरीर का है और जैसे-जैसे मेरी शारीरिक दशा बदत्तर होती गई और हृदय धड़कने के बजाय आकुंचित होने लगा वैसे-वैसे मैंने यह महसूस किया कि 'ख' चेतना, जो कि शरीर की थी, सम्मिश्र होने के अर्थात् सिर, हृदय तथा अन्तरंग आदि की चेतना से निर्मित होने के लक्षण दिखा रही थी। ये संघटक अधिक व्यष्टिक हो गये तथा 'ख' चेतना विघटित होने लगी तथा 'क' चेतना जो कि अब 'मैं' थी, पूरी तरह से मेरे शरीर के बाहर प्रतीत हुई, जिसे कि मैं देख सकता था।

धीरे-धीरे मैंने यह महसूस किया कि मैं न केवल अपने शरीर को देख सकता था परन्तु उस बिस्तर को भी देख सकता था जिस पर मैं सोया था, बल्कि पूरे घर और बाग की हर वस्तु को देख सकता था और फिर मैंने यह अनुभूति की कि मैं न केवल घर की, लन्दन की, स्कॉटलैन्ड की वस्तुओं को देख रहा था, बल्कि वस्तुत: जिस ओर भी मेरा ध्यान जाता था वहाँ की वस्तुओं को देख रहा था। आगे मुझे यह अनुभूति हुई कि **मेरे दृष्टि-क्षेत्र में न केवल साधारण त्रि-आयामीय विश्व की 'वस्तुयें' शामिल थीं, बल्कि जिन चार या पाँच आयामीय स्थानीय स्थानों में मैं रहता था उन स्थानों की वस्तुयें भी शामिल थीं।**

जैसे ही मैंने इन सभी वस्तुओं को देखना आरम्भ किया तो मैंने देखा कि 'क' चेतना मेरे शयन कक्ष में प्रविष्ट हुई, मुझे यह अनुभूति हुई कि उसे भारी आघात लगा और मैंने उसे टेलिफोन की ओर भागते हुए देखा, मैंने देखा कि मैं बिस्तर पर लेटा था और डॉक्टर मुझसे बहुत स्पष्ट रूप से बोल रहे थे, किन्तु मैं अपने शरीर के सम्पर्क में नहीं था और उनके प्रश्नों का उत्तर न दे सका। डॉक्टर ने एक सिरींज ली और तेजी से मेरे शरीर में किसी चीज़ का इंजेक्शन लगाया, बाद में मैंने जाना कि वह कपूर कैम्पर का इंजेक्शन था। जब हृदय अधिक मजबूती से धड़कने लगा तो मैं होश में लौट आया और मैं बहुत अधिक नाराज हो गया क्योंकि मैंने समझना आरम्भ किया ही था कि मैं कहाँ था और मैं 'देख' रहा था और मैं इसमें बहुत दिलचस्पी ले रहा था। मुझे शरीर में वापस लौटकर सचमुच क्रोध आ रहा था और एक बार वापस लौट आने पर हर वस्तु और किसी भी वस्तु को स्पष्टत: देखने की शक्ति विलुप्त हो गई थी तथा मेरे पास

चेतना की एक टिमटिमाहट भर गई थी, जो कि पीड़ा से परिपूर्ण थी।[3]

निष्कर्ष

1. उपर्युक्त वृत्तान्त यह दर्शाता है कि चेतना शरीर के बाहर कार्य कर सकती है

रोगी ने वर्णन किया है कि उसने घर में और मीलों दूर स्काटलैन्ड में तथा लन्दन में और जहाँ-कहीं भी उसका ध्यान गया वहाँ 'वस्तुयें' देखीं। इसका यह अर्थ है कि चेतना कोई अनुघटन (Epiphenomenon) नहीं है। वह न तो कोई जैव-रासायनिक उत्पाद है और न ही मस्तिष्क के कार्य का परिणाम है। मनुष्य न केवल शरीर के बाहर सोच सकता है और अनुभव कर सकता है, बल्कि देख भी सकता है और सुन भी सकता है, क्योंकि वृत्तान्त में यह कहा गया है कि रोगी ने डॉक्टर से यह कहते सुना कि 'वह लगभग मर गया है'। साक्ष्य यह दर्शाता है कि जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (Reticular Activating System) बाहरी उद्दीपन (Stimuli) प्राप्त करने तथा मस्तिष्क को कूटबद्ध विद्युत आवेगों के रूप में सन्देश भेजने का एक उपकरण मात्र है, किन्तु अन्यथा यह सचेतन व्यक्ति ही वस्तुत: आवेगों का संज्ञान लेता है और इस व्यक्ति को 'आत्मा' कहा जाता है।

2. जब प्रमस्तिष्कीय क्रिया (Cerebration) निम्नतम होती है तब मानसिक क्रिया (Mentation) अधिकतम होती है

ध्यान देने योग्य एक अन्य बात यह है कि हृदय की एक तालबद्ध दशा के कारण जिसे कि आकुंचन (Fibrillation) कहा जाता है, हृदय सम्पूर्ण शरीर में रक्त का सामान्य परिसंचरण कायम न रख सका और इस दशा में स्वाभाविक रूप से मस्तिष्कीय रक्त क्षीणता घटित हो जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रमस्तिष्कीय क्रिया या तो बन्द हो जाती है या उसके निम्नतम भाटे (Ebb) पर होती है। इसलिये, यदि चेतना मस्तिष्क का कोई कार्य होती तो अब

3. *'दि स्कॉट्समन', 26 फरवरी 1937, पृष्ठ-16, स्तंभ 3-4.*

उसे उसके निम्नतम भाटे पर होना चाहिए था या अत्यन्त धुंधली हो जाना चाहिये था। इसके विपरीत वृत्तान्त से हम यह पाते हैं कि जैसे-जैसे प्रमस्तकीय क्रिया कम होती गई वैसे-वैसे चेतना इतनी बढ़ती गई कि रोगी बहुत दूरी से देख और सुन सकता था। इसलिये, इससे स्पष्टत: यह सिद्ध होता है कि चेतना किसी ऐसी सत्ता का अन्तर्निहित गुण है जो कि मस्तिष्क से पृथक है तथा अभिज्ञता की उच्चतर अवस्थाओं के साथ अशरीरी रूप में अस्तित्व में रह सकती है।

3. चेतना — मस्तिष्क द्वारा सीमित है

रोगी ने यह कहा है कि जब अशरीरी 'अन्तर्विवेकशील व्यक्ति' शरीर में वापस समा गया तो उसकी दृष्टि तथा श्रवण-शक्ति की स्पष्टता धुंधली हो गई क्योंकि शरीर को एक इन्जेक्शन के जरिये पुनर्जीवित किया गया था। इससे यह प्रकट होता है कि जब आत्मा चेतना के ज़रिये कार्य करती है तब मस्तिष्क चेतना को सीमित करता है। मस्तिष्क उसे केवल त्रि-आयामीय वस्तुओं का अनुभव करने योग्य बनाती है, जबकि शरीर के बाहर आत्मा बहु-आयामीय अनुभव कर सकती है तथा अतीन्द्रिय दर्शन कर सकती है।

4. विचार तथा संकल्प आत्मा की अभिव्यक्ति हैं

जब रोगी अशरीरी था अर्थात् शरीर के बाहर था तब देख सकता था, सुन सकता था तथा अनुभव कर सकता था। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि विचार, प्रत्यक्षण, भावना, संकल्प, स्मृति आदि अमस्तिष्कीय कार्य हैं। सोचने तथा इच्छा करने का कार्य मस्तिष्क द्वारा नहीं किया जाता।

इसके अतिरिक्त, यह तथ्य कि रोगी शरीर में वापस लौट आने का इच्छुक नहीं था — यह दर्शाता है कि संकल्प या 'इच्छा' उस सत्ता से सम्बन्धित है जो कि शरीर के बाहर अस्तित्वमान रह सकती है तथा अन्तर्विवेकशील है।

5. आत्मा अपने साथ अतीतकालीन संस्कारों को ले जाती है

रोगी के पास अतीत की स्मृतिया थीं, जैसे कि उसने उल्टी कैसे की थी,

दस्त कैसे किये थे तथा पीड़ा का अनुभव कैसे किया था और यह भी कि जब डॉक्टर ने उसे कपूर (camphor) का इन्जेक्शन दिया था और वह शरीर में वापस समा गया था। इससे यह प्रकट होता है कि आत्मा अपने साथ अपने विचारों, अपनी भावनाओं तथा अपने कार्यों के संस्कार ले जाती है, जो कि सुषुप्त हो सकते हैं यह अभिव्यक्त हो सकते हैं जैसा कि अधिकांश मामलों में होता है।

यद्यपि, ये सभी तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हैं, फिर भी जो लोग चिकित्सा व्यवसायी हैं या जो लोग मनोविज्ञान में निष्णात हैं उन लोगों के सामने ये वृत्तान्त आते हैं तो वे लोग इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं कि शरीर के अतिरिक्त एक ऐसी अन्य सत्ता है जिसमें चेतना अन्तर्निहित होती है, जो कि इच्छा, विचार, संवेग, स्मृति आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है। किन्तु उनके पास सत्य को अस्वीकार करने का कोई भी आधार नहीं होता। तथापि यदि कोई व्यक्ति बिना किसी अभिनति के इन मामलों पर विचार करे, जैसे कि प्रतिवेदित किये गये हैं, तो वह यह पायेगा कि कोई भी अन्य प्राक्कल्पना नहीं बल्कि केवल आत्मा का अस्तित्व अशरीरी चेतना तथा अतीन्द्रिय दृष्टि के मामलों की यथोचित रूप से तथा संगत रूप से व्याख्या कर सकता है।

तथापि, कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि भ्रमणशील अतीन्द्रिय दृष्टि आदि बातें 'विभ्रान्ति' हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त मामले में रोगी शरीर से बाहर नहीं था, किंतु उसकी चेतना अस्थायी रूप से अपने निवास स्थान से पृथक हो गई थी। तथापि यह आक्षेप असमर्थनीय है, क्योंकि विभ्रान्ति की दशा में व्यक्ति अतीन्द्रिय दृष्टि वाला नहीं बन सकता।

पशु के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले एक पशु की वास्तविक कहानी

''किसी मानव की आत्मा का मानव-प्रजाति में पुनर्जन्म होता है तथा किसी पशु की आत्मा का पुनर्जन्म पशु-प्रजाति में होता है। एक प्रकार की आत्मायें दूसरे प्रकार की आत्माओं से, उनकी सहज योग्यताओं और संभाव्यताओं, उनके मन या उनके संस्कारों की दृष्टि से भिन्न होती हैं। प्रत्येक को उसके अपने प्रकार से उसके पूर्व जन्म के फल प्राप्त होते हैं। इसलिये मानव-जाति का होने के नाते मानव के व्यवहार तथा गुणों का पशु-जाति के व्यवहार और गुणों की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ होना चाहिए।''

—शिव भगवानुवाच

जिस प्रकार मानव के जीन (Gene) कबूतरों या गायों या हाथियों के जीन से भिन्न होते हैं उसी प्रकार आत्मायें जिनमें संभाव्यतायें कूटबद्ध होती हैं, जिनके अनुसार आत्मा मानव-शरीर धारण करती है, अन्य सभी प्रजातियों के प्राणियों सेमन तथा संस्कारों के सम्बन्ध में भिन्न है उसी पकार आत्मायें पदार्थ से भिन्न हैं, किन्तु उनमें आपस में भी भिन्नता होती है — न केवल हर आत्मा दूसरी आत्मा से भिन्न होती है बल्कि आत्माओं का प्रत्येक प्रवर्ग दूसरे प्रवर्ग से भिन्न होता है। इसलिये अभिव्यक्त विश्व में हम यह पाते हैं कि न केवल एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों से भिन्न होता है बल्कि मानव-जाति जीवित प्राणियों के अन्य प्रवर्गों तथा प्रकारों से बिल्कुल भिन्न होती है। कर्म का नियम इस परिवेश में कार्य करता है। प्रत्येक आत्मा अपनी स्वयं की प्रजाति में किये गये अपने कर्मों का फल पाती है और इसलिये अपनी स्वयं की प्रजाति में उसका पुनर्जन्म होता है — कुत्तों का पुनर्जन्म कुत्ता-परिवार में होता है और मनुष्य का पुनर्जन्म मानव-परिवार में होता है। नीचे एक कुत्ते के पुनर्जन्म का वृत्तान्त दिया गया है। हम यहाँ यह वृत्तान्त केवल यह सिद्ध

करने के अभिप्राय से नहीं दे रहे हैं कि किसी कुत्ते का पुनर्जन्म कुत्ते के रूप में होता है — यद्यपि उससे इस सिद्धान्त की भी पुष्टि होती है, किन्तु हमने मानव प्राणियों के पुनर्जन्म की जो कहानियाँ इसके पूर्व दी हैं उन कहानियों का सिलसिला जारी रखते हुए हम पशु प्रजाति से हुए पुनर्जन्म की एक कहानी दे रहे हैं। आगे चलकर हम एक अन्य अध्याय में यह बतायेंगे कि किन कारणों से प्रत्येक प्रवर्ग की आत्मायें अपनी स्वयं की प्रजाति में पुनर्जन्म लेती हैं। यहाँ एक कुत्ते के पुनर्जन्म की कहानी देने का हमारा मुख्य उद्देश्य हमारे इस कथन को प्रचलित करना है कि किसी शरीर को दफन देने या जला देने से सब कुछ नष्ट नहीं हो जाता, बल्कि प्रत्येक जीवित प्राणी में एक 'आत्मा' होती है जो कि उसके पश्चात् भी विद्यमान रहती है और जो कि सामान्यत: स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिये कोई अन्य शरीर ग्रहण करती है।

हम समय-समय पर समाचार पत्रों में यह पढ़ते रहे हैं कि शिशु अपने विगत जीवन सम्बन्धी सत्यापित तथा पुष्टिकृत तथ्य बताते हैं। लगभग सभी मामलों में पुनर्जन्म सम्बन्धी ये समाचार मानव-आत्माओं का मानव-शरीरों में पुनर्जन्म होने सम्बन्धी होते हैं। कुछ समय पूर्व नई दिल्ली के हिन्दी दैनिक समाचार-पत्र 'नवभारत टाइम्स'[1] में पुनर्जन्म की एक घटना का समाचार प्रकाशित हुआ था, जिसमें यह बताया गया था कि एक कुतिया का पुनर्जन्म एक कुतिया के रूप में हुआ था। यह समाचार इस विश्वास की पुष्टि करता है कि मानव आत्मायें मानव रूप में पुनर्जन्म लेती हैं तथा पशु-जातियों की आत्मायें पशु-जाति में पुनर्जन्म लेती हैं।[2] किन्तु प्रश्न यह है कि हम निश्चित रूप से यह कैसे जान सकते हैं कि यह पुनर्जन्म का मामला है। इस मामले में कठिनाई यह है कि हम कुत्तों से बातें नहीं कर सकते और कुत्ते भी हमसे बातें नहीं कर सकते। मानव प्राणियों के मामले में सामान्यत: भाषा की बाधा नहीं होती और सत्य जानने के लिये शिशु का प्रति-परीक्षण किया जा सकता है। किंतु पशुओं में एक अच्छाई यह होती है

1. *'नवभारत टाइम्स', नई दिल्ली, दिनांक 24 मार्च 1976*
2. *'प्रजाति' और 'जाति' में कुछ अन्तर है।*

कि वे झूठ नहीं बोल सकते या धोखाधड़ी नहीं कर सकते, जबकि बड़ी आयु का मानव या सिखाया-पढ़ाया हुआ बच्चा हमें मूर्ख बना सकता है। वर्तमान मामले में पाठक स्वत: यह देखेगा कि यह घटना पशु का पशु-प्रजाति में पुनर्जन्म लेने की एक काफी विश्वसनीय घटना है।

यह घटना अमेरिका से सम्बन्धित है। मिस्टर एडवर्ड नामक एक सज्जन अपनी कार से कैलिफोर्निया की ओर जा रहे थे। उनके साथ उनकी पत्नी एनी भी थी। जब वे एक उपनगर से गुजर रहे थे तो उनकी कुतिया डॉक्सी उत्तेजित हो गई। उसकी उत्तेजना असाधारण थी। कार 70 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से आगे बढ़ रही थी और इसके पहले कि वे डॉक्सी की असामान्य तथा आकस्मिक उत्तेजना का कारण समझ पाते, कुतिया डॉक्सी कार की खिड़की से बाहर कूद पड़ी। सौभाग्य वश उसे चोट नहीं लगी। जैसे ही वह गिरी वैसे ही उठ खड़ी हुई और फिर उस फार्म की ओर भागी जिसे कि कार ने पीछे छोड़ दिया था।

एडवर्ड ने तुरन्त अपनी कार रोक दी और उसके बाद पति-पत्नी उस कुतिया का पीछा करने लगे। आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि डॉक्सी फार्म में प्रवेश करने के लिये उसकी काँटेदार बाड़ को पार करने की और उस झोपड़ी की ओर बढ़ने की कोशिश कर रही थी जो कि फार्म की एक ओर बनी हुई थी। एक बूढ़ी स्त्री इस झोपड़ी से बाहर निकली और जैसे ही डॉक्सी ने उस बूढ़ी स्त्री को देखा वैसे ही वह एनी की गोद से नीचे कूद पड़ी (एनी ने उसे गोद में ले रखा था) और बाड़ को पार करते हुए वह उस-बूढ़ी स्त्री को प्रेम पूर्वक चूमने और चाटने लगी।

डॉक्सी कुतिया वैसे ही कर रही थी जैसे कि पालतू पशु तब करते हैं जब वे अपने उस मालिक को देखते हैं जिससे वे बिछुड़ गये थे। इस मिलन पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के बाद डॉक्सी उस झोपड़ी में घुसी और फिर वहाँ से निकलकर वह फार्म की ओर भागी। उसके बाद सभी घटनाओं से सर्वाधिक विलक्षण घटना आरम्भ हुई।

फार्म में एक मचान था और उस पर चढ़ने के लिये एक सीढ़ी लगी हुई थी।

पलक मारते ही कुतिया उस सीढ़ी पर चढ़ने लगी मानो कि वह पहले भी ऐसा करती रही हो। जिन लोगों के पास कोई पालतू कुत्ता या कुतिया हो वे लोग यह जानते हैं कि साधारणत: एक कुत्ते के लिये यह काम कितना कठिन है। जब डॉक्सी मचान पर पहुँच गई तो वह वहाँ इधर-उधर घूमने लगी माना कि वह कोई वस्तु खोज रही हो। एडवर्ड डॉक्सी के पीछे-पीछे मचान पर चढ़ गये थे और अब उन्होंने डॉक्सी को उठा लिया और उसे नीचे लेकर आ गये।

कुछ समय के बाद जब सब लोग बैठे हुए थे और चाय पी रहे थे तब बूढ़ी स्त्री श्रीमति वुडफोर्ड ने नीचे दी गई कहानी सुनाई :—

छह वर्ष पहले उनके पास 'क्वीनी' नामक एक कुतिया थी। उसने कड़ी ठंड के मौसम में दिसंबर 1948 में मचान पर पिल्लों को जन्म दिया। इसलिये उनके पुत्र रॉबर्ट ने क्वीनी को सीढ़ी पर चढ़ना सिखाया था। क्वीनी ने संभवत: मचान को सुरक्षित समझते हुए अपने पिल्लों को वहाँ जन्म दिया था।

क्वीनी की प्रसूति के दो दिन बाद रॉबर्ट अपने कॉलेज लौट गया और श्रीमति वुडफोर्ड को अचानक यह जानकारी मिली कि उनके पति को एक गंभीर दुर्घटना के बाद एक चिकित्सालय में दाखिल किया गया है। इसलिये श्रीमति वुडफोर्ड तुरन्त चिकित्सालय की ओर चल पड़ी। इस जल्दबाजी में और घबराहट में उनका ध्यान इस बात की ओर नहीं गया कि क्वीनी रसोई घर में अपना खाना खा रही थी। श्रीमति वुडफोर्ड दो दिन के पहले घर नहीं लौट सकी।

अपने बच्चों को देखने के लिये क्वीनी का मन कितना व्याकुल हुआ होगा? इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। वापस लौटने पर जैसे ही श्रीमति वुडफोर्ड ने दरवाजा खोला वैसे ही क्वीनी फार्म से बाहर भागी और सीढ़ी पर से चढ़ते हुए सीढ़ी के ऊपरी सिरे पर जा पहुँची जहाँ वह सीढ़ी मचान से जुड़ी हुई थी। यह स्थान बर्फ की एक पतली परत से ढका हुआ था। जैसे ही क्वीनी ने अपना अगला पैर उस पर रखा वैसे ही वह फिसल कर एक कुल्हाड़ी पर जा गिरी और तुरन्त मर गई।

संक्षेप में यह डॉक्सी का जीवन वृत्तान्त है। इन सभी बातों पर विचार करने

पर हम यह कह सकते हैं कि हो-न-हो क्वीनी ने डॉक्सी के रूप में पुनर्जन्म लिया था, क्योंकि अब उसकी आयु छह वर्षों की थी। यदि ऐसा न होता तो डॉक्सी तेज भागती हुई कार के बाहर क्यों कूदती? फार्म की ओर क्यों दौड़ती? कंटीली बाड़ को क्यों पार करती? और श्रीमति वुडफोर्ड के पास पहुँचकर प्रेमपूर्वक उन्हें क्यों चाटती और उसके बाद सीढ़ी पर चढ़ते हुए मचान की ओर ऐसे-कैसे जाती माना कि वह अपने नित्य कार्य का पूर्वाभ्यास कर रही थी या पुनरावृत्ति कर रही थी ?

अमर आत्मा ही ज्ञान प्राप्त करती है

"आत्मा में ही संज्ञान तथा प्रतिधारणा या स्मृति की योग्यता होती है। आत्मा ही सीखती है और भूलती है। यदि कोई मनुष्य 'स्व' सम्बन्धी सत्य को जान लेता है और आत्म-सचेतन हो जाता है और अशुभ को भूल जाता है तो वह स्वर्ग के राज्य में देवत्व की स्थिति प्राप्त कर लेता है।"

—*शिव भगवानुवाच*

यह परखने के लिये कि आत्मा है या नहीं है हमें यह देखना होगा कि क्या कोई अन्तर्विवेकशील या चैतन्यमय सत्ता है जिसका अस्तित्व शरीर से भिन्न है? इसकी जाँच करने का तरीका यह हो सकता है कि हम यह देखें कि क्या वह व्यक्ति जो कि महसूस करता है, अवलोकन करता है, समझता है या सीखता है वह कोई शाश्वत सत्ता है? यदि कोई शाश्वत सत्ता हो तो आत्मा का अस्तित्व कम-से-कम सिद्धान्ततः, एक सिद्ध तथ्य होगा, क्योंकि शरीर मरणशील है। अब इस बात का परीक्षण करने के लिये क्या, सिद्धान्ततः, किसी शाश्वत सत्ता के अस्तित्व का होना हमारे उस जीवन के लिये आवश्यक है जिसे कि हम जीते हैं, हम उदाहरणार्थ इस बात का परीक्षण कर सकते हैं कि हम सीखते कैसे हैं, क्योंकि सीखना अन्तर्विवेकशील प्राणी का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

इसलिए आइये, हम एक क्षण के लिये विचार करें कि हम ज्ञान कैसे अर्जित करते हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि ज्ञान की उत्पत्ति प्रेक्षण (Observation) से होती है। किन्तु, वस्तुतः यह केवल अंशतः सत्य है, क्योंकि वास्तविक व्यवहार में ज्ञान सदैव हमारे पूर्ववर्ती ज्ञान का उपान्तरण या परिवर्धन होता है, भले ही हमारा पूर्ववर्ती ज्ञान कितना भी अपरिष्कृत, प्रारम्भिक या अन्तरालों से भरा हुआ क्यों न हो? यदि कोई पूर्ववर्ती ज्ञान न होता तो प्रेक्षण मात्र से कोई नया ज्ञान प्राप्त न होता। वस्तुतः, पूर्ववर्ती ज्ञान के बिना प्रेक्षण उनका सामान्य अर्थ में, विद्यमान ही नहीं होंगे, क्योंकि पूर्ववर्ती ज्ञान के बिना व्यक्ति के पास वह जो

कुछ भी देखता है उसे समझने या उसका निर्वाचन करने का साधन ही नहीं होता।

अब, यदि ज्ञान के अर्जन के सम्बन्ध में हमारा यह विचार सही है, जैसे कि वस्तुत: वह है, तो स्पष्टत: वह अनन्त प्रतीपगमन की ओर ले जाता है, क्योंकि हमारा वर्तमान ज्ञान हमारे पूर्ववर्ती ज्ञान के रूपान्तरण या परिवर्धन के कारण है और हमारा पूर्ववर्ती ज्ञान और भी पूर्ववर्ती ज्ञान के रूपान्तरण या परिवर्धन के कारण था और इस प्रकार यह सिलसिला अन्तहीन रूप में चलता जाता है। इस प्रकार, अन्तिम विश्लेषण में, हमारा ज्ञान अन्तत: किसी सहज ज्ञान-संभाव्यता की ओर वापस लौटता है। इस प्रकार विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मस्तिष्क के अतिरिक्त कोई अजन्मा, अनादि, स्व-अन्तर्विवेकशील, सविज्ञ, शाश्वत सत्ता है जो कि 'आत्मा' कहलाती है।

आइये, हम एक ठोस उदाहरण पर विचार करें। एक बालक किसी चिड़िया घर में जाता है। जब वह किसी विशिष्ट पिंजरे के पास जाता है और उसमें किसी जानवर को देखता है तो उसका मार्गदर्शक उसे बताता है, 'यह एक ऊंट है।' अब, चूँकि बालक के पास दूसरे जानवरों, उदाहरणार्थ, कौआ, घोड़ा, भैंस सम्बन्धी पूर्ववर्ती ज्ञान है, इसलिये वह अन्य जानवरों सम्बन्धी अपने पूर्ववर्ती ज्ञान को कुछ रूपान्तरित या परिवर्धित कर यह ज्ञान अर्जित करता है कि ऊंट कैसा दिखाई देता है। ज्ञानार्जन की यह प्रक्रिया शैशवास्था से ही चलती रही है, इसलिये हमें उस आयु में भी या जन्म से पूर्व की अवस्था में भी कुछ पूर्ववर्ती ज्ञान-संभाव्यता को स्वीकार करना होगा।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एक शाश्वत, अन्तर्विवेकशील सत्ता है जो कि 'आत्मा' कहलाती है।

अभिवृत्तियाँ या प्रवृत्तियाँ आत्मा के शाश्वत स्वभाव या संस्कारों के रूप में विद्यमान रहती हैं

एक अन्य तर्क के द्वारा भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि आत्मायें शाश्वत होती हैं। हम पुनर्जन्म की कुछ घटनाओं का वर्णन पहले ही कर चुके

हैं। अब चूँकि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के परिवार से भिन्न परिवार में जन्म लेता है और उसकी स्वभावगत विलक्षणता, उसकी मानसिक रचना, उसका रंग और उसके शरीर का आकार दूसरे व्यक्तियों से भिन्न होता है और दूसरों की तुलना में वह भिन्न पर्यावरण में और भिन्न आर्थिक स्थिति वाले माता-पिता के घर में जन्म लेता है, इसलिये कई आध्यात्मिक नियमों के आधार पर उनके इन अन्तरों की व्याख्या की जा सकती है।

श्रीमद् भगवद्गीता यह समझाती है कि किसी विशिष्ट शरीर, परिवार तथा पर्यावरण में किसी आत्मा की अभिव्यक्ति या आत्मा का उद्भव आत्मा के गत जन्मों के संस्कारों या पूर्व स्व-वृत्तियों पर निर्भर होता है। इस प्रकार, प्रत्येक जन्म की व्याख्या इस समय के आधार पर की जा सकती है कि उसी आत्मा ने अतीत में अनेक जन्म लिये हैं। इसलिये यदि हम जन्मों पर निरन्तर प्रतीपगमन में विचार करते रहें तो और ही अनन्तता की ओर बढ़ते जायेंगे क्योंकि यह जन्म पूर्व जन्मों से प्राप्त हुई निश्चित पूर्व प्रवृत्तियों के कारण होता है तथा वे पूर्व जन्म उनके भी पूर्व जन्मों की निश्चित पूर्व प्रवृत्तियों के कारण होते हैं और इस प्रकार यह सिलसिला अपरिमित चलता रहता है। यदि हम प्रत्येक जन्म के पीछे छिपे कारण पर विचार करें तो हम आखिरकर उस समय-बिन्दु पर जा पहुँचेंगे जब आत्मा की दुनिया कहलाने वाले उसके अव्यक्त निवास स्थान (ब्रह्म) से पहली बार उद्भव हुआ।

किन्तु गीता कहती है कि प्रथम जन्म भी आत्मा के स्वभाव के अनुसार हुआ था। क्योंकि यद्यपि एक विश्व चक्र (कल्प) के अन्त में आत्मायें अपने दुष्कर्मों से मुक्त हो जाती हैं तथा मन की 'अचल' या प्रशान्त दशा वाली आत्म-लोक में निवास करती हैं तथापि प्रत्येक व्यष्टिक आत्मा का स्वभाव प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहता है।

इसलिये यह बात याद रखी जानी चाहिए कि व्यक्तिगत स्वभाव, संस्कार, प्रवृत्तियाँ आदि आत्मा के शाश्वत दिक्कोण हैं। जिस समय कोई आत्मा विश्व नाटक के रंगमंच पर अवतरित होती है उसी समय से उसके प्रच्छन्न विचार या उसकी इच्छायें और उसमें प्रत्यय अभिव्यक्त होने लगते हैं। तब से विचारों या

अन्त तक संविलीन संस्कारों (विचारों) की सम्पूर्ण शृंखला पूर्ण हो चुकने या इस कर्मक्षेत्र पर चल रहे सृजनात्मक नाटक में पूर्णत: संप्रेषित तथा अभिव्यक्त हो चुकने पर आत्मा पुन: अगले कल्प में वहाँ उसके संविलीन विचारों की शृंखला पूर्ववर्ती कल्प में विश्व चक्र में अभिव्यक्त होने लगी थी। इस प्रकार यह पुनरावृत्ति चक्रों में अन्तहीन रूप में चलती रहती है।

इस प्रकार विचार या संकल्प और प्रवृत्तियाँ शाश्वत रूप से प्रत्येक आत्मा के अभिन्न अंग होते हैं और इस अर्थ में आत्मा का प्रत्येक विचार या कर्म प्रतिवर्तनशील (Reflexive) होता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि आत्मायें शाश्वत होती हैं और इसलिये वे शून्य स्तर से सीखना आरम्भ नहीं करतीं।

मूल प्रवृत्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि आत्मा अमर है

जिज्ञासा की अवधारणा, आत्म-परीक्षण आदि की मूल प्रवृत्तियों को भी जिन पर अनेक मनोवैज्ञानिकों ने चर्चा की है, आत्मा को शाश्वत अथवा अमर मानने पर उचित रीति से समझा जा सकता है, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि इन मूल प्रवृत्तियों की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? मैक डोनाल्ड़ (Mc Donald) तथा अन्य व्यक्तियों ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है, जिन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि हम इस बात का पता नहीं लगा सकते कि मूल प्रवृत्तियों का जन्म कब हुआ था? वे जन्मजात होती हैं, यद्यपि कभी-कभी प्राच्छन्न (latent) होती हैं। इन सभी कारकों पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आत्मायें अमर तथा अनेक होती हैं तथा प्रत्येक आत्मा की उसकी अपनी प्राच्छन्न संभावनायें होती हैं।

इस प्रकार से यह समझ लेने पर कि 'स्व' एक शाश्वत सत्ता है जो कि शरीर से भिन्न है, हमें आत्म-सचेतन होना चाहिए क्योंकि शरीर-सचेतना अज्ञान पर आधारित होती है और इसलिये वह सभी दु:खों का मूल है। हमें यह सचेतना होनी चाहिए — 'मैं शाश्वत और अमर हूँ। मैं अभौतिक हूँ तथा स्वयं प्रकाशी सत्ता हूँ। मैं सचेतन प्रकाश का एक बिन्दु हूँ और सद्ज्ञान प्राप्त कर स्वयं को ऊंचा उठा सकता हूँ।'

शरीर और मन या चेतना

"शरीर पदार्थ के तत्वों से रचित है। चेतना या विचार न तो इन तत्वों का गुण है और न ही उनमें से किन्हीं भी तत्वों के संयोजन का गुण है। चेतना — 'आत्मा' नामक एक अभौतिक या एक आध्यात्मिक सत्ता की एक शक्ति है"

— शिव भगवानुवाच।

बहुत पुराने समय से यह विवाद चलता आ रहा है कि क्या मन और शरीर दो पृथक सत्तायें हैं या कि मन शरीर के तन्त्रिका तन्त्र तथा मस्तिष्क की अनुघटना है? पूर्व के देशों में ऋषियों ने इस प्रश्न पर गहन चिन्तन किया है कि प्रत्येक जीवित शरीर में एक अन्तर्विवेकशील सत्त्व या अनुभावक या व्यक्तित्व है जो कि शरीर के दहन के पश्चात् भी विद्यमान रहता है। उन्होंने उसे 'आत्मा', 'पुरुष', 'क्षेत्रज्ञ' अर्थात् 'स्व' या 'अन्तर्निवासी आत्मा' कहा है। पश्चिम में भी अनेक दार्शनिकों ने इस प्रश्न पर परिपूर्णतः चर्चा की है और उन्होंने शरीर से भिन्न एक सचेतन व्यक्ति के अस्तित्व की वास्तविकता के समर्थन में या आत्मा कहलाने वाली अधि-भौतिक सत्ता के अस्तित्व का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिये आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में उस पर एक बार पुनः विचार करना लाभकर होगा।

आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में

शरीर क्रिया-विज्ञान हमें यह बताता है कि शरीर कोशिकाओं से निर्मित होते हैं और कोशिकायें अणुओं से निर्मित होती हैं। वह आगे यह भी बताता है कि हमारे शरीर की कोशिकायें निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं और लगभग सात वर्षों की अवधि में पुरानी कोशिकाओं में इतना अधिक परिवर्तन होता है कि उस अवधि के अन्त तक यह कहा जा सकता है कि नई कोशिकाओं द्वारा उन कोशिकाओं को 'प्रतिस्थापित' कर दिया गया है। अब शरीर में वह एक भी

कोशिका नहीं होती जो कि सात वर्ष पहले थी।[1] इस प्रकार शरीर वही नहीं रहता जैसा कि वह सात, चौदह या इक्कीस वर्ष पहले था। उदाहरणार्थ 50 वर्षों की मेरी भौतिक आयु में मेरे शरीर में कम-से-कम सात नवीनीकरण हुये हैं। इस वर्ष के दौरान मस्तिष्क की कोशिकाओं में भी बहुत परिवर्तन हुये हैं। किन्तु जहाँ तक मेरी चेतना (जो कि 'मैं हूँ' शब्दों द्वारा विवक्षित होती है) का सम्बन्ध है, मैं स्वयं को वैसा ही व्यक्ति अनुभव करता हूँ जैसे कि सात, चौदह या इक्कीस वर्ष पूर्व अनुभव किया करता था। मैं अपने उन मित्रों को याद करता हूँ जो कि मेरे मित्र तब थे जब मेरे शरीर की आयु सात वर्षों की थी या मुझे उन पुस्तकों की याद है जो कि मैं तब पढ़ा करता था जब मेरे शरीर की आयु चौदह वर्षों की थी और इसका स्पष्टत: यह अर्थ निकलता है कि वही सचेतन सत्ता (जो कि मैं कि 'चेतना' तथा 'शरीर' दो भिन्न सत्तायें हैं और यद्यपि शरीर आयु के साथ परिवर्तित होता है, तथापि आत्मा अपनी अनन्यता तथा निरन्तरता कायम रखती है। इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति को मात्र एक शरीर (मस्तिष्क सहित) समझा जाय तो उसकी निरन्तर अनन्यता तथा निरन्तर चेतना के तथ्य की व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि उसके शरीर तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं में सात वर्षों के पश्चात् बहुत अधिक परिवर्तन हो चुका होता है।

दो भिन्न-भिन्न वास्तविकतायें

इसके अतिरिक्त, हम यह स्पष्टत: देख सकते हैं कि शरीर तथा चेतना दो पूर्णत: भिन्न-भिन्न वास्तविकतायें हैं, क्योंकि शरीर थक जाता है किन्तु चेतना थकती नहीं, तथापि चेतना केवल उक (bored) सकती है। शरीर की भौतिक ऊर्जा नि:शेष हो सकती है, किन्तु मन या चेतना मानसिक, तात्विक या आध्यात्मिक ऊर्जा की अनि:शेषता का अनुभव कर सकती है और वस्तुत: वह ऊर्जा वर्षों के साथ बढ़ती है। शरीर वर्षों के बीतने से बूढ़ा हो जाता है, किन्तु मन केवल अधिक प्रज्ञावान तथा अधिक अनुभवी हो जाता है। हृदय, जो कि शरीर

1. *Annie Besant, Psychology, 2nd Edition, Los Angles, California: Theosophical Publishing House, 1919, p.230-232*

का एक भाग है, आयु के बढ़ने के साथ कमज़ोर हो सकता है, किन्तु चेतना या मन की घृणा करने की या प्रेम करने की शक्ति बढ़ सकती है। इस प्रकार, ये दो विभिन्न सत्तायें हैं, शरीर कोशिकीय तथा आण्विक होता है अर्थात् भौतिक होता है, किन्तु मन, चेतना या आत्मा — मानसिक, आध्यात्मिक या अधि-भौतिक होती है।

चिकित्सीय तथा रोग नैदानिक साक्ष्य इस सत्य का समर्थन करता है

कुछ लोगों का यह विश्वास है कि चेतना मस्तिष्क का एक उत्पाद है, किन्तु यदि हम उन रोगियों के चिकित्सीय तथा नैदानिक मामलों का अध्ययन करें जो रोगी मस्तिष्क की चोटों या रोग से पीड़ित थे तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चिकित्सीय तथा रोग नैदानिक साक्ष्य भी इस तथ्य का समर्थन करता है कि चेतना एक पृथक सत्ता है। विन्सेंट एच.गैडिस (Vincent H. Gaddis) ने अपने लेख 'विथ ब्रेन डिस्ट्राएड, दे लिव एण्ड थिंक' (With Brain Destroyed. They live and think) में, जो कि 'फेट' (Fate) नामक पत्रिका [2] के एक अंक में प्रकाशित हुआ था, अनेक ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण दिये हैं, जिनके मस्तिष्क या तो अंशतः या पूर्णतः नष्ट हो गये थे फिर भी वे सामान्य रूप से जीते रहे और सोचते रहे।

मिस्टर फिनीस गेग (Phineas Gage), एक रेल रोड फोरमैन थे। जब वे सुरंग लगाने के पहले एक छेद में बारूद भर रहे थे तो दुर्घटनावश एक साढ़े तीन फुट लंबी छड़ पूरी तरह से उनकी खोपड़ी के आर-पार हो गई। गेग कहते हैं कि वह छड़ प्रमस्तिष्क (Cerebrum) की बाईं अग्र पाली (Left anterior lobe) से होती हुई ललाट (Parietal) तथा पार्शिवका (Frontal) अस्थियों को भंग करती हुई तथा मस्तिष्क के पर्याप्त भाग को तोड़ती हुई पुनः कपाल सीवन तथा अग्रपश्च सीवन (Coronal and sagital sutures) के संगम पर बाहर निकल आई। इसके

2. *Vincent H. Gaddis, "With Brain Destroyed. They live and think", Fate, Vol.1. No.2, Summer, 1948, p.81*

विपरीत, चिकित्सा सहायता प्राप्त करने के लिये वे काफी दूरी तक चलकर गये। यह लिखा गया है कि स्वस्थ होने तक चैतन्यशील रहे और उसके बाद वे अनेक वर्षों तक सामान्य जीवन बिताते रहे। आज वह मूल छड़ तथा मिस्टर फिनीस गेग की खोपड़ी का एक सांचा (Caste of the skull) हार्वर्ड युनिवर्सिटी मेडिकल म्युजियम में प्रदर्शनार्थ रखा हुआ है।

प्रोफ़ेसर जी.डब्लू. सूर्य (Prof. G.W.Surya) ने एक ऐसे व्यक्ति का मामला प्रतिवेदित किया है जो कि अनेक वर्षों तक पागल रहा, किन्तु मृत्यु के कुछ समय पहले सामान्य हो गया। प्रोफ़ेसर सूर्य यह कहते हैं कि "शव परीक्षा से यह प्रकट हुआ कि उसके मस्तिष्क पटल (Brain pan) में मस्तिष्क जैसा कुछ भी शेष नहीं रह गया था। रोग-विज्ञान सम्बन्धी एक प्रक्रिया ने उसके द्रव्य को उत्तरोत्तर नष्ट कर दिया था, किन्तु सामान्यता की दशा में उसके लौट आने का रहस्य स्पष्ट न हो सका।" [3]

डॉ. गुस्ताव गेली (Dr. Gustave Geley) की पुस्तक 'फ्रॉम अनकॉन्शस टु दि कॉन्शस' (From unconscious to the conscious) में एक मामले का उल्लेख है जो कि इस प्रकार है : एक बालक अपनी मानसिक शक्तियों को पूर्णत: धारण किये हुए मरा, यद्यपि सम्पूर्ण अनुमस्तिष्क (Cerebellum) को अन्तर्ग्रस्त किये हुए एक सक्रिय फोड़े (Active abcess) के कारण यह मस्तिष्क शोथीय (Encephalic mass) द्रव्यमान कंद (Bulb) से पूर्णत: विलग हो गया था — जो कि वास्तविक शिरच्छेदन के समतुल्य दशा है। डॉ. गुस्ताव ने अपनी पुस्तकों में ऐसे अनेक मामले दिये हैं जिनके आधार पर हम यह अनुमान लगाने के लिये प्रेरित होते हैं कि मस्तिष्क से भिन्न एक 'अन्तर्विवेकशील सत्ता' है और यह कि मस्तिष्क केवल एक उपकरण या स्विच-बोर्ड है।

अमीबा के उदाहरण से इस विवाद का निपटारा हो जाता है और यह सिद्ध हो जाता है कि चेतना मस्तिष्क की एक अनुघटना (Epiphenomenon) नहीं है। अमीबा के पास मस्तिष्क नहीं होता और न ही स्मरण करने के लिये कोई

3. *Quoted by Vincent H. Gaddis.*

विशेष अंग होता है। किन्तु यह एक ज्ञात तथ्य है कि उसके पास अपने ढंग से स्मृति होती है और इसलिये वह यद्यपि अनेक पुनरावृत्तियों के बाद, अपने खाद्य तक पहुँचना तथा विक्षोभकों से बचना सीख सकता है। मास्ट तथा पुश्च (Mast and Pusch) ने अपनी एक अन्य रचना 'मॉडिफिकेशन ऑफ रिस्पॉन्स इन दि अमीबा' (Modification of response in the amoeba) में यह कहा है कि अमीबा सीखता है और इसलिये वह निश्चित उद्दीपन प्राप्त करने का आदी हो जाता है।[4] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आत्मा मस्तिष्क के बिना भी सोच सकती है, अनुभव कर सकती है, स्मरण कर सकती है तथा सीख सकती है, यद्यपि शरीर बेहतर अभिव्यक्ति के लिये एक उपयोगी माध्यम है। इसलिए यह कहना ग़लत होगा कि चेतना मस्तिष्क का एक उत्पाद या उपोत्पाद है। वस्तुत: चेतना आत्मा का एक गुण या शक्ति है या आत्मा की एक अभिव्यक्ति है।

मस्तिष्क विहीन शिशुओं के जन्म लेने के समाचार भी पढ़े गये हैं। ऐसे एक शिशु के जन्म लेने का समाचार अक्टूबर 1984 में मिला था। उस शिशु के पास मस्तिष्क-स्तंभ (Brainstem) था किन्तु धूसरा द्रव्य या श्वेत द्रव्य नहीं था।

हम आगे चलकर अगले अध्याय में यह दर्शायेंगे कि विचार तथा मन का स्वरूप अधि-भौतिक है। वे भौतिक या पदार्थिक नहीं हैं। इसलिये 'स्व' की पहचान अधि-भौतिक या आध्यात्मिक है, वह पदार्थिक या भौतिक नहीं है।

---

4. *अमीबा एककोशीय होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि उसके पास मस्तिष्क होता है। यही बात विषाणुओं तथा सूक्ष्माणुओं के बारे में भी सही है। तथापि उनके पास ऐसे अणु हो सकते हैं जो कि निश्चित सीखे गये लक्षणों के प्रतिधारण तथा अन्तरण में सहायता पहुँचाते हैं।*

विचार और विचारक
दोनों ही अधि-भौतिक हैं

''विचार सभी कर्मों का आधार है तथा आत्मा ही मस्तिष्क के तन्त्र के माध्यम से सोचती है। अच्छे विचारों से शान्ति प्राप्त होती है तथा बुरे विचारों से मानसिक तनाव तथा अशान्ति का निर्माण होता है। इसलिये, मनुष्य को 'स्व' को — विचारक को — जानना चाहिए तथा विचारों को शुद्ध करना चाहिए ताकि वह शान्ति पूर्वक रह सके तथा शान्ति के प्रकम्पन फैला सके।''

—शिव भगवानुवाच

विचारों, प्रत्ययों तथा चेतना का अस्तित्व मानवीय अनुभव का एक असंदिग्ध तथ्य है। प्रत्येक मानव-प्राणी सोचता है तथा प्रत्येक जीवित प्राणी में चेतना होती है, और इसलिये चेतना तथा विचार का अस्तित्व जीवन का एक सुस्थापित तथा अखण्डनीय तथ्य है। प्रत्येक मानव प्राणी के पास कम से कम कुछ ज्ञान होता है तथा सरल शब्दों में ज्ञान को विचारों, सम्प्रत्ययों, प्रत्ययों तथा अनुभव का एक तन्त्र कहा जा सकता है।

विचारों का स्वरूप

किन्तु विचार (Thoughts) तथा प्रत्यय (Ideas) या सम्प्रत्ययों (Concepts) तथा ज्ञान या अनुभव तथा प्रत्यक्ष (Perceptions) भौतिक वस्तुयें नहीं हैं। उनका अस्तित्व किसी कुर्सी या किसी मोटर-कार के अस्तित्व जैसा नहीं है। कुर्सी तथा मोटर-कार अवकाश को व्याप्त करते हैं, किन्तु विचार तथा प्रत्यय अवकाश विहीन होते हैं। कुर्सी तथा मोटर-कार समय के बीतने के साथ-साथ खराब होते जाते हैं, टूट-फूट जाते हैं तथा अन्ततः नष्ट हो जाते हैं। किन्तु विचार तथा प्रत्यय काल द्वारा आवश्यकता अनुसार नष्ट या विनष्ट नहीं होते। इसके बजाय, कालान्तर में वे अधिक प्रचलित तथा अधिक ज्ञात हो सकते हैं।

कोई कार या कोई कुर्सी आग से नष्ट हो सकती है या उसके टुकड़े-टुकड़े किये जा सकते हैं, किन्तु 'विचार' ऐसी सूक्ष्म अभौतिक सत्तायें हैं जिन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। वस्तुत: यदि कोई व्यक्ति किसी विचार, किसी प्रत्यय या विचार तथा ज्ञान के किसी तन्त्र का विरोध कर, खण्डन कर, प्रतिरोध कर, उपहास कर या प्रतिवाद कर या उसकी आलोचना कर उसे नष्ट करने का प्रयत्न करता है तो यह हो सकता है कि उसका अधिक प्रचार हो और व्यापक प्रसार हो और वह गहरी तथा मज़बूत जड़ें जमा ले। यदि हम किसी कुर्सी या कार को नष्ट करने का प्रयत्न करें तो वह ज्यों कि त्यों रह सकती है, किन्तु किसी प्रत्यय पर खामोश रहने या अक्रिय रहने या उसे भुला देने या उसे नजरअंदाज कर देने या उस पर चर्चा न करने से वह मर सकती है या नष्ट हो सकती है। इस प्रकार, विचारों तथा प्रत्ययों या सम्प्रत्ययों तथा ज्ञान या प्रत्यक्ष ज्ञान तथा अनुभव का अस्तित्व, भौतिक अस्तित्व से भिन्न होता है। वह अधिभौतिक स्वरूप का होता है। हम किसी कुर्सी को नष्ट कर सकते हैं किन्तु कुर्सी के प्रत्यय को आसानी से नष्ट नहीं कर सकते। इसलिये कोई व्यक्ति कहता है "तुम मेरी हत्या कर सकते हो, किन्तु मेरे विश्वासों की हत्या नहीं कर सकते।"

आइये, इन दो सत्ताओं के स्वरूप के बीच का वैषम्य दर्शाने वाले कुछ और भी बिन्दुओं पर चर्चा करें ताकि विषय अधिक स्पष्ट हो सके।

यदि मैं किसी विचार को बार-बार सोचता हूँ तो वह सुस्थापित हो जाता है। यदि मैं किसी प्रत्यय का उपयोग बार-बार करता हूँ तो वह अधिक परिपक्व हो जाता है। किन्तु मैं किसी कार या कुर्सी का उपयोग जितना अधिक करता हूँ उतना ही अधिक टूट-फूट उसमें आती है। अधिक उपयोग से भौतिक वस्तुयें नष्ट होती जाती हैं जबकि अधिक तथा बेहतर उपयोग से विचार तथा प्रत्यय अधिक स्पष्ट, गहरे तथा सुदृढ़ होते हैं।

द्वितीयत:, यदि मैं अपनी कार या कुर्सी किसी दूसरे व्यक्ति को दे दूँ तो वह मेरी नहीं रह जाती। किन्तु यदि मैं अपने ज्ञान का व्यय करता हूँ तो मेरे ज्ञान भण्डार में किञ्चित् मात्र भी कमी नहीं आती। मुझे यह कहना चाहिए कि यदि

हम ज्ञान का व्यय करते हैं तो वह बढ़ता है। मेरे ज्ञान भण्डार में तनिक भी कमी नहीं होती, जबकि दूसरे लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि विचार तथा प्रत्यय या ज्ञान तथा अनुभव अधि-भौतिक सत्तायें हैं। इसलिये वे शरीर या मस्तिष्क के उपोत्पाद नहीं हैं और नहीं हो सकते।

विचार तथा प्रत्यय — मस्तिष्क के उपोत्पाद नहीं हैं

किन्तु ऐसे लोग हैं जो कहा करते हैं कि विचार, मस्तिष्क का एक उप तत्व है या मस्तिष्क ऊतक की किसी प्रक्रिया का उपोत्पाद है। उदाहरणार्थ कार्ल वोग्ट (Carl Vogt) ने यह कहा है कि विचार ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क का स्राव है जिस प्रकार पित्त यकृत का स्राव है। स्पष्ट है कि जिन लोगों का यह विश्वास होता है वे लोग इस तथ्य को समझ नहीं पाते कि मस्तिष्क एक भौतिक सत्ता है और वह भौतिक शास्त्र तथा रसायन शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है, जबकि विचार तथा प्रत्यय अधि-भौतिक तथा अभौतिक वास्तविकतायें हैं, और इसलिये मस्तिष्क उसके स्वभाव की इस बड़ी असंगतता के कारण विचारों का निर्माण नहीं कर सकता। यदि विचार तथा प्रत्यय भौतिक सत्तायें होते तो हमें उनसे यह प्रत्याश करनी चाहिए कि वे भौतिक, रासायनिक नियमों के अनुरूप होते, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि उनका भौतिक अस्तित्व नहीं होता। इस सत्य को समझने का एक दूसरा तरीका है।

जो लोग प्रमस्तिष्क केन्द्रिक सिद्धान्त (Cerebrocentric Theory) में विश्वास करते हैं या जिनका यह दृष्टिकोण है कि प्रत्यय मस्तिष्क के उत्पाद हैं, वे यह कहते हैं कि प्रत्येक प्रत्यय, विचार तथा अनुभव मस्तिष्क के किसी अन्तर्ग्रथित सम्बन्ध के अनुरूप होता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक विचार, प्रत्यय तथा अनुभव के लिये मस्तिष्क में कोई सम्बद्ध अन्तर्ग्रथन होना चाहिए। किन्तु विचार, प्रत्यय, अनुभव तथा प्रत्यक्षण अनन्त हैं। क्या मस्तिष्क में अनन्त अन्तर्ग्रथनिक (Synaptic) संयोजन हैं? नहीं हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मस्तिष्क की तन्त्रिकीय क्षमतायें (Neurological capacities) विशाल हैं। मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि हम सभी लोगों के पास

लगभग 10 बिलियन कोशिकायें हैं और यह कि इन कोशिकाओं में से प्रत्येक कोशिका का लगभग 25,000 अन्य कोशिकाओं से सम्बन्ध है। इस प्रकार संभाव्य सहचर्यों की संख्या 10 बिलियन 25,000 जितनी है। भौतिक शास्त्र के अनुसार विश्व में परमाणुओं की जितनी संख्या है उस संख्या से भी यह संख्या बड़ी है, किन्तु विचारों तथा प्रत्ययों आदि की संख्या की तरह अनन्त नहीं है। उदाहरणार्थ, मन 10 की संख्या को अनन्त तक बढ़ाकर गिन सकता है किन्तु उतनी संख्या में तदनुरूप अन्तर्ग्रथन नहीं है।

तथापि, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सोचने की क्रिया मस्तिष्क से सम्बन्धित है, किन्तु 'सम्बन्ध' का यह अर्थ नहीं है कि मस्तिष्क ही विचारों को उत्पन्न करता है, जैसे कि किसी फ्लोरोसेन्ट ट्यूब में प्रकाश के सम्बन्ध का यह अर्थ नहीं है कि फ्लोरोसेन्ट ट्यूब प्रकाश उत्पन्न करता है या जैसे किसी साइकिल के पहियों की गति का उसके पैडलों, फ्लाईव्हील तथा चेन से सम्बन्धित होने का अर्थ यह नहीं है कि पैडल या चेन या फ्लाईव्हील से गति उत्पन्न होती है। हम सभी लोग यह जानते हैं कि फ्लोरोसेन्ट ट्यूब के मामले में बिजली घर या विद्युत जनरेटर से ही विद्युत धारा आती है, यद्यपि वह फ्लोरेसेन्ट ट्यूब के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति होती है और साइकिल के मामले में साइकिल पर सवार व्यक्ति, जो कि पैडल चलाता है, गति उत्पन्न करता है। इसी प्रकार विचार, प्रत्यय, प्रत्यक्षण तथा अनुभव मस्तिष्क, तन्त्रिका तन्त्र तथा शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं किन्तु स्रोत 'अधिभौतिक आत्मा' है।

आउसपेनस्की (Ouspensky) ने मस्तिष्क के साथ विचारों, प्रत्ययों तथा अनुभव के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिये एक अन्य उपयुक्त उपमा दी है। वे कहते हैं कि मस्तिष्क एक प्रकार का प्रिज्म (Prism) है और विचार, प्रत्यय आदि मानसिक या आध्यात्मिक ऊर्जा का वह खण्डित श्वेत प्रकाश है जो कि प्रिज्म से होकर गुजरता है।[1] निःसंदेह इस प्रकार या आध्यात्मिक ऊर्जा का उद्गम

1. *P.D. Ouspensky, Tertium Organnum. The Third Cannon of Thought. A Key to the Enigmas of the World. Third American Edition, New York, Alfred Knopf, 1945, p.164.*

उस अधि-भौतिक सत्ता से होता है जिसे 'आत्मा' कहा जाता है।

सर चार्ल्स शेरिंगटन (Sir Charles Sherrington) ने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में दिये गये एक व्याख्यान में इस सम्बन्ध को एक अन्य सुन्दर उपमा के ज़रिये स्पष्ट किया। वे कहते हैं "...... प्राणी के साथ बढ़ा हुआ मस्तिष्क उसी प्रकार प्राणी के प्रेरक तन्त्र के उपयुक्त होता है, जिस प्रकार कुंजी उसके ताले के उपयुक्त होती है।"[2] इस उपमा में, यह स्पष्ट है कि मन या आत्मा ही कुँजी को घुमाती है।

यद्यपि इससे विचार तथा मस्तिष्क के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है, तथापि अन्य लोग यह भी कहते हैं कि "विचार या चेतना अध:स्वर वाक् (Subvocal speech) का एक अन्य नाम है" या मस्तिष्क के ऊतक की आण्विक प्रक्रियाओं का एक उत्पाद हैं या यह कि प्रत्यय मात्र संवेदन हैं। हम सर्वप्रथम पहले दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

विचार — आण्विक प्रक्रियाओं के उत्पाद नहीं है

ऐसा प्रतीत होता है कि लोग विचार को अध:स्वर वाक् या मस्तिष्क की आण्विक प्रक्रियाओं का एक उत्पाद समझते हैं वे लोग, संग्रमवश (perhaps; शायद) मस्तिष्क के ऊतक में उत्पन्न होने वाले विद्युत आवेग को विचारों का समानार्थी मानते हैं या विचारों को उन आण्विक प्रक्रियाओं से अनन्य मानते हैं जो कि उन विद्युत आवेगों को उत्पन्न करते हैं जो कि संवेदनों द्वारा स्थापित होते हैं। यदि ये लोग भौतिक तथा अधि-भौतिक के बीच के अन्तर को ध्यान में रखें तो वे लोग भली-भाँति समझ लेंगे कि विचार अभौतिक वस्तुयें हैं और कल्पना के कितने भी विसर से उन्हें मस्तिष्क आवेगों तथा आण्विक प्रक्रियाओं के साथ तादात्मीकृत नहीं किया जा सकता यद्यपि संवेदी सन्देश विद्युत आवेगों तथा आण्विक प्रक्रियाओं के जरिये मस्तिष्क का तथा (मस्तिष्क के जरिये) आत्मा को ले जाये जाते हैं। आइये, हम अन्तर को एक साम्यानुमान (analogy) द्वारा

2. *Vincent H. Gaddis has quoted this in "With Brain Destroyed, They live and think!" Fate, Vol.1, No.2, p.82, Summer, 1948.*

स्पष्ट करें।

किसी गिटार (Guitar) से निकलने वाले संगीतीय स्वर गिटार के कंपायमान तारों के ज़रिये उत्पन्न होते हैं। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये स्वर संगीतकार द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं जो कि गिटार को बजाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कहना ग़लत होगा कि संगीत कंपायमान तारों का एक उत्पाद है। इसी प्रकार, आण्विक प्रक्रियायें तथा विद्युत-मस्तिष्कीय आवेग का मात्र कंपन हैं, जबकि आत्मा, एक संगीतकार की तरह, विचार को उत्पन्न करने, विचार का निर्वचन (interpret) करने तथा विचार का प्रशंसन करने के लिये मस्तिष्क का उपयोग एक उपकरण की तरह करती है। जैसा कि श्री पॉलसेन (Paulsen) कहते हैं कि विचार को आण्विक प्रक्रिया के उप-उत्पाद मानना या विद्युत मस्तिष्कीय आवेगों के रूप में अधःस्वर वाक् मानना मात्र भाषा के साथ छेड़छाड़ करना है। हम पॉलसेन को सी.जे. डुकासे (C.J. Ducasse) की पुस्तक से अधिक विस्तारपूर्वक उद्धृत करते हैं। डुकासे ने इस विचार का दृढ़तापूर्वक खण्डन किया है कि चेतना आण्विक प्रक्रियाओं का उप-उत्पाद है। यहाँ वे पॉलसेन को उद्धृत करते हैं : "............ इस कथन के समर्थन के लिये कोई भी साक्ष्य न कभी है और न ही दिया जा सकता है क्योंकि यह वस्तुतः 'विचार', 'भावना', 'संवेदन', 'इच्छा' आदि शब्दों को उन तथ्यों को सूचित करवाने का एक प्रच्छन्न प्रस्ताव मात्र है। यह कहना कि वे शब्द कतिपय रासायनिक या व्यवहारात्मक घटनाओं के मात्र अन्य नाम हैं, नितान्त मनमानीपूर्ण होगा, क्योंकि यह कहना वैसा ही होगा जैसे कि यह कहना कि 'लकड़ी' काँच का एक अन्य नाम है या 'आलू' गोभी का एक अन्य नाम है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अन्तर्दर्शन द्वारा प्रत्यक्षतः यह देख सकता है कि विचार, इच्छा, संवेदन तथा अन्य मानसिक अवस्थायें कैसी हैं और अन्तर्दर्शन यह प्रकट करता है कि वे पेशी-आकुंचन या ग्रंथि-स्राव या किसी भी अन्य शारीरिक घटनाओं के सदृश्य कदापि नहीं हैं। भाषा के साथ कितनी भी छेड़छाड़ प्रेक्षणीय तथ्य को परिवर्तित नहीं कर सकती कि सोचना एक बात है और अस्पष्ट स्वर में बोलना बिल्कुल दूसरी बात है, यह

कि क्रोध नामक भावना का उस शारीरिक व्यवहार से जो कि क्रोध के होने पर होता है, कोई भी सादृश्य नहीं है या कि इच्छा का कोई कार्य तनिक भी उस चीज जैसा नहीं है जिसे कि हम तब पाते हैं जब हम खोपड़ी को खोलते हैं तथा उसका परीक्षण करते हैं। निःसन्देह, कतिपय मानसिक घटनायें उसी ढंग से कतिपय (certain) शारीरिक घटनाओं से जुड़ी हुई होती हैं किन्तु वे स्वयं वे शारीरिक घटनायें नहीं होतीं, यह सम्बन्ध अनन्यता नहीं है।''[3]

विचार (Thought) तथा प्रत्यय (Ideas) 'संवेदन' नहीं हैं

आइये, अब हम उन लोगों के दृष्टिकोण पर चर्चा करेंगे जो यह कहते हैं कि विचार, संवेदन या संवेदी उद्दीपनों के सिवाय कुछ भी नहीं हैं। इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि जब हमारी इंद्रियाँ उनके विषयों के सम्पर्क में नहीं होतीं तब भी हम मानसिक बिंब (Mental images) निर्मित कर सकते हैं और करते हैं, योजनायें बनाते हैं तथा प्रत्यय निर्मित करते हैं। हमारे सभी विचार तथा प्रत्यय संवेदी सन्देशों के उद्दीपन या संवेदनों के परिणाम नहीं होते। निःसंदेह, अधिकांश मामलों में संवेदन चिन्तन के लिये उत्पादन प्रदान करते हैं। किन्तु मन, चेतना या आत्मा के पास उन्हें प्रत्ययों के रूप में पुनर्गठित करने की शक्ति तथा योग्यता होती है या हमारे मन में प्रत्यय अचानक कौंध भी सकते हैं या जैसा कि हम कहते हैं, हमारे मन में कोई प्रत्यय उठ सकता है, या हमारा मन किसी संप्रत्यय का सूत्रण कर सकता है या हमारा मन किसी संवेदन पर गहराई से सोच सकता है और किसी संवेदी सन्देश का निर्वचन कर सकता है और भी उस पर कार्यवाही न करने का निर्णय कर सकता है। इस प्रकार विचार तथा प्रत्यय एक भिन्न कोटि की सत्तायें हैं वे अधि-भौतिक स्वरूप के होते हैं और भले ही वे संवेदनों से सम्बन्धित होते हैं, लेकिन वे संवेदनों के एक अन्य नाम नहीं हैं।

यदि हम इस प्रश्न पर विचार करें कि ''कौन से संवेदन दिक्, काल तथा संख्या के अनुरूप हैं ? कौन-सा संवेदन गणितीय संख्या 1 से 5 तक है ?'' तो

3. *C.J. Ducasse "The Empirical Case for Personal Survival, in body, mind and death", New York. Cromwell Publishing Co., 1964, p.223-224.*

अन्तर अधिक स्पष्ट हो जायेगा। स्पष्ट है कि ये तथा ऐसे अन्य संप्रत्यय, प्रत्यय या विचार संवेदन नहीं हैं। मनुष्य विचार करता है, वह एक विचारक है। यह कहना ग़लत होगा कि वह मात्र बोध करता है। आत्मा ही निर्वचन करती है, समझती है, प्रशंसन करती है और संवेदी संदेशों या संवेदनों पर कार्रवाई करती है।

यह ज्ञात तथ्य ध्यान देने योग्य है कि स्वयं प्रमस्तिष्क कोई भी संवेदन ग्रहण नहीं करता। उसे बोध नहीं होता और वह अनुभव नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, वह दर्द का अनुभव नहीं कर सकता। प्रमस्तिष्क में कोई भी संवेदन उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये यह कहना ग़लत होगा कि प्रत्यय केन्द्रीय रूप से उद्भूत संवेदन हैं। अच्छा, यदि वे है ही लेकिन प्रश्न यह है कि कौन इन संवेदनों को प्रत्यय में रूपान्तरित करता है ? उत्तर यह होगा कि मन, मानस, चेतना या आत्मा द्वारा यह किया जाता है। इसलिये, "आत्मा मस्तिष्क से भिन्न एक सत्ता है।"

तथापि, कुछ ऐसे दार्शनिक हुये हैं जिन्होंने यह कहा कि 'स्व' की प्रत्यक्षण से भिन्न कोई भी सत्ता नहीं होती या अस्तित्व नहीं होता। उन्होंने यह कहा कि मन एक प्रकार का रंगमंच है जहाँ एक के बाद एक अनेक प्रत्यक्षण (Perceptions) दिखाई देते हैं। हम इस कथन का परीक्षण करेंगे कि मन एक दर्शक है या दृश्यों का एक संचय है या कि उसके पास एक ऐसी स्थायी सत्ता है जो कि प्रत्यक्षण करती है और प्रत्यक्षण करने में सक्षम है।

क्या मनुष्य विचारों का एक समूह है या मस्तिष्क की एक अनुघटना है?

''विचार तथा प्रत्यक्षण अनुक्रम में तथा निरन्तर प्रकट होते हैं और वे गुजर जाते हैं तथा फिर से गुजर जाते हैं और खिसक जाते हैं, क्योंकि अन्तर्विवेकशील सत्ता 'आत्मा' वहाँ निरन्तर होती है। किसी अनुक्रम में या किसी श्रृंखला में विचारों का निरन्तर प्रकट होना यह नहीं दर्शाता कि मन एक प्रक्रिया है, किन्तु यह कि मन या आत्मा उद्दीपनों या संवेदी सन्देशों का निरन्तर प्रसंस्करण करती है तथा उनका अवलोकन करती है तथा उन पर प्रतिक्रिया करती है। इसलिये स्वयं को अनुक्रमिक विचारों की एक प्रक्रिया या समूह न समझो, बल्कि वह व्यक्ति समझो जो कि इस प्रक्रिया तथा अनुक्रम का अवलोकन करता है तथा उनका विषय तथा विषयी है।''

— शिव भगवानुवाच

प्रत्येक मानव प्राणी सोचता है या सोचने की क्षमता रखता है। इसका खण्डन नहीं किया जा सकता। किन्तु प्रश्न यह है कि ''विचार तथा स्वत्त्व (being) के बीच सम्बन्ध क्या है?'' दूसरे शब्दों में, ''क्या यह स्वत्त्व एक विचारक है या कि वह विचार का एक मात्र अवलोकनकर्त्ता है ?'' विचार तथा स्वत्त्व के बीच के इस सम्बन्ध को समझ लेने पर हम स्वत्त्व या 'स्व' के स्वभाव को समझ सकेंगे।

क्या मैं एक विचारक हूँ या एक विचार हूँ, एक प्रत्यक्षणकर्त्ता हूँ या एक प्रत्यक्षण हूँ ?

एक जर्मन दार्शनिक डेस्कार्टेस (Descartes) का यह विश्वास था कि स्वत्त्व या स्व ही सोचता है। इस प्रकार उन्होंने आत्मा के अस्तित्व को ही इस पूर्व पक्ष के आधार पर सिद्ध किया कि विचार अस्तित्व में रहता है। उन्होंने कहा ''कोजिटो एर्गो सम'' (Cogito ergo sum) — ''मैं सोचता हूँ, इसलिये मैं हूँ ।''

तथापि प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक डेविड ह्यूम (David Hume) ने उपर्युक्त तर्क का खण्डन किया। डेस्कार्टेस तथा उनकी विचारधारा के अन्य विचारों का उल्लेख करते हुए ह्यूम कहते हैं : "कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जो यह कल्पना करते हैं कि प्रत्येक क्षण हम उस वस्तु के प्रति घनिष्ठत: सचेतन होते हैं जिसे हम अपना 'स्व' कहते हैं, यह कि हम उसके अस्तित्व का अनुभव करते हैं और किसे निदर्शन के साक्ष्य के परे उसकी परिपूर्ण अनन्यता तथा सरलता के परे उसकी परिपूर्णता करते हैं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, जब मैं अत्यंत घनिष्ठत: प्रवेश करता हूँ जिसे मैं मेरा 'स्व' कहता हूँ तो मैं हमेशा किसी ताप या शीत, प्रकाश या छाया, प्रेम या घृणा, पीड़ा या सुख के किसी विशिष्ट या अन्य प्रत्यक्षण पर अटक जाता हूँ। मैं बिना किसी प्रत्यक्षण के किसी भी समय मेरे 'स्व' को कभी भी पकड़ नहीं पाता और प्रत्यक्षण के सिवाय किसी का भी अवलोकन नहीं कर सकता। जब मेरे प्रत्यक्षण (Perception) किसी भी समय के लिए, जैसे कि गहरी नीन्द द्वारा मुझसे दूर हो जाते हैं तो यह कहा जा सकता है कि जब तक मैं अपने बारे में अचेत होता हूँ तब तक मैं वस्तुत: विद्यमान नहीं होता। यदि मेरे सभी प्रत्यक्षण मेरी मृत्यु द्वारा अलग हो जाएँ और न तो मैं सोच सकूँ तो मेरे शरीर के मर जाने पर मेरा अस्तित्व पूर्णत: नष्ट हो जाना चाहिए, न तो मैं यह कल्पना कर सकता हूँ कि मुझे एक परिपूर्ण असत्ता बनाने के लिये आगे क्या आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति प्रकृष्ट तथा अपूर्वनिर्णित विचारों के आधार पर यह सोचता है कि उसके पास स्वयं के बारे में कोई भिन्न धारणा है तो मुझे यह स्वीकार करना होगा कि मैं उसके साथ नहीं रह गया हूँ। मैं उसे इतनी ही गुंजाइश दे सकता हूँ कि वह भी सही हो सकता है और मैं भी सही हो सकता हूँ, और यह कि इस ब्यौरे में तत्त्वत: हमसे भिन्नता है। सम्भवत: वह किसी सरल तथा निरन्तर वस्तु का प्रत्यक्षण कर सकता है जिसे कि वह अपना 'स्व' कहता है यद्यपि मैं निश्चय पूर्वक यह कह सकता हूँ कि मुझमें ऐसा कोई भी सिद्धान्त नहीं है। इस प्रकार के कुछ तत्वों को छोड़कर मैं शेष मानव-जाति से यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि वे विभिन्न प्रत्यक्षणों के एक समूह या संग्रह के सिवाय कुछ भी नहीं है, जो

कि एक के बाद एक अकल्पनीय द्रुतता से आते हैं तथा निरन्तर अभिवाह मान तथा गतिमान में रहते हैं।''[1]

इसलिये ह्यूम की दृष्टि में मनुष्य विभिन्न प्रत्यक्षणों तथा विचारों के एक समूह के सिवाय कुछ भी नहीं है।

ह्यूम आगे यह कहते हैं कि ''मन एक प्रकार का थियेटर है जहाँ अनेक प्रत्यक्षण एक के बाद एक प्रकट होते हैं, गुजरते हैं, फिर से गुजरते हैं, खिसक जाते हैं और अनेक प्रकार की भंगिमाओं तथा परिस्थितियों में मिश्रित हो जाते हैं। उनमें एक समय में उचित रीति से कोई भी सरलता नहीं होती, कोई अनन्यता नहीं होती। थियेटर की तुलना से हमें गुमराह नहीं होना चाहिये। वे केवल आनुक्रमिक प्रत्यक्षण होते हैं जिनसे मन का गठन होता है; न ही हमारे पास उस स्थान की कोई धारणा होती है जहाँ से दृश्य विदित होते हैं, न ही उन सामग्रियों की कोई धारणा होती है जिनसे उसकी रचना होती है।''

इस प्रकार ह्यूम के अनुसार मन एक थियेटर है जहाँ ताप या शीत, प्रेम या घृणा, पीड़ा या सुख के प्रत्यक्षण गुजरते हैं, फिर से गुजरते हैं, खिसक जाते हैं और मिश्रित हो जाते हैं और फिर भी मन कोई स्थान नहीं है, वह केवल आनुक्रमिक प्रत्यक्षणों से गठित है।

ह्यूम के तर्क में दोष

यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि दार्शनिक ह्यूम ने कहाँ गलती की। उनके तर्क में बुनियादी दोष यह है कि उन्होंने प्रत्यक्षणों तथा प्रत्यक्षणकर्त्ता या विचारों तथा विचारक के बीच कोई भी विभेद नहीं किया। ह्यूम प्रत्यक्षणों को ग़लती से 'स्व' या 'मन' समझते हैं, जबकि सत्य यह है कि वे 'मन' या 'स्व' की चेतना या अभिज्ञता की अभिव्यक्तियाँ हैं। यह कहा जा सकता है कि विचार तथा प्रत्यक्षण चेतना या 'स्व' के स्पंदन, कंपन, अभिव्यक्तियाँ या हाव-भाव हैं, या कि वे कंपनों तथा उद्दीपनों के संग्रहण, अंकन या स्त्रवण हैं। 'स्व'

1. *Hume's Treatise of Human Nature, B.K.1, Part IV, 7 p.251.*

(विचारक) तथा विचार के बीच का अन्तर वैसा ही है जैसे किसी नदी तथा उसकी लहरों के बीच या किसी अभिकल्पना या अभिकल्प के बीच, या किसी कर्त्ता और किसी कार्य के बीच होता है, यद्यपि इस अन्तर को किसी भी स्थूल अर्थ में नहीं समझा जा सकता। यदि ह्यूम ने एक आवेग के प्रभाव में इस अन्तर को नजर-अन्दाज न कर दिया होता तो जिन तत्व-मीमांसाविदों की उन्होंने आलोचना की है उन तत्व-मीमांसाविदों की तरह उन्होंने यह विश्वास किया होता कि सभी प्रत्यक्षणों के पीछे एक 'स्व' या 'आत्मा' है। आइये, हम ह्यूम के कथन का परीक्षण करें।

'स्व' — प्रत्यक्षणों का अवलोकनकर्त्ता (Observer) है

ह्यूम के कथन को फिर से पढ़िये। ह्यूम कहते हैं, "मैं किसी भी समय किसी प्रत्यक्षण के बिना स्वयं को कभी भी पकड़ नहीं सकता और किसी भी वस्तु का अवलोकन नहीं कर सकता।" इसका यह अर्थ है कि मैं प्रत्यक्षणों का एक अवलोकनकर्त्ता हूँ, या मैं हमेशा प्रत्यक्षण के साथ हूँ (अर्थात् कभी भी उसके बिना नहीं हूँ)। स्पष्टतः, इसका निहितार्थ यह है कि मेरे पास प्रत्यक्षणों से पृथक् मेरी सत्ता है, क्योंकि अवलोकनकर्त्ता अवलोकित वस्तु से भिन्न होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी वस्तु के साथ होता है वह उस किसी वस्तु से भिन्न होता है। 'स्व' कभी भी किसी प्रत्यक्षण के बिना नहीं होता क्योंकि प्रत्यक्षण अन्तर्विवेकशील 'स्व' की एक योग्यता है किन्तु 'स्व' प्रत्यक्षण नहीं है, जैसे कि सुगन्ध गुलाब के फूल का एक गुण है, किन्तु गुलाब का फूल वही वस्तु नहीं है जो कि उसकी सुगन्ध है।

यदि ह्यूम ने यह बात ध्यान में रखी होती तो उन्होंने यह नहीं कहा होता कि— यह कहा जा सकता कि गहरी नींद के दौरान 'स्व' अस्तित्व में नहीं रहता क्योंकि वस्तुतः 'स्व' वहाँ है किन्तु केवल प्रत्यक्षण जो कि 'स्व' के कार्य हैं, अस्तित्व में नहीं हैं या 'स्व' ने प्रत्यक्षणों का अवलोकन करना बन्द कर दिया है। यदि किसी बढ़ई ने फर्नीचर बनाना बन्द कर दिया हो तो इसका अर्थ यह नहीं है कि बढ़ई का अस्तित्व ही नहीं रह गया है।

इसके अतिरिक्त कौन कहता है कि — "मैं निश्चय पूर्वक यह कह सकता हूँ कि मुझमें ऐसा कोई भी सिद्धान्त नहीं है .... ।" अनेक प्रत्यक्षणों का अवलोकन करने के पश्चात् निश्चयपूर्वक कहने का यह अर्थ है कि मैं प्रत्यक्षणों का एक अवलोकनकर्त्ता हूँ और अवलोकन करने के पश्चात् मैं सोचता हूँ और किसी निष्कर्ष का सूत्रण करता हूँ। स्पष्ट है कि यह जो कि अवलोकन करता है, तर्कना परख बुद्धि का प्रयोग करता है और किसी निर्णय पर पहुँचता है, प्रत्यक्षण नहीं है बल्कि प्रत्यक्षणकर्त्ता है और प्रत्यक्षणों का अवलोकनकर्त्ता है तथा एक विचारक है। जब वह गहरी नींद में होता है तो वह प्रत्यक्षणों का अवलोकन करना तथा निर्णय का सूत्रण करना छोड़ देता है किन्तु फिर भी वह अस्तित्व में रहता है तथा सोने के पहले जहाँ उसने अवलोकन करना छोड़ दिया था वहाँ से आरम्भ कर सकता है।

'स्व' के बिना प्रत्यक्षणों का समूह या संग्रह संभव नहीं है

अपने कथन में ह्यूम यह कहते हैं कि 'स्व' प्रत्यक्षणों के एक समूह या संग्रह के सिवाय कुछ भी नहीं है किन्तु प्रश्न यह है — "यदि विचार तथा प्रत्यक्षण एक के बाद एक आते हैं, तो वह कौन है जो कि विचारों को एक 'समूह' या 'संग्रह' समझता है, जिस शब्द से एक से अधिक विचारों में होने का अर्थ निकलता है?" "वह कौन है जो देखता है और कहता है यह विचार मेरे मन में पहले भी आया था तथा मेरे में बारंबार आता रहता है?"

ह्यूम के इस कथन पर भी सोचिये — "जब मेरे प्रत्यक्षण किसी भी समय के लिये, जैसे कि गहरी नींद द्वारा मुझसे दूर हो जाते हैं तो यह कहा जा सकता है कि जब तक मैं अपने बारे में अचेत रहता हूँ तब तक मैं वस्तुत: विद्यमान नहीं होता।" यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि "यदि सो जाने पर कोई अस्तित्व नहीं रह जाता तो वह कौन है जो कि जागने पर, उदाहरणार्थ यह कहता है कि सोने के लिये जाने के पहले वह 'मन के स्वभाव' पर एक निबन्ध लिखने की सोच रहा था? दूसरे शब्दों में, "वह कौन है जिसे कि याद है कि सोने के पहले क्या हो रहा था तथा कौन कहता है कि उसे अच्छी नींद आयी।" स्पष्ट है कि कोई स्थाई

'स्व' है जो कि सोने के पहले विद्यमान था तथा सोने के पश्चात् विद्यमान रहता है और जिसके पास अतीत की घटनाओं की स्मृति होती है और जिसके पास वर्तमान से जोड़कर विचार प्रक्रिया की निरन्तरता बनाये रखने की योग्यता होती है और एक व्यक्तित्व (personality), एक व्यष्टित्व (individuality) भी होता है तथा स्वत्त्व की अनन्यता (identity) भी होती है।

ह्यूम इस निरन्तरता की व्याख्या यह कहकर करते हैं कि प्रत्यक्षण एक के बाद एक अकल्पनीय द्रुतता (rapidity) से आते हैं तथा निरन्तर अभिवाहमान (perpetual flux) तथा गतिमान रहते हैं — इसलिये उनमें निरन्तरता रहती है। वे एक थियेटर का उदाहरण देते हैं जहाँ किसी सिनेमा फिल्म द्वारा प्रक्षेपित दृश्य एक के बाद एक इतनी द्रुतता से आते हैं कि उनमें गति की निरन्तरता बनी रहती है। किसी नदी में जल की बूंदे विभाजनीय तथा पृथक होती हैं 'किन्तु' प्रवाह में वे एकीकृत प्रतीत होती हैं। इस प्रकार ह्यूम के अनुसार सतत प्रवाह निरन्तरता का भ्रम उत्पन्न करता है। किन्तु प्रश्न यह है कि "यदि सभी मानसिक बिंबों में जो एकता और निरन्तरता देखी जाती है वह बदलते हुए विचारों के योग से अधिक कुछ भी नहीं है तो इस भ्रम से ग्रस्त कौन होता है? या यह कौन समझता है कि यह एक भ्रम है? इसके अतिरिक्त कौन यह समझता है कि निरन्तरता प्रत्यक्षणों के प्रवाह या अनुक्रम के कारण है? ह्यूम इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देते।

वस्तुत:, उनके विचारों में बहुत असंगतता है। एक ओर ह्यूम यह कहते हैं कि प्रत्येक प्रत्यक्षण दूसरे से स्वतन्त्र होता है और यह कि निरन्तरता मात्र एक भ्रम है और दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि 'स्व' प्रत्यक्षणों का एक समूह या संग्रह है। इस प्रकार वे अपने ही कथन का खण्डन करते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि हम ह्यूम के कथन में जहाँ कहीं 'मैं' और 'मेरा स्व' शब्द आये हैं उनके स्थान पर 'विभिन्न प्रत्यक्षणों का एक समूह या संग्रह' शब्द रखकर पढ़ें तो हम यह पायेंगे कि उनका कथन मनोरंजक हो जाता है। जैसे —

"........जब प्रत्यक्षणों का समूह अत्यन्त घनिष्ठत: उसमें प्रवेश करता है जिसे वह प्रत्यक्षणों का समूह कहता है तो प्रत्यक्षणों का समूह ताप या शीत, प्रकाश या छाया, प्रेम या घृणा, पीड़ा या सुख के किसी विशिष्ट या अन्य प्रत्यक्षण

पर अटक जाता है। प्रत्यक्षणों का समूह बिना किसी प्रत्यक्षण के किसी भी समय प्रत्यक्षणों के समूह को पकड़ नहीं पाता। जब प्रत्यक्षणों का समूह किसी समय के लिये हट जाता है जैसे कि गहरी नींद द्वारा, तो यह कहा जा सकता है कि जब तक प्रत्यक्षणों का समूह प्रत्यक्षणों के समूह के बारे में अचेत होता है तब तक वस्तुत: वह अस्तित्व में नहीं होता ...."

हमने ह्यूम के कथन में आये हुए शब्दों 'मैं' और 'मेरे' के लिये 'प्रत्यक्षणों की समूह शब्द इसलिये रखे हैं क्योंकि स्वयं ह्यूम का कथन है कि 'स्व' या 'मैं' प्रत्यक्षणों का एक समूह है।' अब इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने स्वयं के कथनों की सार्थकता या ज्ञान की प्रामाणिकता को खतरे में डाले बिना एक सत्ता के रूप 'स्व' के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। 'स्व' के अस्तित्व में विश्वास होना अपरिहार्य है, क्योंकि उसके बिना सभी कथन निरर्थक तथा हास्यास्पद हो जायेंगे।

किसी स्थाई 'स्व' के अभाव में स्मृति की व्याख्या नहीं की जा सकती

हम सभी लोग यह जानते हैं कि प्रत्यक्षणों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के पास स्मृति होती है। यदि प्रत्यक्षणों का केवल कोई द्रुत अनुक्रम हो तो किसके पास स्मृति या प्रत्यास्मरण की शक्ति होती है? आइये, हम इस प्रश्न को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

मान लीजिये कि मैंने एक बालक को 20 वर्ष पहले देखा। उसके रूप में उसकी आकृति का एक प्रत्यक्षण था। अब इस लंबी अवधि के पश्चात्, जिसके दौरान लाखों प्रत्यक्षण घटित हुए हैं, मैं उसे फिर से देखता हूँ। इस बीच वह बालक बढ़कर पुरुष हो गया है। प्रश्न यह है कि कौन इन दो प्रत्यक्षणों की तुलना करता है और उनका मेल करता है और समानताओं और परिवर्तनों को देखता है? यदि केवल प्रत्यक्षण हो रहे हों और कोई स्थाई प्रत्यक्षणकर्त्ता न रहा हो तो लाखों अन्य प्रत्यक्षणों में से अतीत के प्रत्यक्षण को चुनकर कौन उन्हें आपस में जोड़ता ? यदि कोई नींद के दौरान हर रात अस्तित्वहीन हो जाता है और हर

सुबह एक प्रत्यक्षण या प्रत्यक्षणों के एक समूह के रूप में लौट आता है तो वह कौन था जिसने उस प्रत्यक्षण का प्रत्यास्मरण किया जो कि अब 20 वर्ष पुराना है ? भौतिक रूप में मैं आज वह नहीं हूँ जो कि कल था या कि 20 वर्ष पहले था। एक प्रत्यक्षण के रूप में विचार करने पर भी मेरा अस्तित्व आज वह नहीं है जो कि 20 वर्ष पूर्व था। किन्तु ज्ञान केवल उसी व्यक्ति के पास होता है जिसने उस बालक को आज देखा और 20 वर्ष पहले भी देखा था। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कोई स्थाई 'स्व' है जो कि प्रत्यक्षण करता है और प्रत्यास्मरण करता है।

यह वस्तुत: आश्चर्यजनक बात है कि ह्यूम ने 'स्व' की उपस्थिति का अनुभव नहीं किया। वे स्वयं यह कहते हैं कि जब वे स्वयं में देखते हैं तो वे विचारों को आते हुए तथा जाते हुए पाते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि वह 'स्वयं' ही 'स्व' है, विचारक है, प्रत्यक्षणकर्त्ता है, ज्ञाता है या वह है जो कि स्मरण करता है या प्रत्यास्मरण करता है।

ह्यूम का सिद्धान्त — जानने और ज्ञान का भण्डारण (storing) करने के प्रक्रिया की व्याख्या नहीं कर सकता

कोई भी व्यक्ति उसके दैनिक अनुभव के आधार पर इस तथ्य को समझ सकता है कि जानने की प्रक्रिया में (1) प्रत्यक्षण या किसी विचार, उद्दीपन या जानकारी के प्रभाव को प्राप्त करना, (2) इस जानकारी या अनुभव का वर्गीकरण करना, (3) उसे अन्य जानकारी के साथ सम्बद्ध करना या अन्य जानकारी के साथ उसकी तुलना कर समानताओं तथा असमानताओं का पता लगाना, (4) आत्मसात् करना, विकास या उसमें वृद्धि करना अन्तर्ग्रस्त होता है। किन्तु ये सूक्ष्म प्रक्रियायें तभी घटित हो सकती हैं जब कोई ऐसी स्थाई मनोवैज्ञानिक या अन्तर्विवेकशील सत्ता हो जिसके पास ज्ञान को स्वीकार करने की इच्छा या अभिप्रेरणा हो, उसमें विवेचन या मूल्यांकन करने की योग्यता हो, उसे समझने या उसका परिग्रहण करने की तथा उसे प्रतिधारित करने और उसका उपयोग करने की योग्यता हो। वह न केवल सीखती है और जानकारी का भण्डारण

करती है बल्कि अनुभव भी करती है और ज्ञान का उपयोग व्यवहारिक परिस्थितयों में करती है, ताकि पीड़ा की भावना को टाल सके और परिणाम स्वरूप सुख प्राप्त कर सके। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि — वह सत्ता जिसमें चेतना होती है, 'आत्मा' या 'मन' है। यदि हम ह्यूम के प्रश्न को बार-बार पढ़ें तो हम यह पाते हैं कि वस्तुत: वह एक स्थाई 'स्व' है जिसने 'मैं' और 'मेरा', 'स्वयं' आदि शब्दों में अभिव्यक्ति पायी है। अन्यथा कौन कहता है कि "मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ ....", "मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ ....", आदि? क्या प्रत्यक्षणों का समूह निश्चयपूर्वक कह सकता है या कहने का साहस कर सकता है? नहीं। वह 'स्थाई स्व', 'अन्तर्विवेकशील स्वत्त्व' ही है जो कि 'मुझे स्वीकार करना होगा', आदि वाक्यांशों का उपयोग करता है जिनका उपयोग ह्यूम के उपर्युक्त कथन में किया गया है। पाठक को यह जानना चाहिए कि अपने स्वयं के अस्तित्व की वास्तविकता के विरोध के कारण ह्यूम के मन में शान्ति नहीं है, जैसा कि उनके स्वयं के कथनों से प्रकट होता है।

जो दर्शन — आत्मा के अस्तित्व को नकारता है वह दर्शन अशान्ति की ओर ले जाता है

इस सिलसिले में इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ह्यूम ने स्वयं अपने लेखों में कहा है कि आत्मा के अस्तित्व में उनके अविश्वास के कारण वे गहरी विषादपूर्ण तथा प्रलापपूर्ण अवस्था में थे। वे अपनी पुस्तक में कहते हैं— "अत्यन्त सामान्यत: यह होता है कि चूँकि तर्कना इन बादलों को दूर करने में सक्षम नहीं है इसलिये स्वयं प्रकृति इस प्रयोजन को पूरा कर देती है और या तो मन की इस प्रवृत्ति को शिथिल कर या मेरी इंद्रियों की किसी उपवृत्ति या जीवन्त छाप द्वारा जो कि इस सभी मनगढंत संकल्पनाओं को मिटा देते हैं, इस मनोवैज्ञानिक विषाद तथा प्रलाप की दशा से मुक्त कर देती है। मैं खाता हूँ, मैं बैकगैमन (Backgamon) का खेल खेलता हूँ, मैं वार्तालाप करता हूँ और मैं अपने मित्रों के साथ आनन्द मनाता हूँ और जब तीन या चार घंटों के बाद इन

परिकल्पनाओं में लौटता हूँ तो वे इतने निर्जीव, तनावपूर्ण तथा हास्यास्पद प्रतीत होती हैं कि मैं मेरे हृदय में उनमें और आगे प्रवेश करने की इच्छा नहीं पाता।"[2]

इस प्रकार, ह्यूम ने यह स्वीकार किया है कि उनका दर्शन मनुष्य के मन को विषाद तथा प्रलाप की एक अवस्था देता है। उन्होंने अपने दर्शन को परिकल्पनायें, निर्जीव तथा तनावपूर्ण और हास्यास्पद या मनगढ़ंत कहा है। उन्होंने यह कहा है कि वे इन परिकल्पनाओं में और आगे प्रवेश करना नहीं चाहते। किन्तु दु:ख की बात है कि जिन अनेक साधारण लोगों ने ह्यूम के विचारों को पूरी तरह से अध्ययन नहीं किया तथा जो लोग यह नहीं जानते कि स्वयं ह्यूम ने अपने मन की विषादपूर्ण तथा प्रलापपूर्ण अवस्था के बारे में स्वीकार किया है और इन परिकल्पनाओं को मनगढ़ंत तथा हास्यास्पद कहा है वे लोग उनके दर्शन का अनुसरण करते हैं तथा आत्मा के अस्तित्व का खण्डन करने के लिये उनकी विचारधारा को अपनाते हैं।

अन्य लोग यह कहते हैं कि मन या विचार मस्तिष्क की एक अनुघटना मात्र है। यद्यपि उनमें से अनेक लोग न तो तन्त्रिका विज्ञानी हैं और न तो मस्तिष्क विज्ञानी हैं, तथापि वे उसे इतनी दृढ़ता से कहते हैं मानो कि उन्होंने किसी मनुष्य के कपाल (Cranium) को खोला था और मस्तिष्क से विचारों को उसी प्रकार निकलते हुए देखा था जैसे कि आग से धुआँ निकलता है। उन्हें यह जानना चाहिए कि डॉक्टरों ने ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनमें किसी रोगी के पास बहुत कम मस्तिष्क था या था ही नहीं, फिर भी वे अनुभव करते थे तथा विचार करते थे और कार्य करते थे।

'मन' — मस्तिष्क की कोई उपघटना (eqiphenomenon) नहीं है

डॉ. गाउल्ड (Dr. Gould) तथा डॉ. पाइल (Dr. Pyle) ने एक ऐसे व्यक्ति का मामला प्रतिवेदित किया है जो कि प्रमस्तिष्कीय गुल्म (Cerebral tumour) से पीड़ित था और अन्तत: उसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। शव-परीक्षा करने पर

2. *Hume's Treatise of Human Nature, B.K.1, Part IV, 7 Aikins Philosophy of Hume —Vide Roger's. A student's History of Philosophy, p.384.*

उस व्यक्ति के मस्तिष्क में एक पाँच इंच लंबी गुहा (Cavity) पाई गई। तथापि इस व्यक्ति की मृत्यु के दो सप्ताह पूर्व यह व्यक्ति कविताओं को कंठस्थ कर रहा था। भले ही गुल्म ने उसके मस्तिष्क के बहुत भाग को नष्ट कर दिया था।

जर्मनी के डॉ. ह्यूफलैन्ड (Dr. Hufeland) एक ऐसे व्यक्ति का मामला प्रतिवेदित करते हैं जिसकी खोपड़ी में थोड़े से जल के सिवाय कुछ भी नहीं पाया गया। फिर भी उसकी मानसिक शक्तियाँ उसकी मृत्यु होने तक सामान्य रहीं।

विन्सेन्ट एच. गैडिस (Vincent H. Gaddis) ने 'फेट' (Fate) नामक पत्रिका के वाल्यूम-एक, संख्या 2, 1948 में उस पुरुष शिशु का मामला प्रतिवेदित किया है जिसका जन्म 1935 में न्यूयार्क शहर में सेन्ट विन्सेन्ट हॉस्पिटल में हुआ था। यह शिशु बिना मस्तिष्क के 27 दिन जीवित रहा तथा सभी प्रकार के संकेत देता था। यह घटना शरीर-क्रियाविज्ञान की सभी संकल्पनाओं जैसे — मस्तिष्क ही सोचती है, उद्दीपनों की प्रतिक्रिया करती है, आदि का खण्डन करती है।

इसके अतिरिक्त, यह पाया गया है कि कभी-कभी मस्तिष्क के अनेक भागों अर्थात् मस्तिष्क द्रव्य को शल्य चिकित्सा सर्जरी द्वारा निकाल देने से मानसिक क्रियायें पंगु होने के बजाय उनमें कुछ सुधार आ जाता है। इस लेख के लेखक ने एक मामले का प्रतिवेदन पढ़ा था जो कि अनेक वर्षों पूर्व अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन (American Psychiatric Association) द्वारा प्रकाशित किया गया था, किन्तु लेखक को याद नहीं आता कि उसने वह लेख कहाँ पढ़ा था। यह एक ऐसी महिला का मामला था जिसकी सम्पूर्ण दाहिनी अग्र ललाट पालि (Prefrontol) को और बाई पालि के अधिकांश को एक-एक शल्य चिकित्सकीय ऑपरेशन द्वारा निकाल दिया गया था। प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि रोगी अधिक सौम्य स्वभाव की हो गई और उसकी एकाग्रता की शक्ति तथा स्मरण शक्ति बढ़ गई।

इस लेख का उद्देश्य मस्तिष्क के महत्व को नकारना नहीं है या यह कहना नहीं है कि मस्तिष्क का विचार से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह सिद्ध करना है कि 'अन्तर्विवेकशील सत्ता' मस्तिष्क से भिन्न है और ऊपर जो चर्चा की गई है उसके प्रकाश में यह कहना है कि 'आत्मा विद्यमान है' तथा मस्तिष्क

और शरीर प्रत्यक्षण करने, क्रिया करने तथा महसूस करने के उपकरण मात्र हैं।

आइये, हम सर्वप्रथम सर्वनाम 'मैं' के बारे में चर्चा करें, जिसका प्रयोग ह्यूम के उपर्युक्त कथन में किया गया है। ह्यूम कहते हैं — "जब मैं उसमें प्रवेश करता हूँ जिसे मैं मेरा 'स्व' कहता हूँ तो मैं ताप या शीत, प्रकाश या छाया, पीड़ा या सुख के किसी विशिष्ट या अन्य प्रत्यक्षण पर अटक जाता हूँ .....।" हम यह पूछना चाहते हैं कि "यह 'मैं' क्या है जो कि किसी प्रत्यक्षण पर अटक जाता है और देख सकता है तथा पहचान सकता है कि वह ताप या शीत या प्रकाश या छाया का प्रत्यक्षण है? क्या वह स्वयं एक प्रत्यक्षण है? यदि वह स्वयं एक प्रत्यक्षण नहीं है बल्कि किसी प्रत्यक्षण का अवलोकनकर्त्ता है तथा उसे पहचानने वाला है तो 'मैं' प्रत्यक्षणों का एक समूह नहीं है।" यदि यह कहा जाय कि यह 'मैं' भी एक प्रत्यक्षण है तो प्रश्न यह है कि "यह मैं किसका प्रत्यक्षण है ? ताप, शीत का? इसके अतिरिक्त क्या प्रत्यक्षणों के किसी समूह का एक प्रत्यक्षण अन्य प्रत्यक्षणों का प्रत्यक्षण कर सकता है तथा स्वयं को शेष प्रत्यक्षणों से पृथक् करते हुए, उनमें से प्रत्येक प्रत्यक्षण की संवीक्षण कर सकता है, उन्हें नाम दे सकता है तथा उन्हें एक समूह के रूप में पहचान सकता है? किस आधार पर तथा किन कारणों से 'मैं' नामक प्रत्यक्षण समूह के अन्य सभी प्रत्यक्षणों से भिन्न है ?"

थोड़ा अन्तर्दर्शन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि 'मैं' एक प्रत्यक्षण नहीं है, बल्कि प्रत्यक्षणों का एक अवलोकनकर्त्ता है। वह स्वत्त्व है जो कि प्रत्येक प्रत्यक्षण का प्रत्यक्षण करता है, उन्हें नाम देता है तथा पहचानता है। यह 'मैं' स्वयं के प्रति और अन्य प्रत्यक्षणों के प्रति भी सचेतन होता है। प्रत्यक्षण न तो स्वयं के बारे में सचेतन होता है और न एक दूसरे के बारे में सचेतन होता है। उदाहरणार्थ ताप का प्रत्यक्षण न तो शीत या प्रकाश या अन्धकार के प्रत्यक्षण से अभिज्ञ होता है और न तो उसे अभिज्ञात करता है। वह यह नहीं कहता कि 'मैं' ताप का प्रत्यक्षण हूँ और न ही अन्य प्रत्यक्षणों को छाँट सकता है और यह कह सकता है कि 'यह प्रकाश का प्रत्यक्षण है।' इसलिये हमें यह जानना चाहिए कि

सर्वनाम 'मैं' अन्तर्विवेकशील 'स्व' के लिये है जो कि एक प्रत्यक्षणकर्त्ता है, न कि एक प्रत्यक्षण। शब्द 'मैं' का प्रयोग उन परिवर्तित होते हुए दृश्यों के प्रत्यक्षणों के लिये नहीं किया गया है जो कि हमारी चेतना के समझ से उपस्थित होते हैं या हमारी चेतना से टकराते हैं। उसका प्रयोग उसके लिये किया गया है जो कि इन प्रत्यक्षणों से अभिज्ञ हैं तथा उनके द्वारा प्रभावित होता है। प्रत्यक्षण या संप्रत्यय उसके हैं, वह स्वयं एक प्रत्यक्षण नहीं है या प्रत्यक्षणों का एक समूह नहीं है।

इसके अतिरिक्त, अनेक व्यक्तियों ने अपने पूर्वजन्मों के बारे में सम्मोहन प्रतीपगमन (Hypnotic regression) की दशा में जो कहानियाँ बताई हैं उनसे भी इस बात की परिपुष्टि होती है कि 'आत्मा एक शाश्वत सत्ता है'। अब हम सम्मोहन प्रतीपगमन तथा माध्यमों के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों के प्रकाश में इस विषय पर चर्चा करेंगे।

सम्मोहन अवस्था में पुनर्जाग्रत गत जन्मों की स्मृतियों के मामले

तथा

आकृति (Apparition) के मामले और माध्यमों के उपयोग के मामले भी आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं

यद्यपि पूर्व के कुछ देशों में सम्मोहन को आज भी रहस्यमय समझा जाता है तथापि इसने पश्चिम में वैज्ञानिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। अब अधिकांश देशों में मनोविश्लेषक सम्मोहन का प्रयोग करते हैं जिसके सहारे वे विस्मृत घटनाओं के ब्यौरे जान सकते हैं और उसके पश्चात् इन ब्यौरों की पुनर्रचना कर यह पता लगाते हैं कि क्या हुआ था? अब सम्मोहन अनेक चिकित्सा-विज्ञान महाविद्यालयों में जैसे फ्रांस में सल्पेट्रिएरे (Salpetriere) तथा नैन्सी (Nancy) में, एक नियमित चिकित्सीय प्रणाली है। वस्तुत: केवल वे लोग उसे अविश्वास या सन्देह की दृष्टि से देखते हैं जो लोग यह नहीं जानते कि यह एक वैज्ञानिक तकनीक है।

सम्मोहन क्या है?

सम्मोहन द्वारा लाई गई सम्मोहक दशा ही सम्मोह (Hypnosis) कहलाती है। हॉवर्ड वारेन (Howard Warren) ने अपने शब्दकोश में 'सम्मोहन' की परिभाषा इस प्रकार की है — "यह एक कृत्रिम रूप से प्रेरित अवस्था है, जो कि प्राय: नींद के सदृश्य होती है,[1] किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उससे सुभिन्न होती है, जिसमें सुग्भावशीलता (Suggestivity) बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप निश्चित संवेदी (Sensory) प्रेरक तथा स्मृतिगत असामान्यतायें सामान्य अवस्था

1. सम्मोहन अवस्था हमेशा इस प्रकार की नींद नहीं होती।

की अपेक्षा अधिक सहज रूप में प्रेरित की जा सकती है।''[2]

सम्मोहन अवस्था के विभिन्न उपयोग

सम्मोहन का प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिये किया जाता है। इनमें से एक प्रयोजन — रोगी के शरीर को पीड़ा के प्रति असंवेदनशील बनाना है, ताकि साधारण अर्थात् रासायनिक निश्चेतक (Chemical Anesthetic) के उपयोग के बिना उस पर गंभीर ऑपरेशन किये जा सकें। सम्मोहन का अन्य उपयोग किसी व्यक्ति को अति संवेदनशील (Hypersensitive) बनाना है। तथापि अनेक मामलों में सम्मोहन का उपयोग किसी व्यक्ति से विगत स्मृतियों का प्रत्यास्मरण करवाने के लिये किया जाता है। हम सर्वप्रथम इस अन्तिम प्रयोजन पर चर्चा करेंगे।

इस अन्तिम उल्लिखित सम्मोहन अवस्था में किसी व्यक्ति से भूतकाल में वापसी यात्रा करवाई जा सकती है तथा विगत (past) दृश्यों को फिर से दिखलाया जा सकता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अतीत का ठीक-ठीक प्रत्यास्मरण (recall) कर सकता है। यह कहा जा सकता है कि वह अपने गत जीवन को पुनर्जीवित कर देता है तथा वह अस्वैच्छिक रूप में दर्शन, ध्वनि, स्वाद, स्पर्श, गंध आदि के ब्यौरों की पुनर्रचना कर सकता है।

सम्मोहन प्रतीप-गमन (Hypnotic Regression)

सम्मोहन के जरिये भूतकाल में की जाने वाली वापसी यात्रा को 'सम्मोहन प्रतीप-गमन' (Hypnotic Regression) कहा जाता है। मनोचिकित्सक (Psychiatrists) संयोगवश, रोगी को भूतकाल में बहुत-बहुत पीछे और यहाँ तक कि गत जीवन में भी वापस ले जाने की संभावना से अभिज्ञ हो गये। ए.डी. वायर्समैन (A.D. Wiersman) तथा मनोचिकित्सक वॉन क्राफ एबिंग (Van Kraff Ebbing) जैसे पूर्ववर्ती अनुसन्धानकर्त्ताओं से, जो कि अपने विषयों को उनकी बाल्यावस्था की अवधि तक पीछे ले जाने में सफल हुए थे, संकेत लेकर डी.रोचा

2. *Howard C. Warren, "Dictionary of Philosophy", Cambridge, Houghton Miffin Co., The Riverside Press, 1934, p.128.*

(De Rocha)[3] नामक एक मनोचिकित्सक ने रोगी को और भी पूर्वतर अवधि में वापस ले जाने की कोशिश की और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि 1904 में वे एक 18 वर्षीय बालिका को उसके जन्म के समय तक वापस ले जाने में सफल हो गये। इससे उन्हें विश्वास हुआ कि क्या वे अपने रोगियों को पूर्ववर्ती जीवन तक वापस ले जा सकते हैं।[4] सम्मोहन प्रतीप-गमन की तकनीक को उन्होंने अपनाया है तथा उनके विषयों द्वारा प्रतिवेदित (reported) घटनाओं का सत्यापन किया है।

'मंथली मिरर' में प्रतिवेदित सम्मोहन प्रतीप-गमन के कुछ मामलें

बंबई से प्रकाशित 'मन्थली मिरर' (Monthly Mirror) पत्रिका के सितंबर 1982 के अंक में एक मामला प्रतिवेदित किया गया था। उसके प्रतिवेदक (Reporter) ने बंबई के एक सम्मोहनविद् श्री जे.वी. राव (J.V.Rao) का एक साक्षात्कार लिया था। श्री राव ने प्रतीप-गमन के एक विलक्षण मामले का उल्लेख किया था। एक 18 वर्षीय ईसाई बालिका ने बंबई में आयोजित एक सम्मोहन प्रदर्शन में इटालियन भाषा में बोलना आरम्भ कर दिया। उस बालिका ने यह बताया कि उसके पूर्ववर्ती जीवनों में से एक जीवन में मुसोलिनी की अवधि के दौरान उसका जन्म इटली में एक पुरुष के रूप में हुआ था। उसने बताया कि उसका वह जीवन सड़क पर हुई एक दुर्घटना में समाप्त हो गया। सम्मोहन अवस्था समाप्त हो जाने के पश्चात् न तो वह इटालियन भाषा बोल सकती थी और न वह उन घटनाओं में से एक भी घटना का वर्णन कर सकी जिसका वर्णन उसने सम्मोहन की अवस्था में किया था। उसके वर्तमान जीवन में वह भारत के बाहर कभी भी नहीं गई थी। उसे इस बात की तनिक भी जानकारी नहीं थी कि इटालियन भाषा की ध्वनि कैसी होती है।

3. *De Rocha.*
4. *C.J. Ducasse, "The Empirical Case of Personal Survival", in Body, Mind and Death. The Cromwell Publishing Co., 1964.*

मंथली 'मिरर' के सितंबर 1982 के अंक में दो अन्य स्पष्ट मामलें प्रतिवेदित किये गये थे। इनमें से एक मामला एक विख्यात अमरीकी वकील से सम्बन्धित था, जो कि स्वयं को पक्का नास्तिक बताता था। जब उसे सम्मोहन द्वारा प्रतीप-गमन की अवस्था में ले जाया गया तो उसने एक वेश्या के रूप में अपने पूर्ववर्ती जीवन के ब्यौरे बताये। दूसरा मामला एक उच्च वर्गीय फ्रांसीसी महिला से सम्बन्धित है। सम्मोहन की अवस्था में उसने बताया कि एक ब्रिटिश व्यक्ति के साथ चल रही प्रणय-जीवन का पता चल गया था तथा यह उसकी हत्या का कारण बन गया था।

विभिन्न पुस्तकों में उल्लिखित कुछ अन्य मामले

प्रोफ़ेसर थियोडोर फ्लोर्नी (Prof. Theodore Flourney) ने बहुत पुरानी दस्तावेजों से सम्मोहन प्रतीप-गमन के एक विलक्षण मामले के ब्यौरों का सत्यापन करने के पश्चात् उसके बारे में एक पुस्तक लिखी। इस मामले का उल्लेख प्रोफ़ेसर मैकडागल (Prof. McDougall) द्वारा उनकी पुस्तक 'एन आउटलाइन ऑफ एबनॉर्मल साइकॉलॉजी' (An Outline of Abnormal Psychology) में किया है।

जिनेवा युनिवर्सिटी (Geneva University) के प्रोफ़ेसर थियोडोर फ्लोर्नी ने एक स्विस बालिका को सम्मोहित किया। उसने अपने विगत जीवन के ब्यौरे दिये। उसके पश्चात् प्रोफेसर फ्लोर्नी ने उस बालिका को सुझाव दिया कि वह जितने पूर्वतम संभव हो उतने पूर्वतम काल के अपने जीवन का प्रत्यास्मरण करे। उस बालिका ने बताया कि वह एक अरब सरदार की बहुत प्रिय पुत्री थी। उसने यह भी कहा कि उस समय उसका नाम 'शिमानदानी' (Simadanee) था। उसके पश्चात् वह अरबी भाषा में धारा प्रवाह से बोलने लगी। उसने यह भी कहा कि वह एक हिन्दू राजा से ब्याही गई थी जिसका नाम 'शिवरूका' था। उसने यह भी बताया कि वह भारतीय नृत्य जानती थी। उसने भारतीय नृत्य के ज्ञान का प्रदर्शन भी किया, उसने यह भी कहा कि वह स्पष्टत: यह देख सकती है कि कैसे उसका पति 'चन्द्रगिरि' नामक एक उत्कृष्ट किले के निर्माण में व्यस्त था। उसने इन

सभी ब्यौरों तथा अनेक अन्य घटनाओं का उल्लेख इस ढंग से किया मानो कि वह उन्हें सिनेमा के पर्दे पर देख रही थी या कि जैसे ये घटनायें उस पर ही घटित हो रही थीं। इन मामलों के अन्वेषण ने उसके कथनों की सत्यता की पुष्टि की।

आर्नल ब्लाक्सहम (Arnall Bloxham) द्वारा प्रतिवेदित जान इवान्स (Jan Evans) का मामला तथा अन्य मामलें

जेफ्री इरेसन (Jeffrey Ireson) ने अपनी पुस्तक 'मोर लाइव्ज दैन वन' (More Lives than One, PanBooks, 1977) में ब्रिटिश सम्मोहनविद् मिस्टर आर्नल ब्लाक्सहम (Arnall Bloxham) द्वारा प्रतिवेदित मामलों का उल्लेख किया है। आर्नल ब्लाक्सहम ने सम्मोहन प्रतीप-गमन की तकनीक का प्रयोग सन् 1939 में 400 से भी अधिक व्यक्तियों पर किया था। आर्नल ब्लाक्सहम ने जान इवान्स नामक 43 वर्षीय विवाहिता महिला को सम्मोहन की अवस्था में प्रतीप-गमन करवाया। यह महिला छह पूर्ववर्ती जन्मों का प्रत्यास्मरण कर सकी। उसने अमेरिका के मेरीलैन्ड में एक भिक्षुणी (Nun) के रूप में बिताये गये अपने जीवन के ब्यौरे दिये। उसने यह भी बताया कि उसके इस जीवन का अन्त 1920 में हुआ। जब उससे और भी प्रतीप-गमन करवाया गया तो उसने रानी एन्नी (Queen Anne) के शासनकाल के दौरान लन्दन में एक दर्जी लड़की के रूप में बिताये गये अपने जीवन का प्रत्यास्मरण किया। यह समय 1615 से लेकर 1714 तक का था। उसके बाद उसने भूतकाल में और भी पीछे यात्रा की और उसने बताया कि वह कैथरीन ऑफ ऑराजोन (Catherine of Aarazon) की एक परिचारिका थी; यह 1485 से 1536 के बीच का समय था। इसके पूर्व वह जैक्स (Jacques) की सेविका थी, उसका जीवन 1451 में समाप्त हुआ। भूतकाल में और भी पीछे जाने पर वह यार्क में एक यहूदी महिला थी। जिस पूर्वतम अवधि का प्रत्यास्मरण वह कर सकी वह अवधि ईसा पश्चात् 286 वर्ष का था, जब वह रोमन साम्राज्य में ब्रिटेन में एक शिक्षक की पत्नी थी।

आर्नल ब्लाक्सहम के 400 मामलों में से एक मामला एक ऐसे व्यक्ति का है जिसने यह कहा कि अपने पूर्व जन्मों में से एक जन्म में उसने 1649 में व्हाइट

हॉल (White Hall) में चार्ल्स प्रथम को दिया गया मृत्युदण्ड देखा था। एक अन्य मामला एक वेल्श महिला का था, जिसने बारहवीं शताब्दी में यार्क में हुए यहूदियों के संहार का विशद वर्णन किया था।

वर्वरा इवान्वा का मामला

एक अन्य बहुत मनोरंजक मामला स्वयं एक रूसी सम्मोहन चिकित्साविद् वर्वरा इवान्वा (Varvara Ivanva) का है। एक बार वो एक रूसी मनोचिकित्सक से मिली जिसने उन्हें बताया कि अरबी भाषा सीखना बहुत आसान था। इस कथन ने वर्वरा इवान्वा के मन में उत्सुकता पैदा कर दी। वर्वरा इवान्वा ने उस रूसी मनोचिकित्सक पर सम्मोहन प्रतीप-गमन का प्रयोग किया। सम्मोहन की अवस्था में रूसी मनोचिकित्सक द्वारा बताये गये तथ्यों से यह प्रकट हुआ कि चूँकि उसके पूर्ववर्ती जीवन में उसने अरब के रूप में जन्म लिया था इसलिये उसे अरबी भाषा आसान लगती थी। इस व्यक्ति ने अपने सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन के, पर्यावरण तथा पूर्वजन्म के अपने कार्यों के स्पष्ट ब्यौरे दिये। इस अवस्था में वह अरबी भाषा आसानी से लिख और पढ़ सकता था। विख्यात रूसी मनोचिकित्सक ने इसके पूर्व इस बात की संभावना को कदापि मान्यता नहीं दी थी कि सम्मोहन प्रतीप-गमन में प्रकट किये गये तथ्य सत्य तथा सत्यापनीय हो सकते हैं। किन्तु जब स्वयं उसने उस अवस्था में तथ्य बताये तो उसे सम्मोहन तकनीक के वैज्ञानिक स्वरूप पर विश्वास हो गया। यह जानना और भी मनोरंजक हो गया कि सम्मोहन प्रतीप-गमन का प्रयोग स्वयं वर्वरा इवान्वा पर किया गया तथा उसने यह बताया कि अपने एक पूर्व जन्म में वह एक ब्राजीली थी तथा एक अन्य जन्म में जर्मन थी।

इसी प्रकार डॉ. इयान स्टीवेन्सन (Dr. Ian Stevenson) ने सम्मोहन प्रतीप-गमन के अनेक प्रयोग संचालित किये हैं।

अन्वेषण (Investigations) के पश्चात् प्रतिवेदन सत्य पाये गये

यह बात उल्लेखनीय है कि सम्मोहन अवस्था में प्रकट किये गये तथ्यों का

अनेक मामलों में, अन्वेषण तथा सत्यापन किया गया है। मान लीजिये कि एक व्यक्ति ने सम्मोहन प्रतीप-गमन की अवस्था में स्पेन या इटली या यू.एस.ए. में उसके द्वारा बिताये गये पूर्वजन्म के ब्यौरे दिये और ये ब्यौरे पन्द्रहवीं शताब्दी से सम्बन्धित हैं। जब घटनाओं से सम्बन्धित खान-पान, सामाजिक रूढ़ियों, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों, भौगोलिक अवस्थिति आदि के ब्यौरों के बारे में उन व्यक्तियों से उनकी सामान्य अवस्था में पूछताछ की गई तो वे लोग कोई भी जानकारी न दे सके, क्योंकि वे लोग उस देश में कभी नहीं गये थे तथा उन्होंने उन कालों के बारे में कुछ भी नहीं पढ़ा था। ब्यौरे सत्य पाये गये। इसलिये सम्मोहन प्रतीप-गमन की तकनीक को अब वैज्ञानिक दृष्टि से स्थापित माना जाता है, क्योंकि ये प्रकटीकरण सत्यापनीय है।[5]

यदि स्मृति मस्तिष्क की एक अनुघटना है तो मनुष्य गत जीवनों का स्मरण कैसे कर सकता है?

वर्तमान में स्मृति के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। हम 'मस्तिष्क, स्मृति तथा आत्मा' शीर्षक वाले अध्याय में उन पर विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। यहाँ पर यह कहना पर्याप्त है कि अनेक मस्तिष्क-वैज्ञानिकों के मतानुसार दीर्घकालिक स्मृतियाँ मस्तिष्क की तन्त्रिका-संयोजिनियों में कूटबद्ध होती हैं। वे यह कहते हैं कि मस्तिष्क में तन्त्रिका कोशिकाओं की अन्तर्ग्रथनीय संयोजिनियाँ स्मृति भण्डार के रूप में कार्य करती हैं। अन्य वैज्ञानिक स्मृति को मस्तिष्क में आर.एन.ए. (RNA) से जोड़ते हैं। अन्य वैज्ञानिक यह कहते हैं कि हिप्पोकैम्पस (Hippocampus) स्मृति के समेकन (Consolidation) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

---

5. *एक उल्लेखनीय बात यह है कि सम्मोहन की अवस्था में प्रतीप-गमन करवाये गये हजारों व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति ने भी यह नहीं कहा कि अपने पूर्व जन्म में वह कोई पक्षी या पशु था/थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन व्यक्तियों ने, अपरिहार्यत: (invariably), मानव रूप में पुनर्जन्म के ब्यौरे दिये हैं, कायान्तरण (transmigration) नहीं।*

अब सम्मोहन के इन मामलों में स्मृति से सम्बन्धित एक प्रश्न यह है कि "यदि स्मृति मस्तिष्क-द्रव्य का एक कार्य है तो कोई व्यक्ति गत जन्मों के ब्यौरे कैसे दे सकता है?" स्मृति को सामान्यत: गत घटनाओं या अनुभवों का परीक्षण, प्रत्यास्मरण तथा अभिज्ञान कहा जाता है। **यदि ये कार्य मस्तिष्क के हैं तो वर्तमान मस्तिष्क-द्रव्य (grey or white matter of brain) या हिप्पोकैम्पस (Hippocampus) या आर.एन.ए. (RNA) दीर्घ अतीत की अवधियों की घटनाओं तथा अनुभवों का परीरक्षण प्रत्यास्मृत तथा अभिज्ञात कर सकता है? दूसरों शब्दों में वर्तमान मस्तिष्क चिरातीत की घटनाओं को कैसे स्मरण कर लेता है और पहचान लेता है जबकि तब इस जन्म का यह मस्तिष्क था ही नहीं। यह क्षमता दर्शाती है कि प्रत्येक व्यक्ति एक अभौतिक अन्तर्विवेकशील 'स्व' (Conscient Self) है जो कि शरीर के साथ नहीं मरता।** अन्तर्विवेकशील अधिभौतिक 'स्वत्व' (Self) ही अतीत की स्मृतियों को सुषुप्त रूप में प्रतिधारित करता है, भले ही वह अपने प्रत्येक जीवन में मस्तिष्क का उपयोग अभिव्यक्ति के एक उपकरण के रूप में या वर्तमान जीवन की स्मृतियों के परीरक्षण के एक सहायक साधन के रूप में ठीक उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कोई व्यक्ति एक साहयक साधन के रूप में कोई नोट-बुक या कोई डायरी रखता है।

कोई व्यक्ति भौतिक रूप में अविद्यमान (non-existing) व्यक्तियों को कैसे देख सकता है ?

जो लोग यह विश्वास करते हैं कि विचार (thought) तथा स्मृति (memory) मात्र भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं के परिणाम हैं या मस्तिष्क के कार्यों के परिणाम हैं, वे लोग यह स्पष्ट नहीं कर सकते कि कोई व्यक्ति उन व्यक्तियों तथा वस्तुओं को कैसे देख लेता है जिनका अब भौतिक अस्तित्व न रह गया हो। दृष्टि प्रत्यक्षण (visual perception) की मनोवैज्ञानिक व्याख्या यह बात स्पष्ट नहीं करती कि कोई व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था में उन वस्तुओं का प्रत्यक्षण (perception) कैसे पाता जो कि भौतिक आँखों से देखी नहीं जाती।

शरीर-विज्ञान (Physiology) के अनुसार, किसी वस्तु से परावर्तित होने वाली किरणें दृष्टिपटल (Retina) से टकराती हैं। तन्त्रिका कोशिकाओं (Nerve-cells) का कंपन होता है तथा तन्त्रिका का उद्दीपन दृष्टितन्त्रिका (Optic lobe) तक यात्रा करता है और इस प्रकार मनुष्य को दृष्टि प्रत्यक्षण प्राप्त होता है। किन्तु सम्मोहनावस्था में, जिसके कुछ मामलों का उल्लेख इसके पूर्व किया जा चुका है, वस्तु भौतिक रूप में अस्तित्व में नहीं होती और इसलिये उससे प्रकाश के परावर्तित होने और फिर दृष्टि पटल से टकराने का प्रश्न नहीं उठता। सम्मोहनकर्त्ता का सुझाव ही अतीत के प्रत्यक्षण को लाता है या जाग्रत करता है। स्पष्ट है कि यह सुझाव अभौतिक होता है और इसलिये उसे किसी अभौतिक स्वत्व (Non-physical being) — 'आत्मा' को जाग्रत करना चाहिए। सुझाव भी, यद्यपि वह मस्तिष्क के तन्त्र के ज़रिये स्वत्व (Self) को संप्रेषित करता है — व्यक्ति के दृष्टि तन्तुओं इत्यादि (Visual Apparatus) को उद्दीप्त नहीं करता और न ही वह मस्तिष्क के किसी भी ऐसे भाग को उद्दीप्त करके दृश्य उत्पन्न करता है जिसे कि विगत जन्मों की स्मृतियों का भण्डार-गृह समझा गया हो, दृश्य उत्पन्न करता है। इसलिये सम्मोहन प्रतीप-गमन भी अधि-भौतिक 'स्व' या आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

'आत्मा' — न केवल मस्तिष्क से भिन्न है बल्कि 'मस्तिष्क' आत्मा को परिसीमित करता है

वस्तुतः, सम्मोहन स्पष्टतः यह सिद्ध करता है कि शरीर तथा मस्तिष्क चेतना की अभिव्यक्ति (expression) को परिसीमित (limited) कर देते हैं। सम्मोहनावस्था में इंद्रियों और मानसिक क्षमताओं के उत्कर्ष (exaltation) के मामले स्पष्टतः यह प्रकट करते हैं कि मस्तिष्क तथा तन्त्रिका तन्त्र (nervous system) मानसिक जीवन के प्रेरणार्थक स्त्रोत नहीं हैं, बल्कि परिसीमक कारक (delimiting factors) हैं।

मानसिक क्षमताओं के उत्कर्ष के मामलें

दु प्रेल (Du Prel) की पुस्तक 'दि फिलॉसॉफी ऑफ मिस्टीसिज्म' (The

Philosophy of Mysticism)[6] तथा डॉ. हैड्डाक (Dr. Haddock) की पुस्तक 'सोम्नोलिज्म एण्ड साइकिज्म'[7] (Somnolism and Psychism) में मैडम लेगान्द्रे (Madam Lagandre) के मामले का उल्लेख किया है।[8] मैडम लेगान्द्रे ने उनकी माता की मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसकी बीमारी का निदान करने के लिये सम्मोहन की अवस्था या तन्द्रावली (Hypnotic or somnambulic) अवस्था की अतीन्द्रिय दृष्टि (Clairvoyance) का उपयोग किया। मैडम ने उस अवस्था में बताया कि उनकी माता का बायाँ फेफड़ा सिकुड़ गया था तथा हृदय की गुहा (Cavity) में जल था। जब रॉयल एकेडमी ऑफ मेडिसिन, पैरिस के सर्जिकल सेक्शन के सेक्रेटरी डॉ. ब्राउसार्ट एम. मोरियन (Dr. Brousart M. Morean) तथा एक अन्य डॉक्टर चैपलिन (Dr. Chapelin) की उपस्थिति में मैडम की माता के शरीर का शव-परीक्षण किया गया तो ठीक उसी स्थिति का पता चला जिसका वर्णन मैडम लेगान्द्रे ने सम्मोहनावस्था में किया था। प्रश्न यह है कि इंद्रियों तथा मानसिक योग्यताओं का इतना उत्कर्ष कैसे होता है कि वे इसका पता लगा लेती हैं?

जे.बी. राइन (J.B. Rhine) ने अपनी पुस्तक 'दि रीच ऑफ दि माइन्ड'[9] (The Reach of the Mind) में एक इंग्लिश भौतिकीविद् सर विलियम बैरेट (Sir William Barrett) तथा एक स्वीडिश भौतिकीविद् डॉ. अल्फ्रेड बैकमैन (Dr. Alfred Backman) द्वारा किये गये प्रयोगों का उल्लेख किया है। उन दोनों ने यह प्रतिवेदित किया कि उन्होंने अपने व्यक्तियों को सम्मोहित किया था ताकि वे स्वयं को दूरस्थ दृश्यों तक मानसिक रूप में प्रक्षेपित कर सकें और जानकारी ले सकें कि वहाँ क्या हुआ था। सत्यापन अथवा जाँच करने पर वे सही पाये गये। यह जानकारी अन्वेषकों (investigators) को भी अज्ञात थी और इसलिये उसका

---

6. *Du Prel : "Philosophy of Mysticism", English Translation by C.C. Massey, London, 1889.*
7. *Haddock : "Somnolism and Psychism", London, 1851.*
8. *Annie Besant, 'Psychology', Supra, p.212-213*
9. *J.B. Rhine : "The Reach of the Mind" William Sloane Associates, Inc. 1947, New York.*

श्रेय परेन्द्रिय ज्ञान (Telepathy) को नहीं दिया जा सकता।

स्पष्ट है कि इन सभी मामलों में सम्मोहित व्यक्ति के पास बेहतर मानसिक योग्यतायें तथा प्रत्यक्षण शक्तियाँ नहीं थीं और यह कहा जा सकता है कि जो कुछ जानकारी उन्होंने प्रकट की, वह सामान्य या साधारण अवस्था में प्रकट नहीं की जा सकती है, जब तक कोई व्यक्ति अपने तन्त्रिका तन्त्र तथा मस्तिष्क तन्त्र का उपयोग करता है।

दृष्टि के अवरुद्ध (blocking) हो जाने के मामले

सम्मोहनावस्था में एक विचित्र प्रकार की घटना घटित हो सकती है जिसे विस्मृति या 'दृष्टि अवरुद्ध होना' (blocking of vision) कहा जा सकता है। बिनेट (Binet) तथा फेरे (Fere) ने अपनी पुस्तक 'ला मैगनीटिज्मे एनिमल' (La Magnitisme Animal) (अर्थात् पशु चुम्बकत्व) में इस प्रकार के अनेक मामले दिये हैं। एनी बेसेन्ट (Annie Besant) ने अपनी पुस्तक 'साइकॉलॉजी' (Psychology) [10] में इनमें से कुछ मामलों का उल्लेख किया है। इनमें से एक मामला एक सम्मोहित महिला से सम्बन्धित है — जिसे उसकी सम्मोहनावस्था में यह बताया गया था कि वह श्री 'ए' को नहीं देख सकेगी। जब उस महिला को उसकी सामान्य अवस्था में वापस लाया गया तो उससे कहा गया, ठीक है अब आप जा सकती हैं और विश्राम कर सकती हैं। वह महिला उस दरवाजे की ओर बढ़ी जिससे होकर उसे दूसरे कमरे में विश्राम करने के लिये जाना था। यद्यपि श्री 'ए' इस द्वार मार्ग के बीच में खड़े थे तथापि वह महिला उन्हें न देख सकी तथा उनसे टकरा गई। फिर भी उस महिला ने श्री 'ए' पर ध्यान नहीं दिया। उस महिला ने जब उस दरवाजे से जाने की दो बार कोशिश की तब भी वह श्री 'ए' को देख नहीं पा रही थी। अब वह यह भी नहीं देख सकी कि दरवाजा किस कारण से अवरुद्ध हुआ था। तथापि उसने फिर से उस दरवाजे से होकर जाने से इन्कार कर दिया।

---

10. Annie Besant : "Psychology", 2nd Edition, 1919, Theosophical Publishing House, Los Angeles, California, p.210-211.

इस अवस्था में श्री 'ए' के सिर पर एक हैट रख दी गई। वह महिला उस व्यक्ति को न देख सकी। उसे बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि उसने यह सोचा कि हैट हवा में टंगी हुई थी। अब उस व्यक्ति 'ए' ने अपनी हैट उतार ली और उस महिला को अनेक बार नमस्कार किया। महिला का आश्चर्य बढ़ गया क्योंकि उसने यह देखा कि हैट हवा में इधर-उधर घूम रही थी। अब श्री 'ए' ने एक अलार्म घड़ी पहन लिया। अब महिला ने उस घड़ी को हिलते हुए और ऐसा रूप लेते देखा जैसे कोई व्यक्ति उसे पहन रहा हो। वह चिल्लाई : "हाँ, वह एक खोखली कठपुतली (hallow puppet) जैसा है।" अब भी वह श्री 'ए' के चेहरे आदि को न देख सकी।

अब दृष्टि के इस अवरोधन को शरीर-विज्ञान तथा शरीर-विज्ञान पर आधारित मनोविज्ञान के सन्दर्भ में समझाया नहीं जा सकता। प्रकाश की किरणें श्री 'ए' से परावर्तित होकर महिला की ओर जा रही थीं, महिला की दृष्टि तन्त्रिका (Optic nerve) तथा उसका अक्षिखण्ड (Optic lobe) ठीक-ठाक थे तथा उद्दीपन (stimulus) भी था, किन्तु इन सभी बातों के बावजूद वह महिला श्री 'ए' को देख नहीं सकी, जबकि सम्मोहन प्रतीप-गमन की अवस्था में वस्तुयें भी नहीं थीं और दृश्य भी नहीं थे, फिर भी सम्मोहित व्यक्ति के पास दृष्टि 'ए' प्रत्यक्षण की शक्ति थी तथा ऊपर उल्लिखित मामले में व्यक्ति 'ए' वहाँ है और फिर भी वह महिला उसका दृष्टि-प्रत्यक्षण नहीं कर पाती। ये दोनों प्रकार के मामले यह दर्शाते हैं कि मन या अन्तर्विवेकशील स्वत्व मस्तिष्क से भिन्न सत्ता है, यद्यपि मस्तिष्क उसका निवास स्थान हो सकता है। यदि अन्तर्विवेकशील स्वत्व मस्तिष्क से भिन्न न हो तो वह तब क्यों नहीं देख सकता जब वह एक अंधा व्यक्ति नहीं होता? स्पष्ट है कि प्रावरोध (Inhibition) भौतिक तन्त्रिकाओं का नहीं है, बल्कि अभौतिक मन का है। भले ही मस्तिष्क के निश्चित भागों का या दृष्टि-तन्त्र का प्रावरोध हो तो भी वस्तुत: अभौतिक मन ने ही सुझाव को ग्रहण किया तथा वही प्रावरोध तन्त्र (Inhibitory mechanism) का उपयोग कर रहा है जिसके कारण वह व्यक्ति 'ए' को नहीं देख सकता। सम्मोहनकर्त्ता ने 'अन्तर्विवेकशील व्यक्ति' को सुझाव

देकर उसे प्रभावित किया है तथा उसे प्रेरित किया है कि वह अपने दृष्टि तन्त्र के बजाय प्रत्यक्षण शक्ति को नियन्त्रित करे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसने भौतिक प्रक्रियाओं या उपकरणों के बजाय प्रत्यक्षण शक्ति को अवरोधित कर दिया है।

वैज्ञानिक अन्वेषण भी 'आत्मा' के अस्तित्व को सिद्ध करता है

सम्मोहनावस्था में मानसिक योग्यताओं का उत्कर्ष दर्शाने वाले सम्मोहित व्यक्ति की भौतिक अवस्था के वैज्ञानिक अन्वेषण से इस तथ्य की परिपुष्टि होती है कि 'अन्तर्विवेकशील स्वत्व' अभौतिक है तथा मस्तिष्क से भिन्न है।

यह देखा जा सकता है कि सम्मोहित व्यक्ति के हृदय की धड़कन बहुत धीमी होती है तथा फेफड़ों की गति कम हो जाती है। ऐसे व्यक्ति के मस्तिष्क की दशा की तुलना निश्चेतना (Coma) की अवस्था से की जा सकती है, क्योंकि मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रवाह कम होता है। इसलिये चिकित्सा विज्ञानीय शब्दों में मस्तिष्क को उत्तेजना के प्रतिवर्तक (Refractory) होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहने पर मस्तिष्क अब बहुत कुछ अक्रिय हो जाता है। इसलिये यदि मस्तिष्क विचार को उत्पन्न करता है और उसके पास स्मृति होती है तो अब मस्तिष्क निश्चेतना या अक्रियता जैसी अवस्था में होने के कारण कोई भी विचार नहीं होना चाहिए तथा विचार की अभिव्यक्ति नहीं होनी चाहिए। यह कैसे होता है कि प्रमस्तिष्कीय सुप्ति (Cerebral torpor) या अक्रियता की इस अवस्था में व्यक्ति संवेदी रूप में अधिक सक्रिय हो जाता है तथा उसकी चेतना उसकी योग्यताओं का उपयोग बेहतर ढंग से करती है। स्पष्टत: इससे यह प्रकट होता है कि 'विचार' मस्तिष्क की एक अनुघटना नहीं है और यह कि मन उसके बिना बेहतर ढंग से कार्य कर सकता है इसलिये यह कि मन मस्तिष्क से भिन्न है तथा अभौतिक है।

लकवा के मामले भी यह दर्शाते हैं कि 'आत्मा' पृथक् है

सम्मोहनावस्था में मानसिक योग्यताओं के उत्कर्ष के मामले से, बल्कि उन

मनोवैज्ञानिक मामलों से भी, जो कि संवेदन का लकवा (Paralysis) दर्शाते हैं, जैसा कि डब्ल्यु.बी. पिल्सबरी[11] (W.B. Pillsburry) द्वारा उल्लिखित ऑस्ट्रेलियन सैनिक का मामला यह प्रकट करता है कि आत्मा मस्तिष्क से भिन्न है। उक्त आस्ट्रेलियन सैनिक गैल्लिपोलो (Gallipolo) जब एक दीवार की दरार से गोली चला रहा था तब अनेक गोलियाँ उसके सिर के पास उसके चेहरे के दाहिने पार्श्व में आ लगीं। उसका परीक्षण करने पर यह पाया गया कि उसके ऊतक (Tissues) पूरी तरह से सामान्य थे। इसलिये प्रश्न यह था कि "जब दृष्टिक प्रत्यक्षण (visula perception) का काया-तन्त्र (Body-mechanism) क्रियाशील है तो व्यक्ति देख क्यों नहीं सकता?" जब शरीर के दृष्टिक अंग लकवा ग्रस्त नहीं है तो दिखाई क्यों नहीं दे रहा है? स्वाभाविक उत्तर यह कि मन इतना लकवाग्रस्त हो गया है कि उसने प्रत्यक्षण को प्रावरोधित (inhibited) कर दिया है। इससे स्पष्टत: यह प्रकट होता है कि मन (या आत्मा) और मस्तिष्क दो भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं तथा यह कि मन अभौतिक है।

ऊपर हमने सम्मोहन प्रतीप-गमन तथा सम्मोहनावस्था के मामलों पर चर्चा की है जिसमें किसी व्यक्ति की मानसिक योग्यतायें कई गुना बढ़ जाती हैं। हमने मनोवैज्ञानिक प्रावरोध के मामले का भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त, किसी माध्यम के ज़रिये बोलने वाली या कार्य करने वाली या शरीरधारी प्राणियों में भूत या प्रेत के रूप में प्रकट होने वाली आत्माओं के मामले यह दर्शाते हैं कि शरीर में एक अधि-भौतिक स्वत्व होता है जो कि भौतिक मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है।

किसी अशरीरी मनुष्य के साथ संप्रेषण (communicate) करने के लिये किसी माध्यम का उपयोग

दीर्घकाल से यह विश्वास चला आ रहा है कि किसी मृत व्यक्ति की प्रेत समाधि-अवस्था (Trance) में किसी शरीरधारी व्यक्ति के ओंठों से तब बोल

11. W.B. Pillsbury : "The Essentials of Psychology", Macmillan Co., New York, 1930.

सकता है जब उसके प्रियजन उसके कुशल-मंगल की जानकारी पाने के लिये या उससे कोई महत्वपूर्ण जानकारी पाने के लिये उसे किसी माध्यम के शरीर में आने के लिये बुलाते हैं। कभी-कभी वह अशरीरी प्रेत हो सकता है जिसने शरीर को अचानक छोड़ दिया था और उसे अपने सम्बन्धियों के साथ बोलने का अवसर नहीं मिला था, और इसलिये वह अब अपने किन्हीं प्रिय जनों के साथ संप्रेषण करना चाहता हो। भारत में अतीत काल में किसी ब्राह्मण के माध्यम से किसी अशरीरी प्रेत के साथ संप्रेषण करने की परम्परा थी, क्योंकि दूरस्थ अतीत में ब्राह्मणों से यह प्रत्याशा की जाती थी कि वे पवित्र और आध्यात्मिक जीवन बितायें तथा द्वेष, हिंसा तथा अन्य दुर्गुणों से दूर रहें, और इस कारण उनमें से कुछ लोगों में माध्यम बनने की शक्ति होती थी। आधी शताब्दी या एक शताब्दी पूर्व भी कुछ लोग अशरीरी प्रेत को किसी तिपाही (Tripod) पर बुलाया करते थे या उससे किसी प्लेन्चेट (Planchette) आदि का उपयोग करने के लिये कहा करते थे।

इस सिलसिले में इस बात का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि जब कोई व्यक्ति किसी माध्यम के रूप में कार्य करता है तो प्रेतात्मा माध्यम के मस्तिष्क, उसके तंत्रिका तंत्र तथा उसकी पेशिया का नियंत्रण करती हैं तथा माध्यम के शरीर का उपयोग एक उपकरण की तरह करती है तथापि कुछ 'माध्यम' इस बारे में अचेतन होते हैं। एडगर केसी (Edgar Cayce) एक माध्यम के विख्यात उदाहरण हैं। रामकृष्ण मिशन के स्वामी अभेदानंद ने अपनी पुस्तक में ऐसे कुछ मामलों पर चर्चा की है।[12]

यहाँ अलेक्जाद्रिना सामोना (Alexandrina Samona) नामक पाँच वर्षीय एक बालिका के मामले का उल्लेख करना उचित होगा। यह बालिका पालेर्मो, सिसिली के डॉ. तथा श्रीमति कार्मेलो सामोना की पुत्री थी। पालेर्मो, सिसिली में इस बालिका की तानिका शोथ (Meningitis) से 15 मार्च 1960 को मृत्यु हो

12. *Swami Abhedanand : "Life beyond Death", Ramakrishna Vedanta Math, Calcutta, 1971.*

गई। उसकी मृत्यु से उसके माता-पिता को अत्यन्त दु:ख हुआ। बालिका की मृत्यु के तीन दिन बाद उसकी माता ने स्वप्न में यह देखा कि अलेक्जान्द्रिना आई है और उसे यह आश्वासन दे रही है कि वह उसी परिवार में पुनर्जन्म लेगी। माता ने यह सुना मानो कि पुत्री कह रही हो, ''माता, दु:खी न हो, क्योंकि मैं फिर से आऊंगी।'' इस स्वप्न के तीन दिन बाद संप्रेषकों के एक माध्यम द्वारा वही स्वप्न दोबारा दिखाई दिया। उन्होंने घोषित किया कि जुड़वाँ शिशु पैदा होंगे। लगभग एक वर्ष में श्रीमती कार्मेलो सामोना ने जुड़वाँ लड़कियों को जन्म दिया। इनमें से एक लड़की का नाम अलेक्जान्द्रिना-द्वितीय रखा गया जो कि अलेक्जान्द्रिना-प्रथम के सदृश थी। इन दोनों बालिकाओं की समानताओं की एक लंबी सूची दी गई है, जिससे यह धारणा बनती है कि उन दो बालिकाओं की शारीरिक तथा मानसिक विशेषतायें समरूप थीं, उनमें से कुछ विशेषतायें नीचे दर्शाई गई हैं—

1. दोनों बालिकायें खिलौने तथा गुड़ियों के प्रति उदासीन थीं।
2. दोनों बालिकायें पनीर से इतना चिढ़ती थीं कि वे पनीर को छूती भी नहीं थीं।
3. दोनों बालिकायें सहज हंसी-मजाक के लिये लोगों का नाम बिगाड़ने में आनन्द लेती थीं।
4. दोनों बालिकायें हाथों और पैरों की स्वच्छता पर बहुत ध्यान देती थीं।
5. दोनों बालिकायें शयन-कक्ष की दराजों से वस्तुयें निकालकर उनसे खेला करती थीं।
6. दोनों बालिकायें बायें हाथ का प्रयोग करती थीं।
7. दोनों बालिकाओं के चेहरों में समानता थी।
8. दोनों बालिकाओं की बाईं आँख में हाइपरमिया (Hyperamia) था।
9. दोनों बालिकाओं के रूप में तथा आकार में समानता थी।
10. दोनों बालिकाओं के दाहिने कान में किंचित् सेबरोहिया (Seborrhoea) था।

इस मामले में आगे यह उल्लेख किया गया है कि जब अलेक्जान्द्रिना-द्वितीय आठ वर्ष की हुई तो उसके माता-पिता ने उसे यह सुझाया कि वह उनके साथ मोनरियले (Monreale) जाये। इस पर बालिका ने कहा कि उसने वह स्थान पहले देखा है, किन्तु वस्तुत: उसके माता-पिता उसे इस स्थान में अलेक्जान्द्रिना-द्वितीय के रूप में उसके इस वर्तमान जीवन में पहली बार ले गये थे। इस बात का विश्वास दिलाने के लिये कि उसने वह स्थान पहले देखा था, उसने एक बड़े चर्च का उल्लेख किया जहाँ एक विशाल मूर्ति स्थापित थी जिसके हाथ फैले हुए थे। उस बालिका ने कुछ अन्य दृश्यों का भी उल्लेख किया तथापि जिन्हें अलेक्जान्द्रिना प्रथम ने देखा था।[13]

स्पष्टत: ऐसे सत्यापित मामले भौतिक मृत्यु के पश्चात् उत्तरजीवित रहने वाले अभौतिक 'स्व' का संकेत देते हैं।

मृतक की प्रेत-छाया

मृतक की प्रेत-छायाओं (Apparitions of the dead) का भी उल्लेख किया जा सकता है। लगभग सभी देशों में स्मरणातीत कहानियाँ प्रचलित हैं। बहुत पुराने समय से लोगों का यह विश्वास रहा है कि जिन लोगों की किन्हीं दुर्घटनाओं या किन्हीं अकस्मात् या अप्रत्याशित कारणों से अकाले मृत्यु हो जाती है वे लोग विभिन्न अवधियों तक सूक्ष्म रूप में वातावरण (Atmosphere) में विचरण करते रहते हैं। पुस्तकों[14] में तथा प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी समय-समय पर ऐसी अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। लेखक के स्वयं के एक मित्र ने भी प्रेत-छायाओं के तथ्य की पुष्टि की है। वह एक ऐसी महिला को जानता है जिसका पति रात के समय सूक्ष्म रूप में उसके पास आया करता था और उसे परेशान किया करता था। आर्थर हिल (Arthur Hill) ने 'अकाउन्ट्स फ्रॉम फिजिकल

13. *G. Delance, Documents pour Servir a L. Etade de la Reincarnate a Evitions de la B.P.S., Paris, 1924.*
14. *(i) James H.Hyslop, Science and future life. (ii) F.W.H. Myers, Human Personality and its survival after bodily death.*

रिसर्च' (Accounts from Physical Research) में उस घटना का उल्लेख किया है जो कि ड्रीस्सेन (Driessen) ने प्रतिवेदित की थी। ड्रीस्सेन ने एक रात मोमबत्ती बुझाने के बाद दूसरे कमरे में किसी के कदमों की आहट सुनी। उसके मन में शंका पैदा हुई। जाँच करने के लिये उसने एक दियासलाई जलाई और उसे अपने ससुर को जिसकी मृत्यु नौ दिन पहले हो चुकी थी, अपने कमरे में प्रेतछाया के रूप में देखकर आश्चर्य हुआ, उसे इस प्रेत छाया से घृणा हो आई क्योंकि अपने ससुर के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। तथापि उसने साहसपूर्वक पूछा — "तुम यहाँ क्यों आये हो ? तुम किसे चाहते हो ?" इस पर प्रेत-छाया ने उत्तर दिया— "कभी-कभी मैंने तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार किया, कृपया मुझे माफ कर दो। मुझे अपने बुरे कार्यों को सोचकर दु:ख होता है और यदि तुम मुझे माफ कर दोगी तो मुझे खुशी होगी।" फिर प्रेत-छाया ने ऊपर की ओर इशारा किया। संभवत: वह प्रेत-छाया यह कहना चाहती थी कि ड्रिस्सेन उसे ईश्वर के नाम पर माफ कर दे। इस पर ड्रिस्सेन ने उत्तर दिया — "ईश्वर साक्षी है कि मेरे मन में तुम्हारे विरुद्ध कुछ भी नहीं था।" उसके बाद प्रेत-छाया (Phantom) ने सिर झुकाया और वह गायब हो गई।

मृतक की प्रेत-छाया के ऐसे मामलों के अतिरिक्त प्रेत-छायाओं के प्रकट होने के सैकड़ों मामले हैं। 'फुटबाल्स, ऑन दि बाउन्ड्री ऑफ एनादर वर्ल्ड' (Footballs, On the boundary of another world) में एक इंग्लिश सैनिक अधिकारी का एक मनोरंजक मामला उल्लिखित है। इस सैनिक अधिकारी को एक कनेडियन लड़की से प्रेम हो गया था, जिसे उसने अपने प्रेम जाल में फंसा लिया तथा बाद में उसे छोड़ दिया। जब उस महिला ने यह देखा कि वह अधिकारी देश से गायब हो गया तो उस निष्ठावान महिला का दिल टूट गया। वह इतनी हताश हो गई कि अन्तत: उसकी मृत्यु हो गई। महिला की मृत्यु के पश्चात् जहाँ-तहाँ वह अधिकारी गया वहाँ-वहाँ इस महिला की प्रेतात्मा उसे परेशान करती रही। जिस कमरे में वह अधिकारी सोया करता था उस कमरे की खिड़कियों और दरवाजों को वह प्रेतात्मा खटखटाया करती थी और उसने ऐसे अनेक कार्य किये जिससे उस व्यक्ति का जीवन दु:खमय हो गया।

लेखक एक ऐसी भारतीय महिला के मामले को भी जानता है जिसका पति अपनी मृत्यु के पश्चात् रातों के दौरान आया करता था। समय-समय पर पत्रिकाओं में प्रेत-छायाओं के प्रकट होने के अनेक मामले प्रकाशित होते हैं। ये मामले एक अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि शरीर के भीतर एक 'आत्मा' होती है, जो कि शरीर के मर जाने के बाद भी वह नहीं मरती।

इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्तियों के शरीर-बाह्य अनुभवों के मामले भी हैं जिनकी लाक्षणिक मृत्यु घोषित कर दी गई थी, किन्तु वे एक बार फिर से सामान्य जीवन में लौट आये। शिशुओं ने अपने नये जन्म में गत जन्म के अनुभवों का भी वर्णन किया है। हमने इन पर एक पृथक अध्याय में चर्चा की है। तथापि, यहाँ हम डॉ. रेमन्ड ए.मूडी, जूनियर (Dr. Raymond A. Moody, Jr.) द्वारा अन्वेषित तथा अपनी पुस्तक 'लाइफ ऑफ्टर लाइफ' (Life after life) में अभिलिखित सैकड़ों मामलों में पाई जाने वाली एक सामान्य विशेषता का उल्लेख करना चाहेंगे। ये मामले उन व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं जो कि मृत्यु की कगार पर थे और जिनकी लाक्षणिक मृत्यु घोषित कर दी गई थी, किन्तु वे पुन: जीवित हो गये।

डॉ. मूडी ने यह अभिलिखित किया है कि दिवंगत आत्मा एक ऐसे प्रेमपूर्ण, स्नेहपूर्ण शक्ति को देखती है जैसा उसने पहले कभी नहीं देखा था। एक प्रकाश का स्वत्व उसके सामने प्रकट होता है। इस स्वत्व की उपस्थिति में दिवंगत व्यक्ति अपने अच्छे तथा बुरे कर्मों तथा विचारों के प्रकाश में अपने जीवन का मूल्यांकन करना चाहता है। उसके बाद मृत व्यक्ति को उसके जीवन की प्रधान घटनायें फिर से दिखाई देती हैं। कुछ सेकेण्डों तक वह घटनाओं के इस अनुक्रम में तल्लीन हो जाता है, जो कि स्वयं को उसके सामने एक कौंध में प्रक्षेपित करती है, और अकस्मात् वह "किसी तरह से उसके भौतिक शरीर के साथ पुन: एकीकृत हो जाता है और वह जीवित हो जाता है और यह बताता है कि उसने प्रकाश के इस स्वत्व को देखा।" डॉ. मूडी कहते हैं कि "यह अनुभव उसके जीवन को, विशेषत: मृत्यु तथा जीवन से उसके सम्बन्ध विषयक विचारों को,

गहनतापूर्वक प्रभावित करता है।''[15]

हम इस ग्रंथ के द्वितीय भाग (Second volume) में इस प्रकाश स्वत्व (Being of Light) के साथ के साक्षात्कार पर अधिक विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। किन्तु हम यह कहना चाहेंगे कि अनेक लोगों द्वारा वर्णित इन जैसे अनुभव मरणोत्तर जीवन तथा परमात्मा के अस्तित्व के साक्ष्य हैं और वे ऐसी आत्मा के अस्तित्व के भी साक्ष्य हैं जो कि कभी-कभी शरीर को त्याग देने के पश्चात् वापस लौट आती हैं तथा इस प्रकार 'अभौतिक स्वत्व' कहलाती है। यह अभौतिक स्वत्व या आत्मा ही विचार करती है तथा उसी के पास ही 'स्मृति' होती है।

हम यहाँ भी लिखना चाहेंगे कि हमने स्वयं अशरीरी आत्मा को किसी शरीरधारी माध्यम के जरिये अभिव्यक्त होते देखा है। इन सभी तथ्यों में से अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लेखक को 'अशरीरी परमात्मा' को एक मानव माध्यम 'प्रजापिता ब्रह्मा' के ज़रिये अभिव्यक्त होते देखने का अनुभव प्राप्त है। अनेक लोग इस तथ्य के साक्षी हैं। वस्तुतः परमात्मा के अस्तित्व में हमारा जो विश्वास है वह अन्य कारणों के अतिरिक्त इस बहुत महत्वपूर्ण तथ्य पर आधारित है।

अब हम अगले अध्याय में 'विचार तथा मन' के स्वरूप पर चर्चा करेंगे ताकि 'स्व', आत्मा या मन के बारे में अधिक स्पष्टतः समझ सकें।

15. Raymond A. Moody, Jr., 'Life After Life', Bantam Books, New York, 1977.

मन और पदार्थ

मन क्या है तथा विचार कहाँ से आते हैं ?

"तुम पदार्थ से निर्मित एक शरीर नहीं हो और न ही तुम्हारे विचार तुम्हारे मस्तिष्क के विद्युत आवेग हैं। तुम एक अधि-भौतिक सत्ता हो, जिसे 'आत्मा' कहा जाता है, जिसके विचारों तथा कर्मों का एक नैतिक आयाम होता है।"

—शिव भगवानुवाच

एक समय ऐसा था जब पदार्थ तथा ऊर्जा को पृथक् वस्तुयें माना जाता था। किन्तु विज्ञान में हुए पश्चातवर्ती अनुसन्धानों से प्रकट हुआ है कि एटम, जिसे पदार्थ का लघुतम तथा अविभाजनीय कण माना जाता था, इलेक्ट्रॉनों, प्रोटॉनों आदि से मिलकर बनता है, जो कि ऊर्जा के अत्यन्त छोटे-छोटे स्फुलिंग होते हैं। ये निष्कर्ष विज्ञान-क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि थे, तथा अन्य खोजों के साथ उन्हें मिलाने पर अनेक वैज्ञानिक अविष्कारों का जन्म हुआ।

इलेक्ट्रॉनिक के सिद्धान्त तथा व्यवहार में तथा ऊर्जा के विभिन्न रूपों अर्थात् प्रकाश, ध्वनि, विद्युत एवं चुम्बकत्व के क्षेत्र में हुए अनुसन्धान के परिणाम-स्वरूप मनुष्य की बुद्धि उन क्षेत्रों में, जो कि पूर्वतः मनुष्य के विचार के लिये अज्ञात तथा अनसुने थे, अगले बड़े कदम उठा सकी। इसके परिणामस्वरूप अवकाश-यान (Space-ship), टेलीविजन, कम्प्यूटर जैसे अत्यन्त उच्च कोटि के वैज्ञानिक साधनों तथा अविष्कारों का तथा लाखों अन्य वस्तुओं का जन्म हुआ।

एक हानिकारक प्रवृत्ति

यद्यपि इन सभी अनुसन्धानों ने मनुष्य के विचार के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया, उसके दृष्टि-क्षेत्र को बढ़ा दिया, अन्धविश्वास को मिटा दिया, तथापि उनसे मनुष्य के चिन्तन में एक हानिकर प्रवृत्ति ने जन्म लिया। मनुष्य कुछ

अधिक अहंकारी हो गया और भौतिक वस्तुओं के पीछे भागने लगा तथा मशीनों, कम्प्यूटरों तथा इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की इस पगली दौड़ में वह अपनी वास्तविक पहचान को भी इतना भुला बैठा कि वह स्वयं को भी एक 'रोबोट' (Robot) अथवा 'वोबेट' (Wobat) समझने लगा।

स्थिति अब इस अवस्था में जा पहुँची है कि अनेक लोग आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते, वे केवल पदार्थ या ऊर्जा के विभिन्न रूपों में विश्वास करते हैं। वे यह सोचते हैं कि मनुष्य मस्तिष्क के सिवाय कुछ भी नहीं है, जो कि शरीर के तन्त्रिका-तन्त्र के ज़रिये कार्य करता है। वे यह कहते हैं कि मस्तिष्क की तुलना एक कम्प्यूटर से की जा सकती है और वह विद्युत आवेगों द्वारा क्रियाशील होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य पदार्थ का जटिल रूप है या दोनों के मिश्रण से निर्मित जटिल रूप है। उस मामले में ऐसा कुछ भी नहीं रह जाता जिसके लिये नैतिक नियमों, राजनैतिक संविधानों, सामाजिक मानदण्डों या आर्थिक अनुशासन की कोई भी आवश्यकता हो। ऐसी स्थिति में जीवन लक्ष्यों, मनुष्य के या किसी राष्ट्र के उद्देश्यों का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता। यह वैसा है जैसे मनुष्य अपने 'स्व' पर विश्वास न करे या अपने स्वयं के विचार स्त्रोत पर विश्वास न करे या मनुष्य अपनी आध्यात्मिक आत्महत्या करे।

क्या 'विचार' — पदार्थक ऊर्जा (Material Energy) का एक रूप है ?

नि:सन्देह, विज्ञान ने मनुष्य को चन्द्रमा पर उतार दिया है, तथापि वैज्ञानिकों द्वारा युक्तियुक्त रूप से इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना शेष है कि 'मन' क्या है? यदि मन विचार को दिया गया नाम है तो हम यह पूछना चाहेंगे कि "विचार क्या है? क्या विचार एक प्रकार की ऊर्जा है?" यदि कहा जाय कि मस्तिष्क का तन्त्र विद्युत आवेगों को विचारों में रूपान्तरित कर देता है तो यह स्पष्ट करना होगा कि संवेग तथा भावनायें क्या हैं? हम सभी लोग यह जानते हैं कि संवेदी तन्त्रिकायें (Sensory nerves) केवल सन्देशों को मस्तिष्क के एक धूसर (grey) या श्वेत पदार्थ तक ले जाती हैं और उसमें परिवर्तनों को अभिलिखित (perceive) करती

हैं, किन्तु वस्तुत: वह कौन है जो कि उन संदेशों को प्राप्त करता है तथा उन परिवर्तनों का प्रत्यक्षण करता है ? नि:सन्देह, मस्तिष्क प्रत्यक्षण, नियन्त्रण, आदेश तथा प्रत्यास्मरण (recollection) का मुख्य उपकरण है, तथापि वस्तुत: वह कौन है जो कि इस तन्त्र के ज़रिये कार्य करता है ? इसके अतिरिक्त हम पूर्वसंज्ञान (precognition), पूर्वाभास (premonition), ई.एस.पी. (ESP) आदि जैसे परामानसिक अनुभवों (Parapsychic experiences) की व्याख्या कैसे करेंगे? वस्तुत: वह कौन है जो कि गत जन्म की घटनाओं का वर्णन करता है या भविष्य कथन करता है?

विचार किस सामग्री से बनता है ? क्या विचार वस्तुत: पदार्थिक ऊर्जा का एक रूप है ? यदि यह सत्य होता है तो सभी ऊर्जा की भाँति विचारों का द्रव्यमान होता तथा वह प्रसारित होता। इसके अतिरिक्त यदि विचार प्रसारित होता है तो निश्चय ही उसके पास प्रसारण का कुछ वेग होता है। क्या कोई यह कह सकता है कि विचार का वेग कितना है? क्या कोई व्यक्ति विचार का द्रव्यमान या भार बता सकता है?

क्या विचार के पास कालमान का कोई परिमाण (dimension) या आयाम होता है?

विज्ञान सम्बन्धी आज तक के सिद्धान्त, प्रकाश की गति को विश्व की अन्तिम उच्चतम गति मानते हैं। वे यह कहते हैं कि प्रकाश सूर्य से पृथ्वी तक की यात्रा लगभग 8 मिनट में पूरी कर लेता है। सूर्य सम्बन्धी नवीनतम निष्कर्षों को ध्यानपूर्वक सुनने के पश्चात् हम आराम से बैठकर इन तथ्यों का पुनरावर्तन करने की कोशिश कर सकते हैं। निश्चय ही सूर्य के विषय में सोचने में एक मिनट से भी कम समय लगता है। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि विचार कुछ सेकण्डों में ही सूर्य तक पहुँच जाता है? यदि हम विचार को पदार्थिक ऊर्जा का एक रूप समझें तो हम इसकी व्याख्या कैसे कर सकते हैं?

इसके अतिरिक्त, सभी लोग इस बात पर सहमत होंगे कि विचार अमूर्त्त (abstract) तथा आयामविहीन (dimensionless) होता है, क्योंकि हम सूर्य और

दूरस्थ आकाश-गंगाओं तथा उनके परे स्थित क्षेत्रों के बारे में लगभग उतने ही समय के भीतर कल्पना कर सकते हैं। 'विचार' की व्याख्या या संगणना वैज्ञानिक सन्दर्भों में नहीं की जा सकती, क्योंकि वह अतीत और भविष्य में उड़ सकता है, जिनके आयामों का वेग के संप्रत्यय (concept of velocity) में आवृत्त (covered) नहीं किया जा सकता। हम केवल अनुमान लगा सकते हैं और यह कह सकते हैं कि विचार का वेग प्रति आवेग खरबों वर्षों का है। किन्तु वस्तुत: हमें यह स्वीकार करना होगा कि मनोविज्ञान द्वारा हमें मन के सम्बन्ध में जो ज्ञान दिया है उसके बावजूद हम स्पष्टत: यह नहीं जान सकते कि विचार या मन क्या है? किन्तु हम केवल इतना कह सकते हैं कि ईश्वर ने स्वयं अपने पास इतना अधिक ज्ञान न रख लिया होता तो अच्छा होता। किन्तु यदि ईश्वर ने कतिपय वस्तुयें स्वयं के पास न रख ली होती तो मनुष्य बहुत अधिक अहंकारी हो गया होता।

रहस्य का विस्फोट

अब हम यह जान लें कि ईश्वर समस्त ज्ञान स्वयं के पास नहीं रखता। विश्व के इतिहास में किसी बिन्दु पर ईश्वर मनुष्य को अपने ज्ञान में हिस्सेदार बनाता है तथा मनुष्य को यह जानकर प्रसन्न होना चाहिए कि ईश्वर इस अलौकिक ज्ञान को प्रकट कर चुका है तथा 'मन' के विषय पर रहस्य का विस्फोट कर चुका है। ईश्वर ने यह समझाया है कि 'मन' पदार्थ नहीं और 'पदार्थ' मन नहीं है। विचार द्रव्यात्मक ऊर्जा का एक रूप नहीं है। वह सचेतन तथा अति-भौतिक तथा अलौकिक सत्ता है, जिसे 'आत्मा' कहा जाता है। आत्मा का कोई द्रव्यमान नहीं होता और न कोई भार होता है। 'विचार' या 'मन' के पास वेग नहीं होता जिसे वैज्ञानिक सन्दर्भों में मापा जा सके। 'विचार' मापनीय वस्तु नहीं है, बल्कि सभी प्रकारों के मापों का आधार है। आत्मा का, जिससे विचार उद्भूत होते हैं, कोई भी काल आयाम नहीं होता, वह शाश्वत (eternal) है। अत: विचार समय के सभी अवरोधों को पार कर सकता है और दूरस्थ भूतकाल की घटनाओं तक जा सकता है तथा दूरस्थ भविष्य के क्षेत्रों तक पहुँच सकता है। मन — आत्मा की चेतना का केवल एक दूसरा नाम है। वह आत्मा की शक्ति है, जो कि

संकल्प, इच्छा, अवधान, संज्ञान आदि के रूप में अभिव्यक्ति होती है। विचार— एक 'अन्तर्विवेकशील' या एक 'आध्यात्मिक ऊर्जा' (Spiritual Energy) है और उसका भी एक नैतिक आयाम होता है और वह प्रत्यक्षण करता है तथा भावनाओं तथा संवेगों की अभिव्यक्ति करता है।

'विचार' किस प्रकार की ऊर्जा है ?

यदि विचार द्रव्यात्मक ऊर्जा (material energy) का एक रूप होता तो वह संवेदन (sensations) उत्पन्न कर सकता, किन्तु संवेदनों का अनुभव न करता। ध्वनि बुद्धिगम्य (intelligible) तथा अर्थपूर्ण शब्दों या स्वरानुक्रमों (melodies) का रूप लेती है, किन्तु ध्वनि स्वयं शब्द को समझ नहीं सकती या गीतों की प्रशंसा नहीं कर सकती। प्रकाश द्वारा हम किसी का चेहरा देख सकते हैं और ध्वनि द्वारा किसी और व्यक्ति को शब्द सुनाई दे सकते हैं लेकिन किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति ने किस अभिप्राय से तथा किस पृष्ठभूमि तथा भावना के साथ वे शब्द उच्चारित किये थे तथा बोलने वाले व्यक्ति के चेहरे पर कौन-सी भावनायें प्रतिबिंबित हुई थीं यह बता नहीं सकते। स्पष्ट है कि विचार अपने स्वरूप में अद्वितीय है। विचार उस सामग्री से निर्मित नहीं है जिस सामग्री से ऊर्जा के अन्य रूप निर्मित हैं। वह एक ऐसी ऊर्जा है जो कि ऊर्जा के अन्य रूपों को जानती है। वह एक अद्रव्यात्मक सत्ता (immaterial entity) है जो कि पदार्थ तथा ऊर्जा में विभिन्न रूपों का अनुभव करती है तथा अपने प्रयोजन के लिये तथा अपने सुख के लिये उन सभी का उपयोग करती है।

कुछ लोगों की यह राय हो सकती है कि विचार केवल कम वोल्टेज (Voltage) के तथा एक विशिष्ट प्रकार की आवृत्ति के कतिपय प्रकार के विद्युत आवेग हैं, जो कि मस्तिष्क में प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (Cerebral Cortex) में तन्त्रिका कोशिकाओं (Nerve Cells) द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। वे यह भी कह सकते हैं कि वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत एक उपकरण ई.ई.जी. (Electro Encephalo Graph)— इलेक्ट्रोडों को मनुष्य के शिरोवल्क (Scalp) या कपाल पर रख देने पर ई.ई.जी. हमें मस्तिष्क की तरंगों के प्रतिरूप का एक अभिलेख देता है तथा

हम किसी व्यक्ति की चेतना की अवस्था को समझ सकते हैं।

किन्तु हमें इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि मस्तिष्कीय तरंगों के अभिलेख को पढ़कर — जिन्हें अल्फा, बीटा तथा डेल्टा (Alpha, Beta and Delta) प्रकार में प्रवर्गीकृत किया गया है — हम केवल यही जान सकते हैं कि व्यक्ति विश्रान्तिपूर्ण जाग्रत अवस्था में है या ऊंघ, नीन्द, जागरण या तनाव की अवस्था में है। ई.ई.जी. से हम विचार, मन या आत्मा से प्रत्यक्षत: सम्पर्क नहीं कर सकते और उसकी वास्तविक प्रकृति तथा अन्तर्वस्तु को जान नहीं सकते। वह विचार को पकड़ नहीं सकता और यह नहीं कह सकता कि यह मन है और न ही उसके ज़रिये आप यह जान सकते हैं कि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क कोई विशिष्ट 'बीटा' स्पन्दलय (rhythm) क्यों दे रहा है। इसका कारण आत्मा नामक अन्तर्विवेकशील सत्ता को ज्ञान होता है, जो कि विचार तथा संवेग की एक विशिष्ट अवस्था में होने के कारण मस्तिष्क को तदनुसार प्रभावित करती है, जो कि इसे एक विशिष्ट प्रकार की विद्युत तरंगे उत्पन्न कर प्रतिबिंबित करता है, और ई.ई.जी. मस्तिष्क तथा तन्त्रिका जाल (Neuronal Network) पर पड़ने वाले इन प्रभावों को मात्र उठाता है। स्पष्ट है कि ई.ई.जी. द्वारा अभिलिखित विद्युत तरंगे, संवेग, साइकल या स्पिन्डल (spindles) विचार नहीं है, वे विद्युत अचेतन ऊर्जा के रूप मात्र हैं, जिनके अर्थ को ये तरंगें स्वयं नहीं समझतीं, बल्कि अभौतिक विचार या मन ही इन्हें समझा जाता है, जो कि वर्तमान मामले में एक विशिष्ट प्रकार की वोल्टेज तथा आवृत्ति वाली तरंगों को जन्म देता है। वस्तुत:, मस्तिष्क का कार्य तथा विशिष्टत: जागृतावस्था को कायम रखता है,* तथा तन्त्रिकीय प्रति पुष्टि (Neuronal feed-back) तथा स्मृति तन्त्रिकीय परिपथ

* *This is a collection of neurons in the subcortical region. There is a constant flow of nervous messages into it in the form of tiny electrical sparks generating currents that only the most sensitive instruments can detect. These currents finally go into the cerebral cortex and gives the cerebrum a hightened state of activity. This is called "wakeful state." The cerebrum, in turn, stimulates the Reticular Activating System still more and so on. It is the soul which can decide to stop this inter-action.*

(Memory neuronal circuit) का कार्य, जिस पर हम इस पुस्तक में आगे चलकर संक्षेप में चर्चा करेंगे, हमें यह विश्वास करने के लिये प्रेरित करते हैं कि मन उन लघु विद्युत स्फुलिंगों (sparks) से भिन्न है जो तन्त्रिकीय जाल से होकर यात्रा करते हैं और वह आर.एन.ए. (Ribo-nucleic Acid) के बढ़ने या परिवर्तित होने के प्रभावों से भिन्न है।

इसलिये हमें निश्चित रूप से यह जान लेना चाहिए कि 'स्व' या मन, न तो शरीर है और न ही मस्तिष्क है और न ही वह पदार्थ का कोई विकास या उपकरण है। इसलिये, वह शरीर या मस्तिष्क की मृत्यु के साथ समाप्त नहीं होता। 'स्व' के कार्य मशीन के कार्य नहीं हैं, बल्कि एक अन्तर्विवेकशील सत्ता (Conscient entity) के कार्य हैं और उनका एक नैतिक आयाम या नीति शास्त्रीय अनुमोदन होता है और इन कार्यों के परिणाम शरीर या मस्तिष्क के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अस्तित्व में रहते हैं।

इसे दृष्टिगत रखते हुए एक व्यक्ति के रूप में हर किसी का अपने कर्मों के प्रति एक उत्तरदायित्व होता है, क्योंकि वह उन कर्मों का अच्छा या बुरा फल भोगता है और चूँकि कर्म — विचार या मन पर आधारित होते हैं, इसलिये मनुष्य को अपने मन को ऊंचा उठाना होता है, ताकि मनुष्य को शान्ति मिले और उसे दु:ख न हो तथा वह दूसरों को अशान्त न करे।

'स्व' के उन्नयन (self-elevation) या विचारों के शुद्धिकरण के इस प्रयास में स्व या आत्मा का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि किसी मनुष्य का यह दृढ़ विश्वास हो या यदि वह इस बात का स्मरण करे कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल इस जीवन में या मृत्यु के पश्चात् भोगना होता है और वह कि मनुष्य के विचार तथा कर्म उसे कुछ प्रवृत्तियाँ या लक्षण देते हैं जिन्हें वह अपनी भौतिक मृत्यु के पश्चात् अपने साथ ले जाता है तो इससे उस मनुष्य को स्वयं को सुधारने में सहायता मिलेगी।

स्वयं के प्रति तथा अन्य लोगों के प्रति मनुष्य की प्रवृत्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह स्थायी नैतिक मूल्यों का आधार बन सकती है, निश्चित उदात्त

ध्येय (certain noble goals) प्रदान कर सकती है और मनुष्य तथा मनुष्य के बीच, और मनुष्य तथा अन्य जीवों के बीच बेहतर सम्बन्ध स्थापित कर सकती है तथा घटनाओं तथा परिस्थितियों को बदल सकती है और विश्व को जीने योग्य एक बेहतर स्थान बना सकती है जैसा कि हम इस पुस्तक में किसी उचित अवस्था में स्पष्ट करेंगे।

अभी हम उन लोगों के दृष्टिकोणों पर विचार करेंगे जो कि यह सोचते हैं कि यदि हम मस्तिष्क को एक कम्प्यूटर समझें तथा मानव व्यक्तित्व को जीनों तथा पर्यावरणात्मक प्रभावों का एक परिणाम समझें तो आत्मा के संप्रत्यय को लाने की कोई भी आवश्यकता नहीं होगी।

तुम एक आत्मा हो, जिसका एक लक्ष्य है

मनुष्य न तो एक मशीन है और न ही एक 'जीन' है

''अपने मन को मुझसे जोड़ो तथा मुझमें पूर्ण विश्वास रखो और मैं तुम्हें दिव्य शान्ति तथा आनन्द प्रदान करूँगा।''

— *शिव भगवानुवाच*

इस विश्व में सभी वस्तुयें गति की अवस्था में हैं और बिना एक भी अपवाद के सभी वस्तुयें प्रति क्षण परिवर्तित होती रहती हैं। यह प्रक्रिया एक अविरत (non-stop) घटना है। तथापि अधिकांश क्रियाशीलता प्रकृति की आन्तरिक या बाहरी शक्तियों के कारण होती है तथा अधिकांश परिवर्तन द्रव्यात्मक पदार्थों की क्रिया तथा प्रतिक्रिया के कारण,पदार्थ, चन्द्रमा तथा तारों के बीच की अन्त:क्रिया के कारण होते हैं। किन्तु मानव का क्रिया-कलाप बिल्कुल भिन्न है।

मानव का क्रिया-कलाप भिन्न है

विचारों, प्रत्ययों (ideas) तथा इच्छा की उसमें एक प्रमुख भूमिका है। ये मानव की क्रिया का रूप लेते हैं तथा अगले आन्तरिक तथा बाहरी परिवर्तन लाते हैं। इसलिये, मानव-जीवन — विचार, इच्छा, भावना तथा क्रिया की मुख्य धारा है। विचार तथा प्रत्यय बीजों के तरह हैं, जिन्हें जब बोया जाता है तो वे क्रिया के रूप में बढ़ती हैं तथा अच्छी वा बुरी उपलब्धियों के फल देते हैं। अब ये विचार, प्रत्यय कहाँ से आते हैं? ये इच्छायें कहाँ से आती हैं? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और उनसे स्वयं के बारे में और विश्व के बारे में बेहतर समझ आती है। लोग कहते हैं कि ये विचार, प्रत्यय तथा इच्छायें मन से सम्बन्धित

हैं। किन्तु 'मन' क्या है?

इसके अतिरिक्त मनुष्यों के पास निर्णय लेने तथा तैयार की गई योजनाओं के अनुसार कार्य करने तथा कठिनाइयों से बचने का मार्ग ढूँढ़ निकालने की एक विशेष तथा मूल्यवान शक्ति होती है। यह वह सुभिन्न योग्यता है जो कि मनुष्य को शेष प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ बनाती है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु होती है जो कि उसे, भले ही धीमे से, अच्छाई और पवित्रता की ओर या नैतिकता की ओर या सुख या आनन्द की ओर ले जाती है। लोग इन योग्यताओं को 'प्रज्ञा' (intellect) या 'अन्तश्चेतना' (inner conscience) कहते हैं। किन्तु कौन इन योग्यताओं को धारण करता है?

नि:सन्देह विचार, प्रत्यय तथा 'अन्तश्चेतना' और परखने तथा निर्णय करने की योग्यतायें मानव के क्रिया-कलाप के प्रेरक, मार्गदर्शक तथा विनियामक (regulating) कारक हैं। ये मानव की चेतना के विभिन्न अभिव्यक्त रूप हैं और यही पृथ्वी पर मानव जीवन का संधारण (maintain) करते हैं। प्रत्यय (Ideas) ही किसी युग का अवधारण (determine) करते हैं। प्रत्यय एक ऐसे प्रधान मंच हैं कि उनके चारों ओर सम्पूर्ण मानवता परिभ्रमण करती है। प्रत्यय क्रियाओं के अनुक्रम को एक शृंखला में जोड़ते हैं, जिनसे जीवन का गठन होता है। जहाँ बुद्धिमानीपूर्ण विचार और निर्णय न हों या जहाँ मानव मन, प्रज्ञा या चेतना का अभाव हो वहाँ अराजकता का साम्राज्य होता है। किन्तु मन क्या है, प्रज्ञा क्या है तथा चेतना क्या है? मन के तथा प्रत्ययों के प्रक्षेप-पथ (trajectory of ideas) के अध्ययन से तथा प्रज्ञा के, जो कि प्रत्ययों (ideas) का अर्थ लगाती है और प्रत्ययों को समझती है कि अध्ययन से निश्चय ही हमारी दृष्टि स्पष्ट हो जायेगी। इसलिये हमें मनुष्य की इन अद्भुत योग्यताओं तथा क्रियाओं को जानने का निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

मन, चेतना तथा आत्मा क्या हैं?

इसके पहले कि हम आगे बढ़े, हम आरम्भ में ही यह कह दें कि मन के बारे में सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि वह चेतना या अभिज्ञता की एक

अभिव्यक्ति है, और ऐसा मानना ठीक ही है। विचार, प्रत्यय, कल्पना, भावनायें, इच्छा, संकल्प आदि का उस दशा में अस्तित्व ही नहीं होता यदि जिस व्यक्ति या सत्ता में ये होते हैं, उसमें अभिज्ञता नहीं होती। इसलिये मन (mind), प्रज्ञा (intellect), प्रवृत्तियों (tendencies), भावनाओं (feelings), संवेगों (emotions) तथा चेतना का सम्बन्ध सप्राणता (realm of animation), अभिज्ञता (awareness), चैतन्य (sentience) या चेतना (conscious) के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। इसीलिये हम मन को 'चेतन' (conscious) या 'अव-चेतन' (sub-consciousness) कहते हैं। वह मन भी जिसे 'अचेतन मन' (unconscious mind) कहा जाता है, वस्तुत: अचेतन नहीं होता, क्योंकि वह किसी विशिष्ट समय चेतन नहीं होता। अब, धार्मिक या आध्यात्मिक लोगों की दृष्टि में 'चैतन्यशील' स्वत्व आत्मा है, जो कि अपनी भूमिका निभाने के लिये मानव के ढाँचे में प्रवेश करती है। इसलिए, मन तथा प्रज्ञा आत्मा की क्रियाशील योग्यतायें हैं। वे आत्मा की शक्तियाँ हैं जो कि मस्तिष्क, तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system) तथा शरीर के अंगों के माध्यम से कार्य करती हैं।

संज्ञान और स्नेह भाव — पदार्थ के गुण नहीं हैं

मनोवैज्ञानिक सामान्यत: इस बात पर सहमत हैं कि मन की तीन शक्तियाँ या अभिव्यक्तियाँ हैं। इनमें से एक शक्ति 'संज्ञान' (Cognition) कहलाती है। इसमें समझने, प्रत्यक्षण करने, परखने, तर्क करने तथा स्मरण आदि करने की शक्ति शामिल हैं। अन्य दो शक्तियाँ — क्रिया शक्ति (Conation) तथा स्नेह शक्ति (Affection) — क्रियावृत्ति में शामिल हैं जो कि मनुष्य को क्रियाशील बनाती हैं। निर्माण करने, सीखने, संधारण करने की शक्तियाँ, इनमें से कुछ शक्तियाँ हैं। 'भाव' कहलाने वाला तीसरा गुण — प्रेम, आश्चर्य, भय आदि की भावना जैसी सहज भावनाओं से सम्बन्धित है। उसका सम्बन्ध उस अनुभूति से भी है जो कि इनसे उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि इन सभी प्रवृत्तियों या मन की सहज शक्तियों को पदार्थ का गुण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनमें से किसी भी तत्व में या उनके संयोजनों में से कोई भी शक्ति नहीं होती, बल्कि इन तीन गुणों —

संज्ञान (Cognition), क्रियावृत्ति (conation) तथा स्नेहशक्ति (affection) को — एक साथ मिलाकर आत्मा की चेतना कहा जाता है।

संवेग तथा अनुभूतियाँ किसी अति-भौतिक सत्ता (Superphysical entity) की ओर संकेत करते हैं

मानव की भी क्रिया, चाहे वह आँखों से देखने की क्रिया हो या कानों से सुनने की क्रिया हो या मुँह से खाने की क्रिया आदि हो, उसके सुसंगत अनुभव से जुड़ी हुई होती है। कल्पना कीजिये कि एक गरीब मनुष्य अपने एक धनी मित्र के पास सहायता के लिये जाता है और उसे बताता है कि उसकी माता बहुत बीमार है और उसे कुछ रकम चाहिए। कान सुनने का अंग है, किन्तु गरीब मनुष्य के शब्दों को सुनकर धनी मनुष्य के मन में दया, अनुकंपा, सहानुभूति आदि की भावनायें उत्पन्न होती हैं। किन्तु यह अनुभूति कानों को नहीं होती, बल्कि मस्तिष्क के माध्यम से 'आत्मा' कहलाने वाली अन्तर्विवेकशील सत्ता को यह अनुभूति होती है।

पुनः मान लीजिये कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के पास जाता है तथा प्रेमवश उसे एक फूल देता है। अब आँखें केवल देखने की अंग हैं और वे किसी चीज को उसी प्रकार देखती हैं जैसे उन्होंने दूसरी चीज़ों को देखा है। किन्तु व्यक्ति के प्रेम तथा आदर और फूल के सौन्दर्य को समझना तथा आनन्दित होना एक 'अनुभव' है — एक सम्मिश्र अनुभव है। यह अनुभव आँखों का अनुभव नहीं है, बल्कि किसी अन्य का अनुभव है। उस किसी अन्य वस्तु को हम 'आत्मा' कहते हैं। यदि आँखों या कानों ने आनन्द का अनुभव किया होता तो वह देखने या सुनने की वस्तु के हट जाने पर समाप्त हो जाता। किन्तु तथ्य इससे कुछ भिन्न ही हैं। फूल को मनुष्य की दृष्टि से हटा देने के पश्चात् या प्रयोग के लिये उसे अनेक बार हटाने के पश्चात् भी मनुष्य फूल की सुन्दरता तथा सुगन्ध की बात सोचकर आनन्द की अनुभूति करेगा।

यदि कोई व्यक्ति मेरे सामने आता है तो मैं न केवल उसे देखता हूँ बल्कि जब मैं उसे देख रहा होता हूँ तो मैं सोच रहा होता हूँ कि मैं उससे परिचित हूँ या नहीं, वह मेरा मित्र है या नहीं। इस तरह के विचारों के साथ-साथ मेरे मन में प्रसन्नता या अनभिरुचि या अप्रसन्नता या उसके प्रति अनुराग या पूर्ण विराग की भावनायें उत्पन्न होती हैं। सोचना तथा आनन्द या पीड़ा का अनुभव करना आँखों का काम नहीं है, बल्कि उस अन्तर्विवेकशील वस्तु का स्वभाव है जो कि सोचती है और अनुभूति करती है। वह वस्तु 'आत्मा' कहलाती है।

प्रसन्नता, पीड़ा, आश्चर्य, निष्ठा, दयालुता आदि का अनुभव करना पदार्थ का गुण या कार्य नहीं है। हमने किसी भी भौतिक वस्तु को सोचते या आनन्द अथवा पीड़ा का अनुभव करते नहीं देखा है। इसलिये, हम इस तथ्य को नकार नहीं सकते कि चेतनता या चेतना उस शरीर का गुण नहीं है जो कि पदार्थ है, भले ही वह कितना ही जटिल तथा विकसित क्यों न हो, बल्कि वह किसी अन्य वस्तु का गुण है।

'इच्छा' (will) तथा 'प्रयास' (effort) आत्मा के होते हैं

मनुष्य हमेशा वह वस्तु पाना चाहता है जिसे वह आनन्ददायक या सुख का स्रोत समझता है। जब इच्छा निर्मित होती है तो मनुष्य सोचने लगता है तथा योजनायें बनाने लगता है और उसके पश्चात् उसे प्राप्त करने के प्रयास करने लगता है। जब आख़िरकार मनुष्य उस वस्तु को पा लेता है तो वह आनन्दित होता है और यह घोषित करता है कि उसकी इच्छा पूरी हो गई है। वह कौन है जिसमें इच्छा या अभिलाषा होती है और प्रयास करता है?

यह कथन कि उसकी इच्छा पूरी हो गई है यह साबित करता है कि — वही, वह है जिसने इच्छा की तथा जिसकी इच्छा पूरी हुई है। स्पष्ट है कि ये भावनायें या ये शब्द शरीर के नहीं हो सकते क्योंकि जब इच्छा उत्पन्न हुई थी तब यह शरीर उस शरीर से भिन्न था जब इच्छा पूरी हुई थी। समय अपना काम करता रहता है, शरीर निरन्तर, यद्यपि धीरे-धीरे, बाल्यावस्था से युवावस्था की ओर तथा युवावस्था से वृद्धावस्था की ओर बढ़ता रहता है। इन सभी बातों से यह

साबित होता है कि जैसा अब तक अनेक बार कहा गया है, एक सत्ता ऐसी है जो कि शरीर से पूर्णत: भिन्न है; एक सत्ता ऐसी है जो कि अन्तर्विवेकशील है और इसलिये वह अन्य वस्तुओं के बारे में सोच सकती है और यह कह सकती है कि वे पीड़ादायक हैं या आनन्ददायक हैं और उनमें से अच्छी वस्तुओं को चुनती है और उन्हें पाने के लिये प्रयास करती है और उन्हें पा लेने पर प्रसन्नता का अनुभव करती है। अनेक अन्य वस्तुओं की तरह शरीर एक साधन है जिसका उपयोग प्रसन्नता या पीड़ा का अनुभव पाने के लिये किया जाता है, किन्तु शरीर अनुभवकर्त्ता या भोक्ता नहीं होता। वह जो कि शारीरिक सुख या आराम को या शरीर के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख की इच्छा करता है या जो उस सुख को भोगने के लिये शरीर को उचित दशा में रखने की बातें सोचता है, शरीर से कोई अन्य सत्ता है। शरीर अनुभूति नहीं करता। वह शरीर से भिन्न कोई सत्ता है, जिसे सांसारिक वस्तुओं तथा उनके गुणों के तथा शरीर के अनुभव होते हैं और वह सत्ता 'आत्मा' कहलाती है।

भौतिक वस्तुओं में से किसी भी वस्तु में चेतना, सुख या दु:ख का अनुभव करने, स्मरण करने, जानने, पहचानने या इच्छा, अभिलाषा, प्रयास करने आदि के गुण नहीं होते हैं। हम शरीर में इन गुणों में से किसी भी गुण को नहीं पा सकते, क्योंकि शरीर पदार्थ से निर्मित है। यदि ये गुण शरीर के अन्तर्गत गुण होते तो वे ठीक उसी प्रकार हमेशा शरीर में होते जिस प्रकार चीनी में मिठास रहती है। किन्तु, जैसा कि सभी ने मृत्यु की अवस्था में तथा अन्य तत्सम (similar) अवस्थाओं में देखा है, वहाँ जीवन स्मृति आदि के गुण नहीं होते। इसलिये यह स्पष्ट है कि ये गुण शरीर या मस्तिष्क के प्राकृतिक या सहज गुण नहीं हैं बल्कि किसी अन्य सत्ता के गुण हैं, जो कि 'अभौतिक' है।

आत्मा ही समन्वय (co-ordinate तथा पुनःस्मरण (recollect) करती है

इसके अतिरिक्त, आँखें वस्तुओं को देखने के अंग हैं, न कि सुनने के। कान सुनने के अंग हैं, न कि देखने के। इसलिये, जब मैं किसी व्यक्ति को अपने

सामने खड़ा पाता हूँ या उसकी बातें सुनता हूँ तो मैं बेझिझक कह देता हूँ — "मैंने उसे देखा है। मैंने उसे पहले भी सुना है।" यह कहने वाला 'मैं' कौन हूँ? वह योग्यता जिसके सहारे कोई व्यक्ति अतीत का स्मरण करता है, यह आँखों या कान की योग्यता नहीं है। दूसरी बात यह है कि आँख ने क्या देखा है। इसलिये, यद्यपि अन्तर्विवेकशील सत्ता आँखों या कानों से भिन्न है, तथापि वह इन अंगों के ज़रिये प्राप्त किये गये अनुभवों को आपस में जोड़ सकती है तथा गत अनुभवों का स्मरण कर सकती है तथा उन अनुभवों को वर्तमान के अनुभवों से मिलाकर एक अन्य अंग अर्थात् मुँह के ज़रिये यह प्रत्यय व्यक्त करती है कि उसने उस व्यक्ति को पहले भी देखा है। जो अभौतिक सत्ता जोड़ती है और मिलन करती है वह 'आत्मा' कहलाती है। आत्मा में पहचानने, स्मरण करने आदि की योग्यतायें होती हैं और अंगों तथा मस्तिष्क के ज़रिये यह आत्मा जानती है, पहचानती है, अनुभव करती है तथा कार्य करती है।

इसके अतिरिक्त, मैक डाउगल (McDougall) जैसे प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिकों ने चौदह या सोलह मूल प्रवृत्तियों की एक सूची तैयार की है। एक विख्यात मनोवैज्ञानिक बर्गेस्सन (Burgasson) ने जीवन-शक्ति को या जिसे उन्होंने 'एलन व्हाइटल' (The Elan Vital) कहा गया है उसे इन सभी मूल प्रवृत्तियों की जड़ कहा है। फ्रायड, जिनके मनोविश्लेषण के सिद्धान्त या इदम (Id), अहम् (Ego), पराहम् (Super-ego) के सिद्धान्त को व्यापक रूप से पढ़ा गया है, यह समझते हैं कि काम-वासना उन मूल प्रवृत्तियों की जड़ है। शोपनहावर (Schopenhauer) 'जीने की इच्छा' (Will to live) को आधारभूत मूल प्रवृत्ति मानते हैं। यंग (Yung) प्रेम की तथा अल्डर (Alder) शक्ति की इच्छा को मूल प्रवृत्ति मानते हैं। स्पष्ट है कि इनमें से कोई भी मूल प्रवृत्ति पदार्थ में नहीं होती, जो कि वस्तुत: अन्तर्विवेकहीन, अक्रिया तथा असंवेदनशील होता है, किन्तु अन्तर्विवेकशील सत्ता की उपस्थिति के कारण चैतन्यमय प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त, मनोवैज्ञानिक इन मूल प्रवृत्तियों का, मन की आधारभूत शक्तियों तथा प्रवृत्तियों की व्याख्या नहीं कर सकते। वे केवल यह कहते हैं कि ये आदिम मूल प्रवृत्तियाँ असंख्य पूर्ववर्ती पीढ़ियों से एक पीढ़ी के बाद दूसरी

पीढ़ी के मनुष्यों को मिलती आई हैं। वे स्मरणातीत काल से मनुष्य में हैं। उनमें आगमन के समय का पता नहीं लगाया जा सकता। किन्तु कुछ चिन्तन करने पर यह प्रकट होगा कि ये मूल प्रवृत्तियाँ मन का ताना-बाना (Warp and woof) हैं। मन और ये मूल प्रवृत्तियाँ अपृथकनीय हैं, इसलिये इन सभी बातों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मन पदार्थ से न केवल उसकी मूल प्रवृत्तियों या संज्ञान, कार्यवृत्ति या भाव की शक्तियों के कारण भिन्न है किन्तु यह कि वह शरीर या मस्तिष्क जितना पुराना नहीं है, वह स्मरणातीत समय से अस्तित्व में है। ये मूल प्रवृत्तियाँ शरीर तथा मस्तिष्क से भिन्न एक सत्ता में होती हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि वे उसमें अन्तर्निहित होते हैं जिसे धर्मवादी तथा आध्यात्मवादी लोग शाश्वत, अन्तर्विवेकशील 'आत्मा' कहते हैं। वस्तुत:, प्राचीन काल में मन तथा आत्मा एक शाखा समझा जाता था, और मनोविज्ञान को समझा जाता था कि मूलत: वह आत्मा के बारे में अध्ययन करने वाला ज्ञान की शाखा है। अब जो परा-मनोविज्ञान (Para-psychology) कहलाती है, वह इस ज्ञान की एक प्रशाखा थी। हमें आत्मा नामक एक अति-भौतिक तथा अभौतिक सत्ता में विश्वास दिलाती है, जो कि शरीर की समाप्ति के साथ समाप्त नहीं होती, क्योंकि परा-मनोविज्ञानियों ने पर्याप्त तथा विश्वसनीय साक्ष्य पाया है, जो कि यह साबित करता है कि एक ऐसी सत्ता है जिसके पास अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण शक्ति हो सकती है और वह एक शरीर छोड़ने के बाद और किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करने के बाद गत जन्म की घटनाओं को प्रकट कर सकती है।

चेतना, अनुभव आदि जैव-रासायनिक तन्त्र (bio-chemical mechanism) के गुण नहीं हैं

कुछ लोग कहते हैं कि — "सोचना, सीखना आदि शरीर या पदार्थ का स्वभाव नहीं है, किन्तु जब भौतिक तत्व एक विशिष्ट रीति से एक साथ मिलकर एक विशिष्ट संयोजन का निर्माण करते हैं तो सप्राणता (animation) या चेतना का गुण शरीर में स्वयं ही आ जाता है। वे यह कहते हैं कि जीवन, विचार, मूल प्रवृत्तियाँ आदि गुण आत्मा के गुण नहीं हैं। जब भौतिक तत्व एक शरीर का रूप

ले लेते हैं और शरीर क्रियाशील हो जाता है तब उस अवस्था में पदार्थ, मस्तिष्क या शरीर में इच्छा करने, अनुभव करने, स्मरण करने आदि की शक्ति आती है।''

किन्तु यह विचार सही नहीं है, क्योंकि 'कारण' (cause) में जो भी विभेदक विशेषतायें अनुपस्थित होती हैं वे विशेषतायें 'कार्य' (effect) में नहीं पाई जा सकतीं। जब हम पदार्थ के तत्वों में चेतना नहीं पाते तो हम उसे भौतिक वस्तुओं में भी नहीं पा सकते। यदि हम यह मान भी लें कि चेतना का गुण, जो कि पदार्थ में अनुपस्थित होता है, तत्वों द्वारा एक विशिष्ट संयोजन (combination) में निर्मित आकार या रूप में जुड़ जाता है तो भी यह तथ्य शेष रह जाता है कि जो इन तत्वों को संयुक्त करता है या जिसके लिये यह अभिप्रेत है वह कोई अन्तर्विवेकशील सत्ता होनी चाहिए, जिसके कारण से कोई विशिष्ट रूप हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता है। सीधा-सादा कारण यह है कि कोई सोचने वाली सत्ता होनी चाहिए, जिसके कारण से कोई विशिष्ट रूप हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता है। सीधा-सादा कारण यह है कि किसी सोचने वाली सत्ता की विद्यमानता से, उपस्थिति से या जिस माध्यम के बिना पदार्थ के तत्व स्वयमेव संयुक्त होकर किसी विशेष प्रयोजन के लिये अनुभव के उपयुक्त कोई विशिष्ट जटिल वाञ्छित निर्मित नहीं करते। पुनः पदार्थ तथा पदार्थिक वस्तुयें उपभोग की वस्तुयें हैं और वे स्वयं भोक्ता नहीं हो सकतीं। वे विषय हैं, विचारक नहीं हैं। वस्तुतः, जब हम सोच रहे होते हैं तो हमें ऐसी अनुभूति होती है कि हम शरीर से भिन्न सत्तायें हैं। जब हम शरीर के बारे में सोचते हैं तब हमें स्पष्टतः यह अनुभूति होती है कि हम विचारक हैं, जबकि शरीर या मस्तिष्क सोचने की एक वस्तु है। तथापि, आज के घोर भौतिकवादी युग में कुछ मनोवैज्ञानिक तथा जीव-विज्ञानी ऐसे हैं जिनका यह विश्वास है कि मस्तिष्क की कोशिकायें (Brain-cells) तथा उनकी संयोजिनियाँ (Connectives) मस्तिष्क का धूसर तथा श्वेत पदार्थ सीखने, सोचने, स्मरण करने आदि के लिये उत्तरदायी हैं, और यह कि मन बाहरी या आन्तरिक उद्दीपनों की केवल एक अनुक्रिया है, यह कि वह कतिपय जैव-रासायनिक क्रिया का

प्रभाव है। इस प्रकार तर्क करते समय वे किसी भी अति-भौतिक मन के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। वस्तुत: यह उनके अध्ययन या प्रयोगों का ग़लत निष्कर्ष है, जैसा कि हम नीचे स्पष्ट करेंगे।

1. इसमें सन्देह नहीं है कि सोचना या सीखना प्रोटीन तथा रिबोन्यूक्लिक एसिड (RNA) के विश्लेषण से सम्बद्ध है, किन्तु यह केवल न्यूरॉनों तथा उनकी संयोजनियों के ज़रिये मन या आत्मा द्वारा किये गये चिन्तन का प्रभाव होता है। यह एक तथ्य है कि सोचना अनेक जैव-रासायनिक परिवर्तन लाता है; वह तन्त्रिकाओं तथा न्यूरॉनों को उत्तेजित करता है और इससे नई संयोजिनियों का निर्माण होता है। मस्तिष्क की प्रत्येक तन्त्रिका कोशिका की किसी अन्य तन्त्रिका कोशिका के साथ 10^{10} की कोटी की होती हैं। सोचने से शरीर में अन्य ग्रंथियाँ भी उत्तेजित होती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उनसे विभिन्न प्रकार के स्राव निकलते हैं। सोचने का प्रभाव हृदय तथा श्वसन पर भी होता है। आण्विक जीव-विज्ञानियों तथा तन्त्रिका विज्ञानियों द्वारा किये गये अन्वेषणों से यह प्रकट हुआ है कि ये आन्तरिक परिवर्तन घटित होते हैं। किन्तु ये परिवर्तन न सोचने की क्रिया के परिणाम हैं, जो कि मस्तिष्क के अत्यन्त ससंवेदनशील माध्यम के जरिये मन या आत्मा द्वारा की जाती है, यद्यपि मस्तिष्क के धूसर पदार्थ (Grey matter) में या न्यूरॉनों में होने वाले परिवर्तन मन को भी प्रभावित करते हैं। बाहरी या आन्तरिक उद्दीपनों का प्रभाव मस्तिष्क में अंकित हो सकता है और मस्तिष्क की कोशिकाओं में भी परिवर्तन हो सकते हैं, किन्तु आघात या आनन्द का अनुभव या तनाव अथवा राहत का अनुभव मन या आत्मा द्वारा किया जाता है। आत्मा ही समझती है तथा क्रियाओं के प्रभाव को जानती है। मस्तिष्क केवल एक अद्वितीय प्रकार का उपकरण है, जिसका उपयोग सन्देश प्राप्त करने, घटनाओं को अभिलिखित करने, जानकारी का भण्डारण करने तथा आवश्यकता होने पर तथ्यों का प्रत्यास्मरण करने के लिये किया जाता है, किन्तु वह एक नियन्त्रण-कक्ष

या सन्दर्भ ग्रंथालय के रूप में कार्य करता है, न कि एक नियन्त्रक, एक पंजीयक (Registrar) या एक ग्रंथालयाध्यक्ष (Librarian) के रूप में।

2. निःसन्देह, मस्तिष्क आँखों के जरिये भेजे गये बिंबों (Images) को या कानों के ज़रिये भेजे गये ध्वनि प्रभावों को प्राप्त करता है, किन्तु आत्मा ही इन बिंबों तथा ध्वनि प्रभावों का निर्वचन करती है और उन्हें सहसम्बद्ध करती है। मस्तिष्क इन प्रभावों को प्राप्त कर सकता है तथा अभिलिखित कर सकता है, किन्तु इन प्रभावों के अर्थ या महत्व को समझ नहीं सकता। जो शब्द हम तक कानों के ज़रिये पहुँचता है उन्हें मस्तिष्क द्वारा प्राप्त किया जाता है, किन्तु मस्तिष्क से भिन्न एक ऐसी सत्ता है जो कि यह समझती है कि इन शब्दों का क्या अर्थ है या इन शब्दों के बोलने वाले का उद्देश्य क्या है या वे कौन-सी भावनायें व्यक्त करते हैं, और वह सत्ता है — 'आत्मा'। आत्मा न केवल सौम्य या गहरी भावना के साथ अर्थ और महत्व को समझती है, बल्कि उसमें कुछ संवेग (emotions) तथा भाव (sentiments) भी होते हैं। आत्मा एक स्वामी है जो कि अपनी अभिलाषा, अपनी इच्छा, अपनी भावनाओं या अपने विश्वासों को क्रियान्वित करने के लिये मस्तिष्क तथा शरीर के अन्य अंगों का उपयोग करता है। मस्तिष्क एक महान सहायक है, किन्तु आत्मा की ओर से कार्य करने के लिये उसके पास कोई मुख्तारनामा (Power of Attorney) नहीं होता।

3. कुछ मनोविज्ञानियों तथा जीवविज्ञानियों का यह दृष्टिकोण है कि मन न तो भौतिक सत्ता है और न ही आध्यात्मिक सत्ता है, बल्कि उन प्रत्यक्षणों को दिया गया नाम है जो कि उन जैव-रासायनिक परिवर्तनों से तब घटित होते हैं जब संसार की वस्तुयें तथा घटनायें हमारे जैव तन्त्र (Biological system) से टकराती है। इस प्रकार उनके अनुसार, मन एक सतत प्रक्रिया है या मस्तिष्क में चलने वाली एक प्रक्रिया का सूक्ष्म परिणाम है।

किन्तु यह विश्वास अनेक प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं देता। उदाहरणार्थ यह प्रश्न लीजिये कि "यदि शरीर में कोई अति-भौतिक या

आध्यात्मिक सत्ता नहीं है तो जब विश्व की कोई वस्तु या घटना कतिपय रासायनिक परिवर्तनों के जरिये हमारे मस्तिष्क या तन्त्रिका-तन्त्र से टकरा चुकने के बाद कुछ समय बीत जाने पर हम उसका प्रत्यास्मरण (recollect) कैसे कर सकते हैं? चूँकि नये उद्दीपनों (newer stimuli), नई घटनाओं के कारण मस्तिष्क, शरीर के तन्त्रिका-तन्त्र तथा रासायनिक संघटनों में सतत परिवर्तन होता रहता है तो वह कौन है, जो कि पूर्ववर्ती घटना का पुनःस्मरण कर सकता है? स्पष्ट है कि जो सारभूत रूप से तथा भौतिक रूप से परिवर्तित हो गया हो वह किसी गत बिंब को पुनर्जीवित कैसे कर सकता है? कोई ऐसी आध्यात्मिक सत्ता होनी चाहिए — कोई ऐसी सत्ता होनी चाहिए जिसमें कोई भी भौतिक या रासायनिक परिवर्तन नहीं होता जो कि किसी विगत अनुभव को पुनर्जीवित कर सकती है''।

4. मुक्ति पाने की इच्छा एक अन्य सबूत है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसके जीवन में पीड़ा या दुःख न हो। बुद्धिमान मनुष्य पीड़ा से अन्तिम तथा शाश्वत मुक्ति पाना चाहते हैं। वे यह जानते हैं कि वर्तमान विश्व में शरीर तथा मस्तिष्क भी न्यूनाधिक रूप में पीड़ा लाने के साधन हैं, और इसलिये वे अन्ततः इन दोनों के बन्धन से भी मुक्ति पाना चाहते हैं। मुक्ति पाने की उनकी यह इच्छा एक चैतन्यशील तथा तर्कशील सत्ता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है जो कि शरीर तथा मस्तिष्क से पृथक है और जो कि शरीर तथा मस्तिष्क के बन्धनों से मुक्त होना चाहती है। यदि 'आत्मा' नामक कोई पृथक सत्ता नहीं है तो शरीर या मस्तिष्क स्वयं से ही मुक्त होने की इच्छा नहीं करता?

एक दूसरा पहलू विचारणीय है। शरीर से तथा उसके जन्म तथा मरण से मुक्ति पाने की इच्छा स्पष्टतः यह दर्शाती है कि इस वर्तमान शरीर के अस्तित्व में आने के पूर्व भी यह सत्ता अस्तित्व में थी, क्योंकि यदि वह पूर्व में विद्यमान नहीं थी और अतीत में किसी समय उसने मुक्ति का अनुभव नहीं किया होता तो उसने मुक्ति की इच्छा अब भी न की होती,

क्योंकि यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि मनुष्य केवल उन अनुभवों की इच्छा करता है जो कि उसे अतीत में हो चुके हों। इसलिये, मुक्ति की वर्तमान इच्छा से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर जिसे कि हम देख सकते हैं और छू सकते हैं, उसके अतिरिक्त कोई ऐसी शाश्वत तथा अमर सत्ता है, जो इस शरीर से पहले भी विद्यमान थी और शरीर के विनाश के पश्चात् भी विद्यमान रहती है।

इसके अतिरिक्त, अवलोकन से हम यह जानते हैं कि मानसिक क्लेश तथा मानसिक दण्ड को सहना बहुत कठिन होता है तथा हर कोई उससे मुक्ति पाना चाहता है। अब, वह कौन है जो कि मुक्त होना चाहता है? मस्तिष्क यह इच्छा नहीं करता, क्योंकि जीव-विज्ञानिय अध्ययन तथा रोग-निदानात्मक प्रयोग यह प्रकट करते हैं कि मस्तिष्क के दो गोलार्ध (Hemispheres) होते हैं तथा उसके विभिन्न भाग अंगों से जुड़े हुए होते हैं। इससे भी हम यह विश्वास करने के लिये प्रेरित होते हैं कि एक पृथक् सत्ता ऐसी है जो कि मस्तिष्क के ज़रिये अनुभव करती है।

5. इसके अतिरिक्त, इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मस्तिष्क में लगभग 100 बिलियन न्यूरॉन होते हैं और इनमें से प्रत्येक न्यूरॉन में या मस्तिष्क कोशिका में लगभग 60 बिलियन आर.एन.ए. अणु तथा अन्य रासायनिक यौगिकों के अनेक अन्य अणु होते हैं। इसलिये, यह प्रश्न उठता है कि इन न्यूरॉनों, मस्तिष्क कोशिकाओं या विभिन्न प्रकार के अणुओं में से किसके लिये हम सर्वनाम 'मैं' का प्रयोग करते हैं, जो कि एक अन्तर्विवेकशील व्यक्ति का गुणार्थक है। स्पष्ट है कि इस प्रश्न का कोई भी समाधानकारक उत्तर नहीं है क्योंकि उपर्युक्त सभी वस्तुयें एक साथ मिलकर मस्तिष्क का गठन करती हैं और मस्तिष्क उस चैतन्यशील सत्ता का, जो कि स्वयं के लिये सर्वनाम 'मैं' का उपयोग करती है, केवल एक माध्यम या एक उपकरण है। उस 'मैं' के पास एक व्यक्तित्व, उसका स्वयं का व्यष्टित्व है, जिसमें उसके शरीर तथा मस्तिष्क के अतिरिक्त

कतिपय प्रवृत्तियाँ, इच्छायें, लक्षण तथा अभिवृत्तियाँ होती हैं, जिनमें से अनेकों को वर्तमान शरीर का निर्माण होने के पूर्व के उसके पूर्ववर्ती अस्तित्व में ढूँढा जा सकता है। इस अन्तर्विवेकशील सत्ता का व्यक्तित्व, जो कि शब्द 'मैं' द्वारा द्योतित होता है, निरन्तर अस्तित्वमान होता है, वह नीन्द, स्वप्न, ऊंघ आदि सभी मानसिक अवस्थाओं में विद्यमान रहता है तथा इन सभी अवस्थाओं का ज्ञाता है, और इसलिये वह मस्तिष्क से भिन्न है।

मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह है किन्तु वह उसका उपयोगकर्त्ता नहीं है

फिर भी अनेक मनोवैज्ञानिकों तथा विद्वानों का यह विचार है कि सोचने, निर्णय करने आदि की क्रियायें मस्तिष्क से सम्बन्धित हैं, जो कि एक कम्प्यूटर की तरह कार्य करता है। वे यह कहते हैं कि संवेदी तन्त्रिकाओं का जाल, जो कि पूरे शरीर में फैला हुआ है, मस्तिष्क को बिंब सन्देश या जानकारी संप्रेषित करता है और मस्तिष्क उन्हें पढ़ता है। कोई मार्ग सोच निकालता है तथा परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिये योजनायें तैयार करता है। वे यह कहते हैं कि मस्तिष्क से एक इलेक्ट्रॉनिक तरंग उठती है और उद्दीपन की एक अनुक्रिया उत्पन्न करती है। इस प्रकार वे यह कहते हैं कि एक कम्प्यूटर की तरह कार्य करने वाले मस्तिष्क से भिन्न कोई मन नहीं है।

किन्तु यह कहते समय वे यह भूल जाते हैं कि कम्प्यूटर केवल एक प्रकार का यन्त्र है और यन्त्र तथा उपकरण स्वयमेव गतिमान नहीं होते तथा स्वयं के लिये गतिमान नहीं होते। जो उसे गतिमान करता है, जो बटन दबाता है, जो उसमें ईंधन भरता है, जो आवश्यकता होने पर उसकी मरम्मत करता है और उससे सम्बन्धित अनेक कार्य करता है वह एक इंजीनियर या एक ऑपरेटर या एक मैकेनिक होता है, एक अन्तर्विवेकशील व्यक्ति होता है। इस प्रकार शरीर भी कुछ-कुछ एक मोटर-कार की तरह है। वह जो कि शरीर को उसके ईंधन के रूप में भोजन देता है, उसका भोजन कमाता है, उसके लिये पकाता है, उसे

उचित समय पर खिलाता है, शरीर की स्वच्छता का वैसा ही ध्यान रखता है जैसे कोई व्यक्ति अपनी मोटर-कार की स्वच्छता का ध्यान रखता है, और निश्चित प्रयोजनों के लिये उसका उपयोग करता है, स्पष्टत: एक जीवित स्वत्व है; आत्मा से यही अभिप्रेत है। जब चालक किसी मोटर-कार के किसी विशिष्ट भाग को दबाता है तो मोटर-कार के सभी पुर्जे उचित रीति से गतिमान हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार शरीर में निवास करने वाली आत्मा (उसका स्थान मस्तिष्क में है) अपनी प्रेरक शक्ति या विचार-शक्ति द्वारा शरीर को गतिमान करती है। विंचार या अनुभूति वह अभिकरण है जो कि मस्तिष्क को तथा तन्त्रिका तन्त्र को क्रियाशील करते हैं। शरीर स्वयं ही कुछ भी नहीं कर सकता। आत्मा चालक या प्रेरक शक्ति की तरह कार्य करती है तथा शरीर और उसका भोजन मोटर-शक्ति की तरह कार्य करता है तथा मस्तिष्क स्टार्टर, गियर या स्टीयर व्हील की तरह कार्य करता है।

जब ईंधन समाप्त हो जाता है या स्वयं को ऊर्जा के रूप में रूपान्तरित नहीं करता तो इंजन रुक जाता है। वह उसे ठीक करने के उपाय नहीं ढूँढ़ सकता। केवल एक विचारवान व्यक्ति — एक अन्तर्विवेकशील व्यक्ति यह जानता है कि इंजन में दोष कहाँ है और वह उसे ठीक करने के उपाय ढूँढ़ निकालता है। मंगल ग्रह पर उतरे वाइकिंग-प्रथम (Viking-I) के मामले से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उसकी भुजाओं ने कार्य करना बन्द कर दिया था। बाद में अन्तर्विवेकशील व्यक्तियों के रूप में वैज्ञानिक उपकरणों से सुसज्जित वाइकिंग-प्रथम स्वयं यह कार्य न कर सका।

एक ऐसे मनुष्य की कल्पना कीजिये जिसे खाने के लिये भोजन नहीं मिलता या यदि उसे भोजन दिया जाता है तो भी वह उसे पचा नहीं सकता या इस भोजन को ऊर्जा के रूप में परिवर्तित नहीं कर सकता। इसलिये शरीर को ठीक करने के लिये जो कि दोषपूर्ण होने के कारण भोजन के अभाव में भूख से मर रहा है, कोई जीवित व्यक्ति ही उसका उचित चिकित्सीय उपचार करने के उपाय सोचता है। इसलिये शरीर अन्तर्विवेकशील सिद्धान्त से स्वतन्त्र रूप में कार्य नहीं कर सकता

और न ही वह इस दशा में स्वयं को बाधाओं से बचाते हुए क्रियाशील कर सकता और किसी निश्चित प्रयोजन के लिये अपने कार्य का नियन्त्रण नहीं कर सकता।

इसलिये, इस बात में कोई भी सन्देह नहीं है कि मस्तिष्क की तुलना एक कम्प्यूटर से की जा सकती है, तथापि यदि हम यह कहें कि इस तुलना में कम्प्यूटर निकृष्ट साबित होता है तो यह बात विचित्र जान पड़ेगी, क्योंकि उन लोगों द्वारा, जो कि विषय को जानते हैं, यह कहा गया है कि यदि मानव मस्तिष्क की अनुकृति (Duplicate) का कोई यन्त्रीकृत संस्करण कभी निर्मित किया जाये (यदि ऐसा करना संभव हो) तो उसके विद्युत परिपथों (electrical circuits) को रखने के लिये एक 100 मंजिला गगनचुम्बी इमारत की आवश्यकता होगी और उसे ठण्डा करने के लिये नियागरा जल प्रपात की शक्तियों (Power of Niagaras) की आवश्यकता होगी, और फिर भी उसे कार्यक्रमित करने के लिये तथा उसे कार्यशील करने के लिये एक अन्तर्विवेकशील सत्ता — एक मानव आत्मा — की आवश्यकता होगी, जिससे यह साबित होता है कि शरीर तथा मस्तिष्क के अतिरिक्त एक अन्य सत्ता है जो कि 'आत्मा' कहलाती है।

सोचने, निर्णय करने आदि की योग्यताओं पर अगली चर्चा से 'आत्मा' का अस्तित्व अधिक स्पष्ट हो जायेगा। इन योग्यताओं पर चर्चा करते समय इस दृष्टिकोण का भी परीक्षण करेंगे कि क्या मन (mind) तथा प्रज्ञा (intellect) आन्तरिक अंग हैं अर्थात् क्या वे आत्मा के भौतिक उपकरण तथा विशेषक (adjuncts) हैं?

खण्ड-दो

क्या मन एक अधि-भौतिक सत्ता है?

शरीर में आत्मा कहाँ अवस्थित है?

"तुम दो भौहों के बीच के स्थान के केन्द्र में अवस्थित, सिंहासन पर आसीन अन्तर्विवेकशील प्रकाश के एक ज्योतिर्मय बिन्दु हो"

— ***शिव भगवानुवाच***

हमने पिछले अध्याय में संक्षेप में यह स्पष्ट किया कि मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह है तथा अधि-भौतिक (Metaphysical) मन या आत्मा द्वारा इस जैव-कम्प्यूटर को प्रयोजनार्थ उपयोग में लाया जाता है, उसमें घटनाओं की स्मृति भण्डारित (store) की जाती है तथा अपनी इच्छा के अनुसार भौतिक वस्तुओं का प्रत्यक्षण (perceive) करने, अनुभव करने तथा उपभोग करने के लिये उपयोग में लाया जाता है। वर्तमान में हम इस विषय पर कुछ अधिक विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। हम फिर से एक बार इस बात पर चर्चा करेंगे कि क्या मन न्यूरोंनों के विद्युत आवेगों (Electrical impulses) का एक उत्पाद है या कि मस्तिष्क ऊतक (Brain tissue) में चलने वाले कतिपय विद्युत रासायनिक प्रक्रिया की एक अनुघटना है या कि वह एक पृथक् सत्ता है— जो कि भौतिक नहीं है बल्कि अधि-भौतिक है तथा इन्द्रियातीत है। हम आगे यह जानने की कोशिश करेंगे कि मन मस्तिष्क और शरीर से कैसे सम्बन्धित है, मस्तिष्क में वह कहाँ अवस्थित है और उस विशिष्ट भाग में आसीन होकर वह सम्पूर्ण मानसिक तथा भौतिक तन्त्र को क्रियाशील कैसे करता है?

तथापि, इस उपक्रम में आगे बढ़ने के पूर्व हम फिर से यह बतायेंगे कि हम मन या आत्मा में किन योग्यताओं, क्रियाओं या घटनाओं का गुणारोपण करते हैं, ताकि जब हम उसके भौतिक या अधि-भौतिक (Metaphysical) स्वभाव के बारे में तथा मस्तिष्क में उसकी अवस्थिति के बारे में चर्चा करें तो हम स्पष्टतः

यह समझ सकें कि हम किस बारे में चर्चा कर रहे हैं।

मन की योग्यतायें तथा क्रियायें

हमारा यह विचार है कि अधिकांश लोग इस बारे में सहमत होंगे कि इच्छा करना, अभिलाषा करना, इरादा करना, प्रत्यक्षण करना, अनुभव करना, समझना, तर्क करना, निर्णय करना, योजना बनाना आदि क्रियायें मनुष्य को एक जीवन्त व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। चूँकि ये क्रियायें या योग्यतायें केवल तभी होती हैं जब चेतना या चैतन्य हो, इसलिये मन के लिये शब्द 'चेतना' (यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न चरण, स्तर या रूप होते हैं) का उपयोग किया जाने लगा। इसलिये, हम इस अध्याय में यह देखेंगे कि क्या चेतना मस्तिष्क तथा शरीर का एक उत्पाद है या कि उसका स्त्रोत एक अधि-भौतिक सत्ता में है और यह भी कि शरीर या मस्तिष्क में मन कहाँ अवस्थित है?

मन का आसन मस्तिष्क में है

अब इस सम्बन्ध में हमारे पास जीव-विज्ञान, शरीर-क्रिया विज्ञान, शरीर-रचना विज्ञान तथा तन्त्रिका-विज्ञान के क्षेत्र के अध्ययन से तथा उनमें किए गये अनुसन्धानों से प्राप्त जो साक्ष्य उपलब्ध है वह हमें यह निष्कर्ष निकालने के लिये प्रेरित करता है कि यद्यपि सामान्यत: चेतना की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण शरीर में पाते हैं, [1] तथापि चेतना या मन का बिन्दु स्त्रोत मस्तिष्क में कहीं अवस्थित है। हम सभी लोग यह जानते हैं कि जब कोई डॉक्टर किसी व्यक्ति का हाथ या पैर शल्यक्रिया (surgically) द्वारा काट देता है तो वह व्यक्ति उतना ही वहीं व्यक्ति दिखाई देता है जैसा कि वह ऑपरेशन के पूर्व दिखाई देता था; उसके विश्वास, उसके संवेग, उसकी स्मृति, उसकी प्रत्यक्षण शक्ति तथा तर्क शक्ति आदि, जो कि मन की योग्यतायें हैं वहीं रहते हैं। इसी प्रकार, यदि उसका हृदय प्रत्यारोपण (Heart-transplant) ऑपरेशन होता है तो भी वह वैसा ही व्यक्ति होता है जैसा

1. *All parts of the body seem to have consciousness because they are connected with the brain where the source of consciousness is located.*

कि पहले था; वह चिकित्सालय से उस व्यक्ति के घर नहीं जाता जिसका हृदय उसके शरीर में प्रत्यारोपित किया गया है; उसे अचानक यह नहीं जान पड़ता कि उसे जिस व्यक्ति का हृदय अब उसके शरीर में है उस व्यक्ति के सम्बन्धियों की जानकारी या स्मृति है । यह बात गुर्दा-प्रत्यारोपण (Kidney-transplant) या रूधिराधान (Blood-transplant) के बारे में भी कही जा सकती है। किन्तु केन्द्रिय तन्त्रिका-तन्त्र (Central nervous system) तथा तन्त्रिका विज्ञान (Neurology) सम्बन्धी हमारा ज्ञान हमें यह निष्कर्ष निकालने के लिये प्रेरित करता है कि मन मस्तिष्क में कहीं अवस्थित है, क्योंकि मस्तिष्क ही, जो कि एक हमारी इन्द्रियांगों से (आकृति-1 या 2) जानकारी प्राप्त करता है । तथा (2) हमारी ग्रंथियों (आकृति 4) की कार्य प्रणाली का, (3) हमारे कंकाल की पेशियों की कार्यप्रणाली का, (4) हमारे स्वर या वाक् साधित्र (speech apparatus) की कार्यप्रणाली का, या देखने की प्रक्रिया का और अन्य सभी भागों का, जो कि हमसे कार्य करवाते हैं, नियन्त्रण करता है।

इसके अतिरिक्त, हम यह पाते हैं कि यदि मस्तिष्क के कतिपय भाग, उदाहरणार्थ शंख पालि (Temporal Lobe) (आकृति 2), हटा लिये जायें तो मनुष्य की स्मृति में परिवर्तन घटित होते हैं और यदि मनुष्य लिंबिक क्षेत्र (Limbic region) (आकृति 3) में कोई क्षतस्थल हो तो मनुष्य के संवेगों और व्यवहार और व्यक्तित्व में कुछ परिवर्तन होता है । इसलिये यह कहना सही है कि मन मस्तिष्क के किसी क्षेत्र में अवस्थित है।

इसके अतिरिक्त, मानव के मस्तिष्क में परस्पर जुड़े हुए 10,000 मिलियन न्यूरानों का जाल होता है, भारी मात्रा में जानकारी प्राप्त करने की और उसका उपयोग करने की क्षमता होती है और अनेक सुषुप्त तथा संभाव्य अवस्थाओं में होने की क्षमता होती है, इसलिये मन की 'चेतन', 'अव-चेतन' तथा 'अचेतन' प्रक्रियाओं को समझ सकते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने यह दर्शाया है कि मन की अचेतन प्रक्रियायें भी बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे अनेक अच्छी क्रियाओं को प्रेरित करती है तथा केवल मस्तिष्क की ही कोई ऐसी क्रिया होती है जो कि स्वयं को सचेतन प्रत्यक्षण तथा अनुभव में अभिव्यक्त नहीं करती।

पुनः आधुनिक अनुसन्धानकर्त्ता यह कहते हैं कि मस्तिष्क ही सचेतन अभिज्ञता (awareness) तथा विभिन्न संज्ञानात्मक क्षमताओं का भौतिक आधार निर्मित करता प्रतीत होता है, क्योंकि मस्तिष्क के विभिन्न भागों के क्षतिग्रस्त हो जाने के परिणामस्वरूप मन की विभिन्न शक्तियों की अभिव्यक्ति क्षतिग्रस्त हो जाती है।

अब प्रश्न यह है कि, "मस्तिष्क में चेतना या मन या आत्मा ठीक-ठीक कहाँ अवस्थित है?" इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें यह समझना होगा कि मस्तिष्क कैसे कार्य करता है? हमें यह देखना होगा कि शरीर के साथ चेतना की अन्तःक्रिया का बिन्दु कहाँ है या वह कौन-सा क्षेत्र है, जो कि संवेदी सूचना को प्राप्त करने तथा उसके पश्चात् उसकी अनुक्रिया में प्रेरक क्रिया को चालू करने के लिये उत्तरदायी है?

मस्तिष्क के विभिन्न भाग तथा उनके कार्य

जैसा कि अब सर्वविदित है, मस्तिष्क के छह प्रधान भाग है : (1) प्रमस्तिष्क (Cerebrum), (2) अन्तरामस्तु लुंग (Diencephalon), (3) अनुमस्तिष्क (Cerebellum), (4) मेरुशीर्ष (Medulla Oblongata), (5) पोन्स (Pons) तथा (6) मध्य मस्तिष्क (Mid-brain)। अनेक तन्त्रिका विज्ञानी यह समझते हैं कि मध्य मस्तिष्क, पोन्स तथा मेडुला मस्तिष्क वृन्त का गठन करते हैं क्योंकि यह भाग शेष मस्तिष्क के लिये एक वृन्त (Stem) जैसा दिखाई देता है। इसलिये, उनके दृष्टिकोण से, मस्तिष्क के केवल तीन भाग हैं। अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि प्रत्येक भाग के क्या कार्य हैं और ये भाग एक-दूसरे से तथा शेष शरीर से कैसे जुड़े हुए हैं।

(1) प्रमस्तिष्क (Cerebrum)

प्रमस्तिष्क मानव मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। वह दो गोलार्धों में विभाजित है। उनमें से प्रत्येक गोलार्ध चार पालियों (Lobe) में विभाजित है : (क) ललाट पालि (Frontal lobe), (ख) पार्श्विका पालि (Parietal lobe), (ग)

आकृति 1-

प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था के प्रेरक तथा संवेदी संचारण क्षेत्र। लगभग प्रेरक संचारण क्षेत्र पुर: केन्द्र कर्णक में दर्शाया गया है, जबकि कायिक संवेदी ग्राही क्षेत्र मध्य कर्णक में है। दर्शाये गये अन्य प्राथमिक संवेदी क्षेत्र तथा श्रवण क्षेत्र है। ब्रोका तथा बरनिक के वाक् क्षेत्र दर्शाये गये हैं।

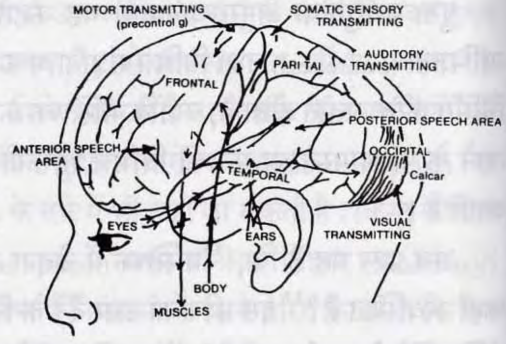

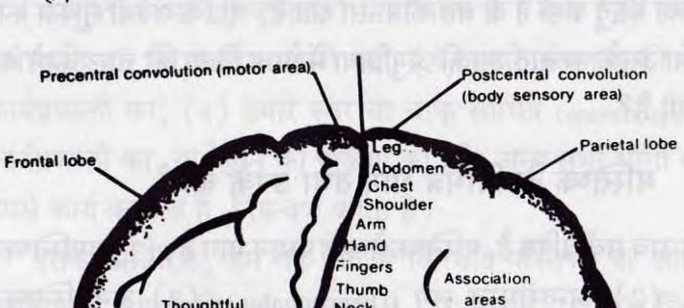

आकृति 2-

प्रमस्तिष्क तथा विनिर्दिष्ट प्रेरक क्रियाओं के साथ सम्बद्ध प्रेरक क्षेत्रों की अवस्थिति। पश्च कपाल पाल के अति पश्च खंड में तन्त्रिका केन्द्र होते हैं जो कि दृष्टि को नियन्त्रित करते हैं, कपाल पालि के भाग सूंघने, सुनने तथा स्वाद लेने के संवेदनों को नियन्त्रित करते हैं। ललाट पालि क्षेत्र विचार करने, परखने तथा अमूर्त्त प्रत्ययों से सम्बन्धित हैं। केन्द्रीय विदर के ठीक आगे प्रेरक केन्द्र हैं जो कि पैर, भुजा, ग्रीवा तथा सिर की पेशियों को नियन्त्रित करते हैं। केन्द्रीय विदर के पीछे पैर, भुजा, ग्रीवा तथा सिर से प्राप्त संवेदनों के लिये संवेदी केन्द्र हैं। इससे यह प्रकट होता है कि एक केन्द्र ऐसा होना चाहिए जो कि समन्वय करता है और आदेश देता है और जो 'आत्मा' का आसन है।

शंख पालि (Temporal lobe) तथा (घ) अनुकपाल पालि (Occipital lobe) देखिए आकृति 1.

प्रमस्तिष्क तीन प्रकार के कार्य करता है — (a) संवेदी क्रियायें (sensory functions), (b) प्रेरक कार्य (motor functions), (c) समाकलन कार्य (integrative functions) एवं जटिल कार्य (integrative functions)। भेदात्मक संवेदन प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (Cerebral cortex) पर विशेषत: उसके कायिक-संवेदी (somatic-sensory) क्षेत्र, दृष्टि (visual) क्षेत्र तथा श्रवण (auditory) क्षेत्र निर्भर होते हैं। प्रान्तस्था के ये क्षेत्र संवेदनों को केवल अंकित ही नहीं करते, बल्कि वे विभिन्न संवेदनों की तुलना करते हैं, उनका समन्वय करते हैं तथा उनका मूल्यांकन करते हैं। वे उन्हें साकल्यों (wholes) के प्रत्यक्ष में समाकलित करने में साधक होते हैं। किसी वस्तु के तापमान, आकार, गठन, भार आदि के संवेदन पाने के पश्चात् उनका उपयोग इन सभी संवेदनों के सम्मिश्रण से निर्मित वस्तु की सकल छाप के प्रत्यक्ष के लिये किया जाता है।

प्रान्तस्था (Cortex) का एक क्षेत्र प्रेरक प्रान्तस्था (Motor Cortex) कहलाता है। किन्तु अन्य क्षेत्रों में भी प्रेरक न्यूरॉन (Motor neurons) होते हैं। वहाँ पूर्व-केन्द्र कर्णक (Pre-central gyrus) में ऐसे न्यूरॉन हैं जो कि दूरस्थ जोड़ों (Distal joints) की गतियों को उत्पन्न करते हैं तथा उनका नियन्त्रण करते हैं — जैसे कलाई, हाथ, उंगलियों, पैर और पैर की उंगलियों की गतियाँ।

स्मृति — एक ऐसा कार्य है जिसमें प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (cerebral cortex) की एक भूमिका है। प्रमस्तिष्क का लिंबिक तन्त्र (Limbic system) (आकृति 3), जिसे भावात्मक मस्तिष्क (Emotional brain) भी कहा जाता है, स्मृति प्रतिधारण (retention) तथा प्रत्यास्मरण (recall) स्मृति में एक बड़ी भूमिका का निर्वाह करता है।

हिप्पो कैम्पस (Hippocampus), जो कि अंग तन्त्र का एक भाग है, इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह पाया गया है कि जब इसे हटा दिया जाता है तो व्यक्ति नई सूचना का प्रत्यास्मरण करने की योग्यता खो देता है। पुन:, कहा जाता है कि अंग तन्त्र (Limbic system) भय, क्रोध, सुख, दु:ख आदि जैसे

व्यक्तिनिष्ठ अनुभव तथा उनके वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति में अपनी भूमिका निभाता है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि लिंबिक सिस्टम के प्राथमिक सम्बन्ध एमिग्डैला (amygdala) तथा अधश्चेतक (Hypothalamus) से है।

मानव प्रमस्तिष्क का दाहिना तथा बायाँ गोलार्ध समरूप कार्य नहीं करते। प्रत्येक गोलार्ध की उसकी अपनी विशेषतायें हैं। बायें गोलार्ध में भाषा तथा विचार की अभिव्यक्ति की विशेषता तथा कुशल गतियों के नियन्त्रण पर प्रभुत्व रखने की विशेषता है।

प्रत्येक गोलार्ध में प्रान्तस्था के कतिपय क्षेत्र एक विशिष्ट कार्य में संलग्न रहता है। यह कार्य क्या है यह इस बात पर निर्भर होता है कि किस प्रान्तस्थीय क्षेत्र से वह आवेग प्राप्त करता है। प्रान्तस्था के क्षेत्रों में से कुछ क्षेत्र कायिक-संवेदी क्षेत्र (Somatic-sensory area) कहलाते हैं, क्योंकि वे शरीर के लगभग सभी भागों में अवस्थित संग्राहक (receptor) से ताप, शीत, स्पर्श आदि द्वारा उद्दीप्त आवेगों को प्राप्त करते हैं। एक अन्य क्षेत्र — प्रेरक क्षेत्र (Motor area) कहलाता है क्योंकि वह कंकाल पेशियों को उद्दीप्त करने के लिये आवेग भेजता है। अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं 'श्रवण क्षेत्र' (Auditory area) तथा 'प्राथमिक दृष्टि क्षेत्र' (Primary visual area)।

एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मस्तिष्क में स्थित अन्तग्रंथनों (Synapses) में सेरोटोनिन (Serotonin) जैसे अनेक महत्वपूर्ण रासायनिक प्रेषित्र (Transmitter) होते हैं।

प्रमस्तिष्क को आवेग भेजने का रिले स्टेशन — 'चेतक' है

संक्षेप में प्रमस्तिष्क (Cerebrum) के विशेष कार्यों का वर्णन कर चुकने के पश्चात् हम यह कहना चाहते हैं कि प्रमस्तिष्क के ये कार्य यद्यपि महत्वपूर्ण हैं, तथापि प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था को संवेदी आवेग (जो कि प्रमस्तिष्क के बड़े भाग के कार्य के लिये आधारभूत सामग्री हैं) भेजने का रिले स्टेशन (relay station) 'चेतक' (Thalamus) है। अनेक अक्षतन्तु (Axons) आवेगों को मेरुरज्जु (Cord) तथा मस्तिष्क वृन्त (Brainstem) से चेतक (Thalamus) को संवाहित करते हैं।

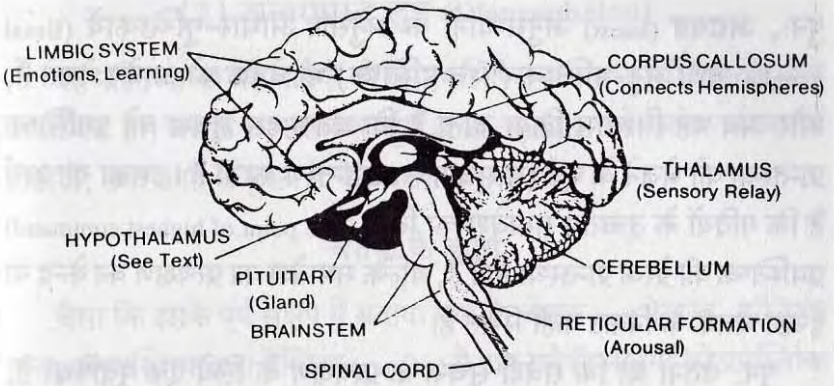

आकृति 3- प्रधान क्षेत्रों सहित दक्षिणी गोलार्ध का मध्य रेखा दृश्य तथा उनके कार्य यहाँ दर्शाये गये हैं। जालमय रचना, चेतक, महा संयोजक, पियूष ग्रंथि, अधश्चेतक, अंग तन्त्र तथा मस्तिष्क वृन्त यहाँ दर्शाये गये हैं।

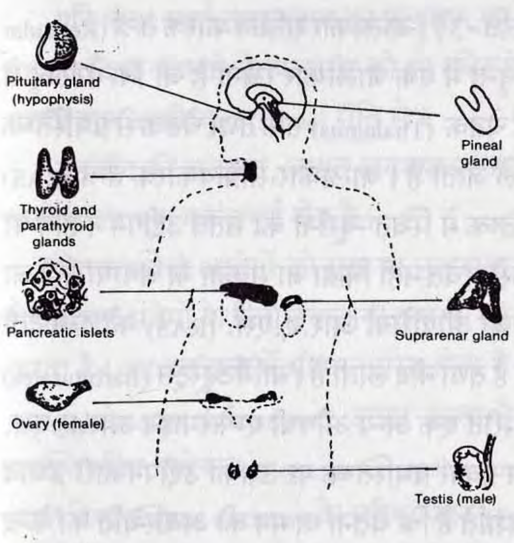

आकृति 4- यह आकृति अन्तःस्रावी ग्रंथियों की सामान्य अवस्थिति दर्शाती है। ये हार्मोन स्रावित करते हैं जिनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। पियूष ग्रंथि को प्रधान ग्रंथि समझा जाता है, जो इन सभी का नियन्त्रण करती है। किन्तु पियूष ग्रंथि अधश्चेतक द्वारा नियन्त्रित होती है जो कि मस्तिष्क का एक भाग है।

पश्च पियूष ग्रंथि अधश्चेतक का एक उद्धर्ध है और अब अधश्चेतक को शरीर में आधारभूत समन्वय केन्द्र समझा जाता है। पश्च पियूष ग्रंथि का तथा अधश्चेतक का वृत्त एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ मस्तिष्क को जाने वाले तथा मस्तिष्क से आने वाले और फिर ऊतकों को जाने वाले अनेक संकेत आवेगों का विनिर्दिष्ट क्रियाओं के लिये समन्वय होता है। वह एक ऐसा क्षेत्र भी है जहाँ तन्त्रिकीय तथा रासायनिक क्रियाओं के बीच विनिर्दिष्ट समन्वय होता है। अग्र पियूष ग्रंथि आठ महत्वपूर्ण हार्मोन स्रावित करते हैं, जिनमें से एक हार्मोन 'वृद्धि हार्मोन' कहलाता है, क्योंकि वह पूर्वत्तर अवधि में सामान्य ऊतक विकास के लिये अनिवार्य है। पियूष ग्रंथि कम से कम 15 महत्वपूर्ण हार्मोन स्रावित करती है।

पुनः, अद्यवत (latest) अनुसन्धानों के अनुसार आधार-गुच्छिकायें (Basal ganglia) तथा अनु-मस्तिष्क (पश्च मस्तिष्क) भी चेतक को आवेग भेजते हैं, और अब यह विश्वास किया जाता है कि चेतक इस सूचना को प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था को भेजने के पूर्व इस सूचना का उपान्तरण करता है। इसका यह अर्थ है कि गतियों के उच्चतम समावेश का बिन्दु (The point of highest command) प्रमस्तिष्क की प्रेरक प्रान्तस्था नहीं है, बल्कि समावेश का प्रत्यक्षण का केन्द्र या इच्छा चेतक के निकट कहीं स्थित है।

पुनः चेतना जो कि संवेदी सूचना के प्रत्यक्षण के लिये एक पूर्वापेक्षा है, उसके बारे में एक ज्ञात तथ्य यह है कि प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था के न्यूरॉनों में उसकी अभिव्यक्ति उसके द्वारा जालकार सक्रिय कारक तन्त्र से, जिसे संक्षेप में आर.ए.एस. (RAS) कहा जाता है, एक रिले द्वारा उस तक संवाहित आवेगों से जुड़ी हुई होती है (देखिए आकृति-3)। जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र (Reticular activating system) मस्तिष्क वृन्त में एक जालाकार रचना है जो कि मेरुरज्जू से आवेग प्राप्त करती है तथा उन्हें चेतक (Thalamus) तक तथा चेतक से प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था के सभी भागों तक ले जाती है। जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS) के निकले आवेगों द्वारा प्रमस्तिष्क में स्थित न्यूरॉनों का सतत उद्दीपन न होने पर व्यक्ति अचेतन रहता है तथा उसे सचेत नहीं किया जा सकता या जगाया नहीं जा सकता। यह पाया गया है कि जो औषधियाँ आर.ए.एस. (RAS) को दबा देती हैं वे सतर्कता को कम कर देती हैं तथा नींद लाती हैं। बार्बिट्यूरेट्स (Barbiturates) यही कार्य करते हैं। इसके विपरीत एक अन्य औषधी एम्फेरेमाइन आर.ए.एस. को उद्दीप्त कर देती है और इस प्रकार प्रमस्तिष्क पर उसका उद्दीपनकारी प्रभाव होता है। ये तथ्य स्पष्टतः यह दर्शाते हैं कि चेतना या मन की अवस्थिति का केन्द्र प्रमस्तिष्क में नहीं है बल्कि एक ऐसे बिन्दु में है जो कि आर.ए.एस., मस्तिष्क वृन्त, चेतक तथा प्रमस्तिष्क से जुड़ा हुआ है। यह बिन्दु, जैसा कि हम बाद में दर्शायेंगे अधश्चेतन (Hypothalamus) है। अब हम मस्तिष्क का एक अन्य भाग अन्तरामस्तु लुंग (Diencephalon) पर चर्चा करेंगे।

(2) अन्तरामस्तु लुंग (Diencephalon)

यह मस्तिष्क का वह भाग है जो कि प्रमस्तिष्क तथा मध्य मस्तिष्क के बीच अवस्थित है। यद्यपि अन्तरामस्तु लुंग (Diencephalon) में अनेक संरचनायें होती हैं, तथा उनमें से मुख्य हैं चेतक तथा अधश्चेतक।

चेतक के कार्य

जैसा कि इसके पूर्व संक्षेप में बताया गया है, चेतक — मेरुरज्जू, मस्तिष्क वृन्त, अनुमस्तिष्क तथा गैंग्लिया (ganglia) से प्राप्त संवेदी आवेगों को प्रमस्तिष्क को भेजता है। संग्राहक से प्राप्त आवेग चेतक में पहुँचने पर और अधचेश्तक तथा आर.ए.एस. के समन्वय से चेतन अभिज्ञान उत्पन्न करते हैं — जैसे कि तापमान, स्पर्श आदि के।

यदि पीड़ा स्पर्श तथा दबाव का प्रत्यक्षण करने वाले प्रान्तस्था के केन्द्रों को नष्ट कर दिया जाए तो चेतक शरीर को इन संवेदनों से अभिज्ञ बनाने में सक्षम है, यद्यपि एक अपरिष्कृत (crude) रीति से।

वह नींद की अवस्था, जागृत अवस्था या जागने की अवस्था का अवधारण करने वाला एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

चेतक संवेदी आवेगों को सुख या सुखदाता या असुखदाता की भावनाओं से जोड़कर संवेगों के लिये उत्तरदायी तन्त्र के एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह उस तन्त्र में भी अन्तर्ग्रस्त होता है जो कि जटिल प्रतिवर्त गतियाँ (Complex reflex movements) उत्पन्न करता है। रस्से जैसी संरचनायें उत्तम प्रमस्तिष्कीय पन्डेकल (Superior cerebellar pundacles), जो कि मध्य ब्रेन के लाल केन्द्रक (Red nucleus) के ज़रिए स्थान (Tracts) बनाते हैं, चेतक से जुड़े हुए होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेरक प्रान्तस्था को अनुमस्तिष्क से जोड़ने वाले एक केन्द्र के रूप में तथा इस प्रकार एक एक्सचेन्ज के रूप में कार्य करने वाला तथा प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था को सतर्क तथा सजग रखने में सहायता पहुँचाने वाला, संवेदी सूचना को आगे भेजने के लिये 'चेतक' एक बहुत महत्वपूर्ण

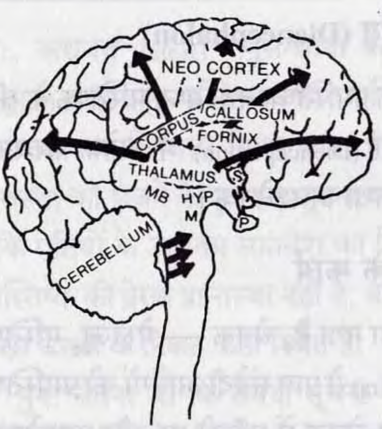

Neo Cortex= नव प्रान्तस्था
Carpus Callosum= महासंयोजक
Fornix = फार्निक्स
Thalamus = चेतक
Cerebellum= अनुमस्तिष्क
R.F. = जालमय रचना
P. = पियूष ग्रंथि
S = सेप्टल नाभिक
Hyp = अधश्चेतक
M = स्तनांभ पिंड
MB = मध्य मस्तिष्क

आकृति 5 *- मस्तिष्क की समह के सम्बन्ध में अध्यारोपित गहरी संरचानाओं सहित मस्तिष्क के भीतर का पार्श्व दृश्य यह दर्शाता है कि चेतक एक रिले स्टेशन का कार्य करता है। वह जालमय रचना (R.F.), मध्य मस्तिष्क (MB), स्तनांभ पिंड (M), अधश्चेतक (Hyp), फार्निक्स तथा नव-प्रान्तस्था को भी दर्शाता है।*

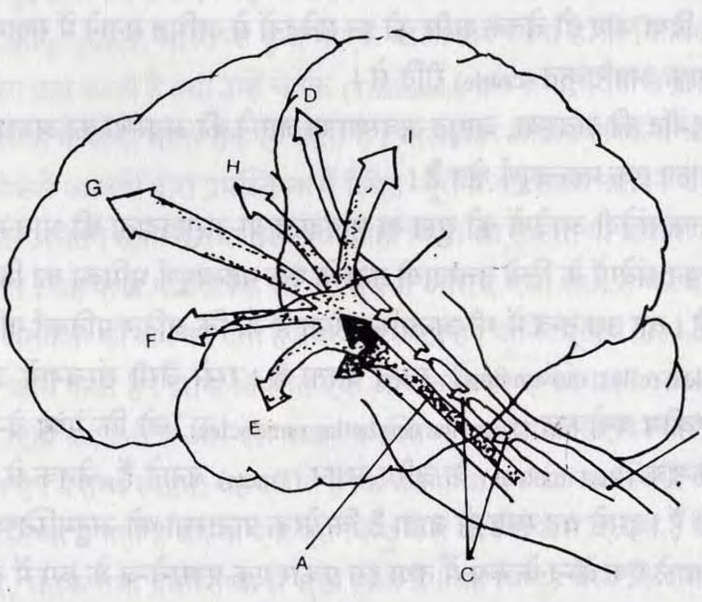

आकृति 6 *- (संवेदी मार्गों -बी- से निकलने वाले आवेग जालमय रचना द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। मस्तिष्क वृन्त से गुजरते हुए वे ऊपर की ओर प्रान्तस्था में स्थित संवेदी संग्राही क्षेत्र को जाते हैं। चेतक तथा विशिष्टत: अधश्चेतक इसमें बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।)*

केन्द्र है। इसका यह अर्थ है कि चेतना का केन्द्र एक ऐसे केन्द्र में अवस्थित है जो कि चेतक से घनिष्टत: जुड़ा हुआ है।

अधश्चेतक

यद्यपि अधश्चेतक (Hypothalamus) मस्तिष्क का एक छोटा केन्द्रकीय क्षेत्र है, तथापि वह उत्तरजीविता तथा उपभोग दोनों ही के अत्याधिक महत्वपूर्ण अनेक कार्य करता है। वह चेतक के नीचे अवस्थित है। उसमें अनेक संरचनायें अन्तर्विष्ट हैं, जिनमें से प्रमुख संरचनायें पिटुइटरी ग्रंथि (Pituitary gland), पिटुइटरी ग्रंथि की पीछे की डंठल (posterior lobe), स्तनाभपिंड (Mamillary bodies) की पश्च पालि, अधि-दृष्टि नाभि, (Supra-optic nuclei) तथा परा-निलय नाभि (Para-ventricular nuclei) हैं। उसमें ऐसे क्षेत्र हैं जो कि खाने, पीने, प्रजनन करने आदि जैसे प्राथमिक प्रेरणाओं के लिये सुख-केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं।

अधश्चेतक उच्चतर स्वायत्त केन्द्र के रूप में भी कार्य करता है। न्यूरॉनों के एक्सन, जो कि अधश्चेतक में स्थित होते हैं मस्तिष्क-वृन्त में स्थित परानुकम्पी (Para-sympathetic) तथा अनुकम्पी (sympathetic) दोनों ही केन्द्रों तक विस्तृत होते हैं इसलिये अधश्चेतक से उत्पन्न होने वाले आवेग आनुक्रमिक रूप में तथा एककालिक रूप में कुछ या अनेक स्वायत्त केन्द्रों को उद्दीप्त कर सकते हैं तथा अवरोधित कर सकते हैं।

यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अधश्चेतक में ऐसे केन्द्र होते हैं जो कि शरीर के विशिष्ट कार्यों को उद्दीप्त भी कर सकते हैं तथा अवरोधित भी कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक केन्द्र हृदय की धड़कन की दर को बढ़ाकर रक्त चाप को बढ़ा सकता है, जबकि कोई अन्य केन्द्र उसे अवरोधित कर सकता है, तथा हृदय की धड़कन की दर को कम कर सकता है तथा रक्त चाप को कम कर सकता है। इस प्रकार वह सम्पूर्ण शरीर में स्वायत्त क्रिया-कलाप तथा इस प्रकार वह सम्पूर्ण शरीर में आन्तरांग प्रेरणा चालकों (Visceral effectors) या प्रेरक तान्त्रिकाओं का नियन्त्रण तथा एकीकरण करने में सहायता पहुँचाता है। वह शरीर के तथाकथित कायिक अनुक्रियाओं (Vegetative responses) को, जिनमें तापमान-विनियम

अनुक्रिया (Temperature-regulatory) शामिल है, नियन्त्रित करने के लिये प्रत्यक्षत: उत्तरदायी है।

पुनः, अधश्चेतक प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था तथा निम्नतर स्वायत्त तन्त्रिकाओं के बीच प्रधान रिले स्टेशन है। प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था में स्थित विभिन्न केन्द्रों से निकलने वाले आवेग अधश्चेतक में होते हैं तथा वहाँ से वे मस्तिष्क-वृन्त में स्थित स्वायत्त केन्द्रों को संवाहित होते हैं। **इस प्रकार वह मानस (मन) तथा काया (शरीर) के बीच की एक कड़ी के रूप में कार्य करता है (देखिए आकृति-6)।**

इसके अतिरिक्त, अधश्चेतक उस मार्ग का एक महत्वपूर्ण भाग प्रदान करता है जिसके द्वारा संवेग स्वयं को परिवर्तित शारीरिक कार्यों में अभिव्यक्त कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, वह तन्त्रिका-पथ (The neural pathways) में एक बहुत महत्वपूर्ण रिले स्टेशन है, जो कि शरीर पर मन के प्रभाव को संभव बनाता है जिससे, वह यदि अन्य अंशदायी कारक वहाँ हों, मनो-कायिक (Pychosomatic) रोग उत्पन्न कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, अधश्चेतक के कतिपय केन्द्रों में स्थित कुछ न्यूरॉन कतिपय महत्वपूर्ण हार्मोनों को संश्लेषित करते हैं तथा इस प्रकार अन्त:स्रावी ग्रंथि (Endocrine gland) के रूप में कार्य करता है। वे इन हार्मोनों को पिटुइटरी प्रधान ग्रंथि में उंडेलते हैं। इन हार्मोनों को नियुक्त करने का कार्य एन्टीरियटर (anterior) पिटुइटरी द्वारा होने वाले कतिपय हार्मोनों के निर्मोचन को नियन्त्रित करता है, और इस प्रकार वह यौन ग्रंथियों (Sex glands) गल ग्रंथियों (Thyroid glands) तथा अधिवृक्क ग्रंथियों (Adrenal glands) द्वारा होने वाले हार्मोन स्राव को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार, अप्रत्यक्षत:, अर्थात् पिटुइटरी के ज़रिए अधश्चेतक शरीर की प्रत्येक कोशिका की कार्यप्रणाली को नियन्त्रित करने में सहायता पहुँचाता है। मानव प्रजनन, शरीर की वृद्धि आदि प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उसके नियन्त्रणाधीन हैं।

पुनः अधि-दृष्टि केन्द्रक तथा परा-निलय तथा अधश्चेतक के केन्द्रक पश्च पिटुइटरी द्वारा स्त्रावित हार्मोनों को भी संश्लेषित करते हैं। इनमें से एक हार्मोन मूत्र के उत्सर्जन के परिमाण को प्रभावित करता है तथा इस प्रकार जल के सन्तुलन को कायम रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वस्तुतः अधश्चेतक पिटुइटरी ग्रंथि से, जिसकी नाजुक डंठल अधश्चेतक के मध्य भाग का निर्माण करती है, इतनी घनिष्ठ रूप में जुड़ा हुआ है कि न केवल वे मिलजुल कर कार्य करते हैं बल्कि हम यह कह सकते हैं कि अधश्चेतक तथा पिटुइटरी ग्रंथि के बीच का विभाजन कुछ मनमाना है, क्योंकि पिटुइटरी की पश्च पालि अधश्चेतक का एक भाग है।

अधश्चेतक का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह प्रति-पोषण (Feed Back) के विवेकपूर्ण प्रयोग द्वारा अर्थात् अपने प्रभावी कार्यकरण की सूचना स्वयं अपने को वापस देकर ताकि यदि आवश्यक हो तो वह स्वयं अपनी क्रिया को रूपान्तरित कर सके, अनेक क्रिया-कलाप का विनियमन करता है। इस विशेष योग्यता के कारण वह शरीर में समुचित मात्रा में जल रखने के लिये कार्य कर सकता है तथा अनेक अन्य बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है।

जागृत अवस्था को कायम रखने में अधश्चेतक का कार्य अधिक महत्वपूर्ण है। रोगनिदानात्मक साक्ष्य यह दर्शाता है कि तन्द्रा की अवस्था (Somnolence) कुछ अधश्चेतकीय विकृतियों के कारण उत्पन्न होती है।

अधश्चेतक का एक अन्य सारभूत कार्य यह है कि वह क्षुधा तथा भोजन ग्रहण की मात्रा को विनियमित करने वाले तन्त्र का एक भाग है और वह उस तन्त्र का भी एक भाग है जो कि शरीर के तापमान को कायम रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

इस प्रकार, सभी दृष्टियों से, ऐसा प्रतीत होता है कि अधश्चेतक को 'मस्तिष्क केन्द्र' होने का औचित्य सिद्ध होता है। 'चेतक' तथा मस्तिष्क-वृन्त के समर्थन से वह मन या आत्मा या चेतना तथा शरीर के बीच की अन्तःक्रिया के बिन्दु का आसन होने का एकमात्र शक्य उम्मीदवार है। पिटुइटरी, जिसकी डंठल

अधश्चेतक का भाग है, अक्षि स्वस्तिक (Optic chiasma) के ठीक निकट अवस्थित है और इस प्रकार वह 'तृतीय नेत्र' अर्थात् मन की आँख का स्थान होने की दावेदार है, जिसके ध्यान या जिसकी क्रिया के बिना दो आँखें भी कोई कार्य नहीं कर सकतीं। वह समादेश का केन्द्र भी है जिसे 'हठ योग' में 'आज्ञा चक्र' कहा जाता है। पियूष (Pituitary) पिंछ तथा अधश्चेतक को 'सूक्ष्म शरीर' कहा जा सकता है। उसे हृत या हृदय या हृदय की गुहा भी कहा जा सकता है जहाँ आत्मा निवास करती है, क्योंकि वह तृतीय निलय (The Third Ventricle) के निकट मस्तिष्क, जो कि एक गुहा की तरह है, लगभग केन्द्र (Centre) में है। यह कहा जा सकता है कि यही हृदय है, जिसका कि धर्मग्रंथों में उल्लेख है, क्योंकि वह मस्तिष्क का हृदय है (आकृति 4)। वह इन्द्रियगत प्रत्यक्षण करने, संवेगात्मक अनुभव करने, सोचने, इच्छा करने आदि में एक महत्वपूर्ण या मुख्य भूमिका निभाता है। किन्तु हम निर्णय नहीं लेंगे, क्योंकि हमने अनुमस्तिष्क तथा मस्तिष्क-वृन्त के मामले पर अभी विचार नहीं किया है।

(3) अनुमस्तिष्क

अनुमस्तिष्क के (Cerebellum) तीन सामान्य कार्य हैं। मुख्यत: कंकाल पेशियों (Skeletal muscles) का नियन्त्रण करने के कार्य हैं। अनुमस्तिष्क, पेशियों के समूहों के क्रिया-कलाप के समन्वय द्वारा कुशल गतियाँ उत्पन्न करने के लिये प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था के साथ कार्य करता है। कंकाल पेशियों के नियन्त्रण द्वारा वह सन्तुलन कायम रखता है; वह अंग स्थिति (Posture) के नियन्त्रण में सहायता पहुँचाता है। वह गतियों को झटकेदार के बजाय सुचारु , कांपते हुए के बजाय स्थिर, अटपटे तथा असमन्वित के बजाय समन्वित बनाने के लिये चेतना के स्तर के कुछ नीचे कार्य करता है। इस प्रकार वह पेशी क्रिया अंग स्थियात्मक प्रतिवर्ती के उत्तेजन तथा अवरोध के साहचर्य का नियन्त्रण करने तथा सन्तुलन को कायम रखने का कार्य करता है। प्रमस्तिष्क से निकले हुए आवेग क्रिया को आरम्भ कर सकते हैं, किन्तु अनुमस्तिष्क से निकले हुए आवेग विभिन्न पेशियों का आकुंचन तथा शिथिलन एक बार आरम्भ हो जाने पर उनमें साहचर्य तथा

समन्वय स्थापित करते हैं।

इस प्रकार, समाहार करते हुए हम यह कह सकते हैं कि अनुमस्तिष्क का मुख्य कार्य — विभिन्न पेशियों की क्रिया का समन्वय करना और सन्तुलन कायम रखना है और यह कारण उसे मन या चेतना का आसन मानने के लिये पर्याप्त नहीं है।

(4) मस्तिष्क वृन्त — अन्तस्था, पोन्स तथा मध्य मस्तिष्क

अन्तस्था (Medulla) — जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अन्तस्था, पोन्स (Pons) तथा मध्य-मस्तिष्क (The Mid-brain) से मस्तिष्क-वृन्त का गठन होता है। जैसे-जैसे मेरुरज्जू (Spinal cord) महारन्ध्र (Foramen magnum) के ज़रिए तत्काल ऊपर की ओर जाता है, वह ऊतकों के त्रिकोणीय मास के एक कंद (Bulb) के रूप में विस्तृत हो जाता है; यह मेडुला है। मेडुला स्थित केन्द्रक (Nuclei) में अनेक प्रतिवर्त केन्द्र होते हैं। इनमें से कुछ केन्द्र उत्तरजीविता के लिये ऐसे कार्य करते हैं कि वे मार्मिक (Vital) केन्द्र कहलाते हैं। वे हृद (Cordial) केन्द्र, वाहिका प्रेरक (Vasomotor) केन्द्र तथा श्वसन (Respiratory) केन्द्र हैं।

मेडुला में स्थित हृद केन्द्र — हृदय की धड़कन का नियन्त्रण करने वाले (हृदय की धड़कन को धीमा करने वाले) विभिन्न प्रतिवर्तों का केन्द्र है। वाहिका प्रेरक केन्द्र रक्त वाहिकाओं के व्यास या आकार को नियन्त्रित करने के लिये है। जैसा कि सर्वविदित है, पर्यावरण में ऐसे अनेक कारक हैं जो कि यह अपेक्षा करते हैं कि रक्त वाहिकायें (Blood-vessels) अपना आकार परिवर्तित करें। इसे और परिणामी रक्त चाप को मेडुला में स्थित एक अन्य केन्द्र द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। मेडुला में स्थित श्वसन-केन्द्र प्रति मिनट के अन्दर ली गई तथा बाहर निकाली गई साँस की संख्या को नियन्त्रित करता है। यदि अन्दर ली जा रही सांस में ऑक्सीजन कम हो या वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड अधिक हो तो मेडुला रक्त-रसायन द्वारा उद्दीप्त हो जाता है और ऐसे आवेग भेजता है जो कि श्वसन को नियन्त्रित करते हैं, जैसे कि मध्यच्छद (Diaphragm) तथा पर्शुकान्तर पर्शुका पेशियों (Intercoastal rib-muscles) को उनके आकुंचन तथा

शिथिलन की उनकी दर को बढ़ाने के लिये नियन्त्रित करता है। इसी प्रकार, जब हम कोई शारीरिक व्यायाम करते हैं तो हम अधिक तेजी से साँस लेते हैं क्योंकि पेशी की क्रिया कार्बन-डाइऑक्साइड सहित उच्छिष्ट पदार्थ का उच्चतर संकेन्द्रण निर्मित करती है, जिसे द्रुत दर (faster rate) पर हटाना होता है। इस प्रकार रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की वृद्धि अन्तस्था को उद्दीप्त कर देती है और परिणाम-स्वरूप अन्तस्था श्वसन-पेशियों को आवेग ले जाती है जिसके कारण श्वसन दर में वृद्धि हो जाती है।

इसलिये, इन केन्द्रों के कारण अन्तस्था निःसन्देह सम्पूर्ण मस्तिष्क के अत्यन्त मार्मिक भागों में से एक भाग है। वह इतना मार्मिक है कि कोई चोट या बीमारी अन्तस्था के लिये घातक साबित होती है। उदाहरणार्थ, खोपड़ी के मुख्य अवयव पर आघात लगने पर, यदि वह मार्मिक श्वसन केन्द्रों को, आवेगों के संवहन को बाधित कर अन्तस्था में स्थित श्वसन केन्द्रों को चोट पहुँचता हो, तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

पुनः, मेरुरज्जु तथा मस्तिष्क के बीच के सभी प्रक्षेपण मार्गों (Projection tracts) को अन्तस्था से होकर गुजरना होता है। इसलिये अन्तस्था अनेक संवेदी तथा श्वसन-तन्त्रों में कार्य करता है। प्रान्तस्था-मेरु मार्गों के तन्तु अन्तस्था के पिरामिड में एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में जाते हैं तथा इससे स्पष्ट हो जाता है कि मस्तिष्क का एक पार्श्व शरीर दूसरे पार्श्व को क्यों नियन्त्रित करता है।

मस्तिष्क वृन्त के बारे में एक मुख्य बात यह है कि उसका ऊपरी भाग मेरुरज्जू तथा मस्तिष्क के अन्य भागों के बीच संवाहन मार्ग (Conduction pathways) के रूप में कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त, अन्तस्था में उल्टी करना, छींकना, खांसना जैसे अनेक मार्मिक प्रतिवर्तो के लिये कुछ केन्द्र हैं।

अब हम मस्तिष्क-वृन्त के एक अन्य भाग पोन्स पर विचार करेंगे।

(2) पोन्स तथा (3) मध्य मस्तिष्क

अन्तस्था के ठीक ऊपर पोन्स स्थित है। पोन्स में स्थित एक महत्वपूर्ण

जालाकार केन्द्रक (Reticular nucleus) श्वास नियमन केन्द्र (Pneumotaxic centre) कहलाता है। यह भी श्वसन के नियन्त्रण में कार्य करता है। पाँचवीं तथा आठवीं कपलीय तन्त्रिकाओं (Cranial nerves) के केन्द्र पोन्स के ऊपरी भाग में अवस्थित हैं। पोन्स में स्थित श्वाँस नियमन केन्द्र श्वसन के विनियमन में सहायता पहुँचाते हैं।

मध्य मस्तिष्क प्रमस्तिष्क की निम्न सतह के नीचे तथा पोन्स के ऊपर स्थित है। कतिपय श्रवण-प्रतिवर्त (Auditory reflex centre), दृष्टि केन्द्र (Visual centre) मध्य मस्तिष्क के पृष्ठीय भाग में स्थित हैं। मध्य मस्तिष्क जालाकार रचना में एक महत्वपूर्ण केन्द्रक — 'लाल केन्द्रक' (Red nucleus) है। अनुमस्तिष्क तथा प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था की ललाट पालि से निकलने वाले तन्तु यहाँ समाप्त हो जाते हैं, जबकि जो तन्तु मेरुरज्जु के पर्शुका-मेरुदंड मार्गों (Ribospinal tracts) में जाते हैं उनके उद्‌गम की कोशिकायें यहाँ होती हैं। तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं कपालीय तन्त्रिकाओं के नाभिक मस्तिष्क की गहराई में अवस्थित हैं। इसलिये इस भाग का मध्य मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क के बीच प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध के अधोपृष्ठ के साथ तथा मेरुरज्जु के साथ जोड़ने वाली कड़ियाँ होती हैं। इसलिये उसका महत्व स्पष्ट है।

मस्तिष्क-वृन्त का गठन करने वाले भागों अर्थात् अन्तस्था, पोन्स तथा मध्य मस्तिष्क के जिन कार्यों का ऊपर संक्षेप में वर्णन किया गया है, वे महत्वपूर्ण हैं। अन्तस्था (Medulla) में स्थित हृद केन्द्र, वाहिका प्रेरक केन्द्र तथा श्वसन केन्द्र, जो कि हृदय की धड़कन की दर के नियन्त्रण में, रक्त वाहिकाओं के आकार तथा श्वसन दर के नियन्त्रण में मार्मिक भूमिका निभाते हैं, वस्तुत: बहुत महत्वपूर्ण हैं। अन्तस्था से होकर गुजरने वाले मेरुरज्जु तथा मस्तिष्क के बीच के प्रक्षेपण मार्गों के कारण तथा मध्य मस्तिष्क की अन्य विशेषताओं के कारण मस्तिष्क-वृन्त नि:सन्देह बहुत महत्वपूर्ण है। किन्तु ध्यान देने योग्य एक तथ्य यह है कि वह आज्ञा, इच्छा, प्रत्यक्षण आदि का जो कि मन की चेतना के आवश्यक गुण हैं, स्थान नहीं है। तथापि, कोई अन्य बिन्दु, जो कि मन का

आसन है, वह होना चाहिए, जिसका चेतक तथा प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था के साथ सम्बन्ध होने के अतिरिक्त मस्तिष्क-वृन्त अर्थात् अन्तस्था, पोन्स तथा मध्य मस्तिष्क के साथ भी सम्बन्ध होना चाहिए और वह बिन्दु अधश्चेतक है, जैसा कि हम बाद में समझायेंगें।

चेतना या मन के आसन के बारे में अन्तिम निर्णय पर पहुँचने के पूर्व आइये, हम जालाकार, सक्रियाकारक तन्त्र, कायिक तन्त्रिका तन्त्र, तथा स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र पर संक्षेप में विचार करें, ताकि इनके समन्वय तथा संगठन का पूर्ण चित्र प्राप्त हो सके, क्योंकि तभी हम यह निर्णय करने के लिये बेहतर स्थिति में होंगे कि सम्पूर्ण चित्र में मन, चेतना या आत्मा एक पृथक् सत्ता के रूप में कहाँ अवस्थित है।

जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र
(The Reticular Activating System)

जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS) मस्तिष्क-वृन्त के अक्ष पर स्थित है। वह ऊतक का अंगुली के आकार का एक द्रव्यमान है जो कि सतर्कता कायम करने के लिये कार्य करता है। जब वह अनुपस्थित होता है तो उनीन्दापन (drowsiness), नींद या निश्चेतनता (Coma) की अवस्था रहती है। वह आवेगों की एक धारा के साथ, जो कि मस्तिष्क वृन्त में बहुत नीचे से उद्भुत होते हैं तथा चेतक और प्रान्तस्था पर बमबारी करते हैं, प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था की सामान्य क्रिया को विनियमित करता है। जब कोई संवेदी सन्देश संवेदी मार्गों से होता हुआ ऊपर जाता है तो वह ऊपर जाते हुए अपना उद्दीपन मस्तिष्क वृन्त में स्थित जालाकार रचना की ओर शाखित कर देता है और जालाकार रचना अविनिर्दिष्टतः प्रान्तस्था के बड़े भागों को उद्दीप्त करती है। यदि किसी प्राणी के आर.ए.एस. (RAS) में कोई क्षत (Lesions) हो तो वह जड़िमा (Stupor) की अवस्था में चला जाता है। उसे भारी शोर से क्षणिक रूप में जगाया जा सकता है, किन्तु वह पुनः चिरस्थायी नीन्द की अवस्था में लौट जाता है। दूसरी ओर, आर.ए.एस. (RAS) का उद्दीपन मस्तिष्क की संवेदनशीलता तथा सतर्कता को बढ़ा देता है।

आर.ए.एस. (RAS) सतर्कता की अवस्था के श्रेणीकरण या स्फुरण (Toning) द्वारा व्यवहार के एक प्रकार का सामान्य विनियामक का कार्य करता है और वह मस्तिष्क के लिये एक प्रकार के यातायात नियन्त्रण केन्द्र के रूप में कार्य करता है।

पुन: आर.ए.एस. (RAS) भी एक सूक्ष्म रीति से उन प्रक्रियाओं को विनियमित करता प्रतीत होता है, जो प्रक्रियायें बहुत कुछ अवधान (Attention) जैसी प्रतीत होती हैं। चूँकि हम ऐसी वस्तुओं तथा घटनाओं पर ध्यान देते हैं जिनकी कुछ विलक्षणता होती है या जो हमारी उत्सुकता को जगाती हैं या जो हमारे लिये किसी-न-किसी प्रकार से महत्वपूर्ण तथा सारभूत होती हैं। इसलिये इससे यह प्रकट होता है कि चयन की कोई प्रक्रिया अन्तर्ग्रस्त होती है तथा क्या विलक्षण है या सारभूत है या महत्वपूर्ण है इसे जानने के लिये संज्ञान तथा परख की आवश्यकता होती है। अब इस प्रकार की विचार-प्रक्रिया जिसमें चयनशीलता, अन्तर्ग्रस्त होती हैं, तन्त्रिका तन्त्र में अनेक स्तरों पर, उदाहरणार्थ, चेतक, अधश्चेतक में तथा, जैसा कि अनेक वैज्ञानिकों का विश्वास है, प्रान्तस्था में घटित होती है। किन्तु अवधानात्मक तन्त्रों का एक विशिष्टत: महत्वपूर्ण समूह आर.ए.एस. के कार्यकरण से अन्तरंगत: सम्बन्धित है क्योंकि यह पाया जाता है कि जब कोई घटना नित्य प्रति की घटना हो या दोहराई जा रही हो या न तो विलक्षण हो और न ही महत्वपूर्ण हो तो वह समूह भाव-प्रबोधन को अवरोधित कर देता है। अब, यह पाया जाता है कि प्रान्तस्था ही एक 'तन्त्रिकीय प्रतिमान' (Neuronal model) को या किसी दोहराई जा रही घटना को निर्मित करती है और यह उसे उस घटना का अभ्यस्त हो जाने योग्य बनाती है तथा यह अभ्यस्त या एक तन्त्रिकीय प्रतिमान की निर्मिति नीचे की ओर चेतक को एक संकेत भेजती है, जो कि आर.ए.एस. को भाव प्रबोधन के आवेगों को ऊपर की ओर भेजने से अवरोधित करता है।

प्रान्तस्था के भागों द्वारा या चेतक द्वारा बोध-प्रबोधन के आर.ए.एस. के कार्य का अवरोधन यह दर्शाता है कि स्वयं जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS)

चेतक द्वारा, अधश्चेतक द्वारा या चेतक के ज़रिए प्रान्तस्था द्वारा प्रभावित होता है।

इसलिये, मस्तिष्क-वृन्त और उसके विशेष लक्षणों में से एक लक्षण आर.ए.एस. के मामले का संहार करते हुए, हम यह कहेंगे कि चेतना या मन का आसन होने के लिये किसी भी बिन्दु को वह बिन्दु होना चाहिए, जो कि आर.ए.एस. से जुड़ा हुआ हो। इन सभी कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि मन या चेतना या आत्मा को अधश्चेतक में या अधश्चेतक के निकट अवस्थित होना चाहिए।

आइये, अब हम कायिक (Somatic) तथा प्रेरक (Motar) तन्त्रिका तन्त्र पर संक्षेप में विचार करें।

कायिक तन्त्रिका तन्त्र (Somatic nervous system)

कायिक तन्त्रिका तन्त्र (Somatic nervous system) पर शीर्षक 'संवेदी मार्ग' तथा 'प्रेरक मार्ग' के अन्तर्गत चर्चा की जा सकती है तथा यह देखा जा सकता है कि वे तन्त्र के साथ मिलकर किस प्रकार कार्य करते हैं।

संवेदी तन्त्रिका मार्ग संवेदी न्यूरॉनों के रिले से मिलकर बने हुए हैं, जो कि शरीर के किसी भी भाग से उत्पन्न होने वाले आवेगों को मेरुरज्जु या मस्तिष्क वृन्त तक ले जाते हैं और केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के इन निम्नतर स्तरों से प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था के कायिक संवेदी क्षेत्र तक ले जाते हैं।

प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था की ओर जाने वाले संवेदी मार्ग अधिकांश भाग में तिर्यकित (Crossed) मार्ग हैं, जिसके कारण मस्तिष्क का प्रत्येक पार्श्व शरीर के दूसरे भाग से संवेदन अंकित करता है।

तन्त्रिका मार्ग उन आवेगों को संवाहित करते हैं जो कि सुख, पीड़ा, ताप, शीत, दो-बिन्दु विभेद, भार-विभेद, आकार, आकृति, ग्रथन, ठीक-ठाक अवस्थित, कंपनों आदि के संवेदन उत्पन्न करते हैं जो कि किसी वस्तु के बारे में अभिज्ञ होने के लिये अनिवार्य हैं। किन्तु, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, ये संवेदन मस्तिष्क वृन्त में स्थित चेतक तथा अन्तस्था से जुड़े हुए होते हैं

और चेतक तथा मस्तिष्क वृन्त अधश्चेतक से जुड़े हुए होते हैं। इसलिये, अधश्चेतक का महत्व स्पष्ट है।

(क) कायिक प्रेरक मार्ग (Somatic Motor pathways)

कायिक प्रेरक मार्ग (Somatic Motor pathways) उन प्रेरक-न्यूरॉनों से बने हुए हैं, जो कि आवेगों को केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र से कायिक संवेदन ग्राहियों (Somatic effectors) की ओर अर्थात् कंकाल पेशियों की ओर ले जाते हैं।

प्रेरक मार्ग प्रान्तस्था के प्रेरक क्षेत्रों, आधार-गुच्छिका (Basal ganglia), चेतक, अनुमस्तिष्क तथा मस्तिष्क-वृन्त के बीच भी रिले बना लेते हैं, जैसा कि संवेदी मार्गों के बारे में कहा गया था। इसका यह अर्थ है कि मार्ग मात्र मार्ग हैं, जो कि प्रान्तस्था, चेतक आदि के लिये उनके कार्य करने के लिये अनिवार्य है, चेतना के आसन नहीं हैं, जो कि चेतक, अधश्चेतक या मस्तिष्क-वृन्त के स्तर पर दिखाई देती है।

आइये, अब हम प्रतिवर्त क्रियाओं पर विचार करें।

(ख) प्रतिवर्त (Reflexes)

मेरुरज्जु, कपालीय तन्त्रिकाओं द्वारा हस्तक्षेपित प्रतिवर्तों (Reflexes) के सिवाय सभी प्रतिवर्तों में कार्य करता है। शब्द 'प्रतिवर्त केन्द्र' का शब्दश: अर्थ है एक प्रतिवर्त चाप या चाप में स्थित वह स्थान जहाँ प्रवेशी संवेदी आवेग बहिर्गामी प्रेरक आवेग बन जाते हैं। मेरुरज्जू के धूसर पदार्थ में अनेक प्रतिवर्त केन्द्र होते हैं। कुछ प्रतिवर्त केन्द्र संवेदी तथा प्रेरक न्यूरॉनों के बीच मात्र अन्तर्ग्रथन (Synapses) हैं जबकि अन्य प्रतिवर्त केन्द्र संवेदी तथा न्यूरॉनों के बीच अन्त: स्थित अन्त: न्यूरॉन हैं।

कोई प्रतिवर्त क्रिया किसी उद्दीपन के प्रति, चाहे वह सचेतन हो या नहीं, कोई अनुक्रिया होती है। इस शब्द का उपयोग स्वैच्छिक या प्रत्यक्षत: इच्छित अनुक्रिया के बजाय अनैच्छिक अनुक्रिया का अर्थ देने के लिये किया जाता है, अर्थात् प्रतिवर्त क्रिया में सामान्यत: प्रमस्तिष्की प्रान्तस्था की क्रिया अन्तर्ग्रस्त

नहीं होती।

कोई प्रतिवर्त क्रिया या तो पेशी-आकुंचन या ग्रंथि स्राव से बनती है। 'कायिक प्रतिवर्त' कंकाल पेशियों के आकुंचन हैं, जबकि स्वायत्त प्रतिवर्त (Autonomic reflexes) या आन्तरांग प्रतिवर्त (Visceral reflexes) या तो सरचल आकुंचन या हृद पेशियों के आकुंचन से या ग्रंथियों द्वारा किए गये स्राव से बनते हैं।

प्रतिवर्त चाप या प्रतिवर्त क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन अप्रत्यक्षत: मेरुरज्जु तथा मस्तिष्क-वृन्त का महत्व बताता है क्योंकि वे मेरुरज्जु या कपालीय तन्त्रिकाओं से सहयोजित हैं।

कायिक संवेदी मार्गों, प्रेरक मार्गों तथा प्रतिवर्त चापों का कार्यकरण भी हमें इस बात की जानकारी देता है कि केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र अन्य तन्त्रों के साथ मिलकर कैसे कार्य करता है, जिससे हम अन्तत: यह सोचने के लिये प्रेरित होते हैं कि चेतना का बिन्दु अधश्चेतक में या अधश्चेतक के निकट अवस्थित है, जो कि इन सभी से जुड़ा हुआ है।

(ग) स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र (The autonomic nervous system)

शरीर में केवल एक तन्त्रिका तन्त्र है। किन्तु उसके दो प्रधान भाग हैं — (एक) **कायिक तन्त्रिका तन्त्र** (Somatic nervous system) तथा (दो) **स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र** (Autonomic nervous system) । कायिका तन्त्रिका तन्त्र पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

तन्त्रिका तन्त्र का वह भाग जो कि स्वायत्त रूप में सरल पेशी आकुंचन, हृद पेशी आकुंचन तथा ग्रंथि स्राव जैसी क्रियाओं का नियन्त्रण करता है वह 'स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र' कहलाता है।

स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र प्रेरक तन्त्रिकाओं से बना हुआ है, जो कि केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र से उत्पन्न होने वाले आवेगों को आन्तरांग संवेदन ग्राहियों की ओर संवाहित करती हैं, जिसमें हृदय, रक्त वाहिकाओं, तारा परिवेश (Iris), रोमक पेशियों (Ciliary muscles), केश पेशियों, विभिन्न वक्षीय पेशियों तथा उदरीय

अंगों तथा शरीर की अनेक ग्रंथियों का समावेश है। ये सभी अस्वैच्छिक रूप से अर्थात् हमारे न चाहने पर भी या अधिकांश समय तक उनके प्रति सचेतन रहे बिना भी तन्त्रिकोत्तेजित हो जाते हैं।

तन्त्रिका तन्त्र का यह भाग दो खण्डों में विभाजित है — अनुकंपी (Sympathetic) तथा परानुकंपी (Parasympathetic) । स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र एक पृथक् तन्त्र नहीं है, बल्कि समग्र तन्त्र का एक भाग है और दोनों प्रकार के तन्त्रिका तन्त्र शरीर के कार्य करने वाले भागों के अनेक क्रिया-कलाप का एकीकरण करते

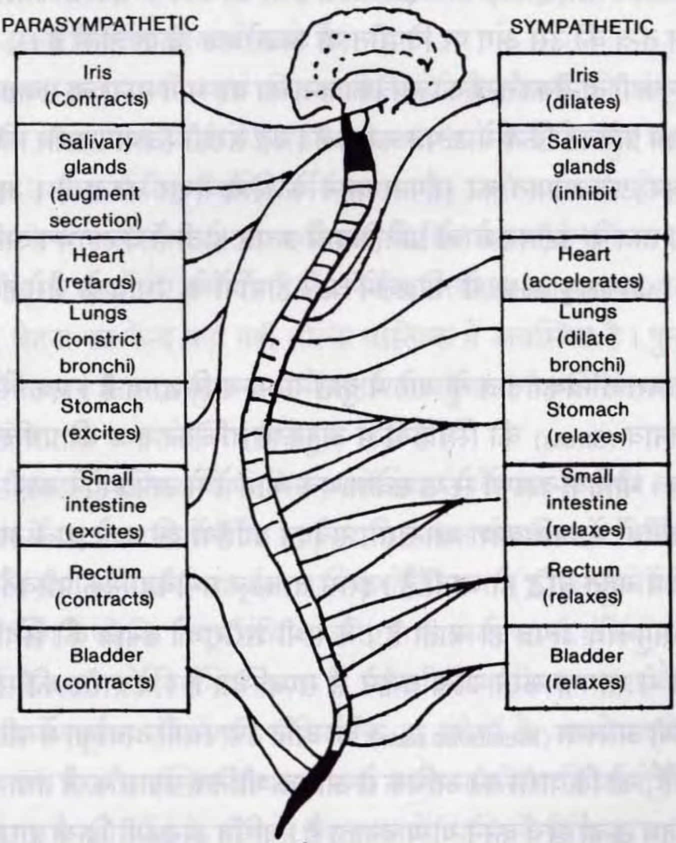

आकृति 7- इस आकृति में स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के संघटकों को तथा विभिन्न अंगों पर उनकी क्रिया को दर्शाया गया है। अनुकंपी तन्त्र एवं परानुकंपी तन्त्र के प्रभाव में एक-दूसरे के विपरीत होते हैं।

हैं। आकृति 6 में स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र द्वारा नियन्त्रित संरचनायें दर्शाई गई हैं। आवेग आन्तरांग (हृदय, रक्त वाहिकायें, तारा परिवेश आदि) में उत्पन्न होते हैं तथा मेरुरज्जु को और फिर समन्वय तथा एकीकरण के लिये मस्तिष्क को संप्रेषित किए जाते हैं। उसके पश्चात् उच्चतर मस्तिष्क केन्द्र तथा उस विशिष्ट अंग को सुधारने या प्रभावित करने के लिये आन्तरांग को आवेग वापस भेजते हैं।

दो भागों अनुकंपी तथा परानुकंपी की क्रियायें विपरीत होती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र किसी विशिष्ट अंग (उदाहरणार्थ, हृदय) को उद्दीप्त करता है तो अधिकांश मामलों में परानुकंपी तन्त्रिका तन्त्र की उस अंग पर विपरीत या अवरोधक क्रिया होती है।

अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र को तन्त्रिका तन्त्र का वह भाग माना जा सकता है जो कि संरक्षी प्रतिवर्त क्रियायें उत्पन्न करता है। यह संरक्षी स्वभाव शरीर को ऊर्जा प्रदान कर उसे आपात का सामना करने के लिये तैयार करता है। अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र के उद्दीपन से जो प्रतिक्रियायें उत्पन्न होती हैं वे लगभग अधिवृक्क ग्रंथियों (Adrinal glands) से निकलने वाले हार्मोनों के प्रभाव के जैसे ही होती हैं।

स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के बारे में कुछ सामान्य सिद्धान्त हैं। एक सिद्धान्त है— तनाव (Stress) की स्थितियों में अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र की प्रबलता का सिद्धान्त। भौतिक कारणों से या संवेगात्मक कारणों से उत्पन्न होने वाली तनाव की स्थितियों में अधिकांश आन्तरांग संवेदन ग्राहियों को जाने वाले अनुकंपी आवेगों में बहुत वृद्धि हो जाती है। इससे तत्काल मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों का सम्पूर्ण समुच्चय उत्पन्न हो जाता है। वे सभी शरीर को तनाव की स्थिति का मजबूती से सामना करने योग्य बनाने से सम्बन्धित हैं। वे शरीर की सामान्य उपापचयी अवस्था (Metabolic state) को अति उपापचयी अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं, जो कि शरीर को अधिक से अधिक भौतिक प्रयास करने तथा अपनी अधिकतम ऊर्जा खर्च करने योग्य बनाता है। वर्धित अनुकंपी क्रिया द्वारा इतनी शीघ्रता से प्रेरित इस समूह के परिवर्तन एक साथ मिलकर एक एकीकृत अनुक्रिया

का गठन करते हैं, जिसे अनुकंपी-अधिवृक्क अनुक्रिया, प्रतिरक्षा चेतनावनी प्रतिक्रिया या कैनन (Cannon) के शब्दों में 'लड़ने या पलायन करने की प्रतिक्रिया' (Fight or Flight Reaction) कहा जाता है। उनमें से विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन हैं हृदय की धड़कन की दर में, रक्त चाप में, ऑक्सीजन के उपभोग में, श्वसन में सुस्पष्ट वृद्धि और बहुधा तनाव की भावना।

अनुकंपी आवेग प्राय: तनाव की स्थितियों में अधिकांश आन्तरांग संवेदन ग्राहियों के नियन्त्रण में अधिभावी होते हैं, किन्तु हमेशा नहीं। 'स्वायत्त तन्त्र' पूर्णत: स्वायत्त नहीं हैं। केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के उच्चतर स्तरों पर अवस्थित न्यूरॉन उसके नियन्त्रण में कार्य करते हैं।

स्वायत्त तन्त्र उसकी स्वयं की रक्षा के लिये और तैयारी की अवस्था के लिये तथा अत्याधिक तैयारी की अवस्था के अवरोधन के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। ऊपर उसका जो विहंगावलोकन किया गया है, उससे यह प्रकट होता है कि मस्तिष्क के स्तर पर समन्वय तथा एकीकरण के बिना वह कार्य नहीं कर सकता, जिसका दूसरे शब्दों में अर्थ यह है कि निर्णय, प्रत्यक्षण या समन्वय का केन्द्र अर्थात् चेतना का केन्द्र यहाँ नहीं बल्कि मस्तिष्क में अवस्थित है। पुन:, वह ग्रंथियों के कार्य के साथ कुछ करने में सहायता पहुँचाता है, जो कि आरम्भत: पियूष ग्रंथि तथा अधश्चेतक द्वारा उद्दीप्त होती है।

इस प्रकार, मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा उनके अपने-अपने कार्यों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि (1) यद्यपि प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट कार्य है तथापि सभी भाग समन्वयपूर्वक कार्य करते हैं, तथा (2) अधश्चेतक शरीर का वह भाग है जो कि पियूष ग्रंथि के ज़रिए सभी अन्त:स्रावी ग्रंथियों को तथा हार्मोनों के स्राव को नियन्त्रित करता है, और लिंबिक सिस्टम तथा चेतक के साथ समन्वयपूर्वक संवेगों की अभिव्यक्ति या संवेगों के अवरोधन के लिये कार्य करता है और इन्द्रिय-प्रत्यक्षण तथा अन्य मानसिक क्रियाओं के लिये कार्य करता है। दो भौंहो के बीच के एक स्थान में, मानो कि सिंहासन पर बैठकर 'आत्मा' मस्तिष्क तथा शरीर के तन्त्र के ज़रिए कार्य करती है। इसलिये श्रद्धालु

लोग दो भौंहों के बीच तिलक या टीका लगाते हैं, जो कि इस स्थान पर आत्मा की अवस्थिति का प्रतीक है। इस सत्य को जानकर अब हमें आत्म-सचेतन (Soul conscious) हो जाना चाहिए तथा हमें शरीर की इन्द्रियों या मस्तिष्क का उपयोग यह मानकर करना चाहिए कि वे हमारे स्वामी नहीं हैं, बल्कि सेवक हैं।

अब हम रेखाचित्रों के ज़रिए शरीर तथा मन के सम्बन्ध को दर्शायेंगे तथा यह दर्शायेंगे कि अधश्चेतक में आसीन आत्मा शरीर के ज़रिए किस प्रकार क्रिया तथा प्रतिक्रिया करती है। उसके पश्चात्, अगले अध्याय में हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि कैसे आत्मा के अस्तित्व के संप्रत्यय को लिये बिना मस्तिष्क के कार्यों को समझा नहीं जा सकता।

अधश्चेतक — अन्तर्विवेक का रहने का स्थान

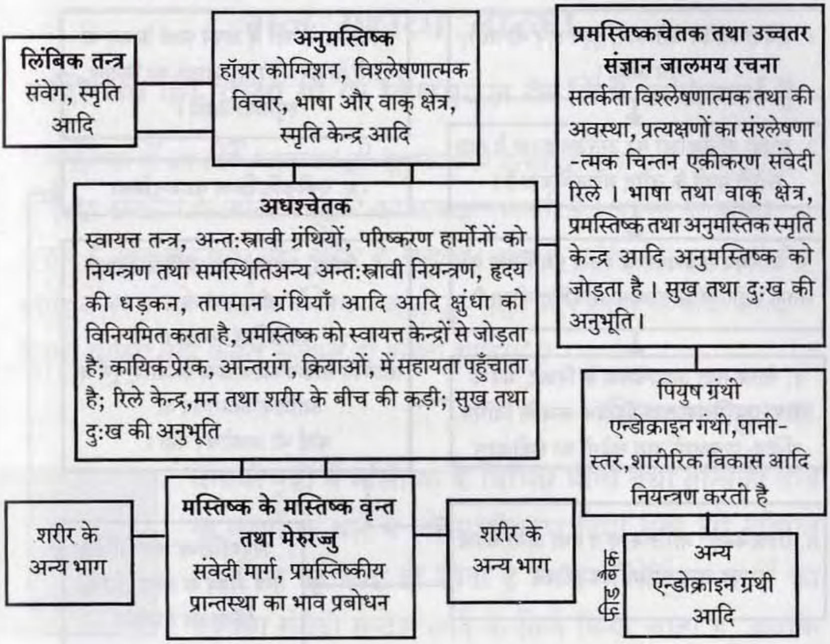

आकृति 8 *- इस आकृति से अधश्चेतक की अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति साबित होती है। जैसा कि उपर्युक्त योजना में दर्शाया गया है — अधश्चेतक क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण आत्मा मस्तिष्क के सभी महत्वपूर्ण भागों तथा कृत्यकारियों को तथा तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करने में सक्षम है और उनके प्रभावों या परिवर्तनों का प्रत्यक्षण करने में भी सक्षम है। केवल यहीं आत्मा अपनी चेतना को (1) प्रमस्तिष्क के ज़रिए संज्ञान या समझ के रूप में, (2) लिंबिक तन्त्र के ज़रिए संवेगों के रूप में, (3) इच्छा या अभिलाषा के रूप में, (4) चेतक तथा अधश्चेतक के ज़रिए सुखदाता की भावना (सुख), तथा असुखदाता की भावना (दु:ख) के रूप में तथा (5) जालमय सक्रिय कारक तन्त्र (आर.ए.एस.) के ज़रिए जीवितावस्था (जाग्रतावस्था, निद्रावस्था, उनींदपन की अवस्था, अतिमूर्च्छा की अवस्था या समाधि की अवस्था, सम्मोहनावस्था तथा निश्चेतक औषधि के प्रभाव की अवस्था) के रूप में अभिव्यक्त कर सकती है और (6) मेरुरज्जु में स्थित केन्द्रों के ज़रिए, अधश्चेतक से होकर, प्रतिवर्त क्रियायें तथा स्वायत्त क्रियायें कर सकती है तथा (7) पियूष ग्रंथि तथा तन्त्रिका तन्त्र के ज़रिए समस्थिति ला सकती है तथा तनाव से लड़ सकती है। इस प्रकार, यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शन के अनुसार, इच्छा, सुख की अनुभूति तथा द्वेष, प्रयत्न आदि आत्मा के लक्षण हैं। इससे यह प्रकट होता है कि आत्मा मस्तिष्क में चेतक तथा अधश्चेतक के निकट अवस्थित है, क्योंकि वह अपनी चेतना को इन रूपों में केवल यहीं अभिव्यक्त कर सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'आत्मा' शरीर के साथ कहाँ और कैसे परस्पर क्रिया करती है।*

शरीर के ज़रिए मन कैसे कार्य करता है?

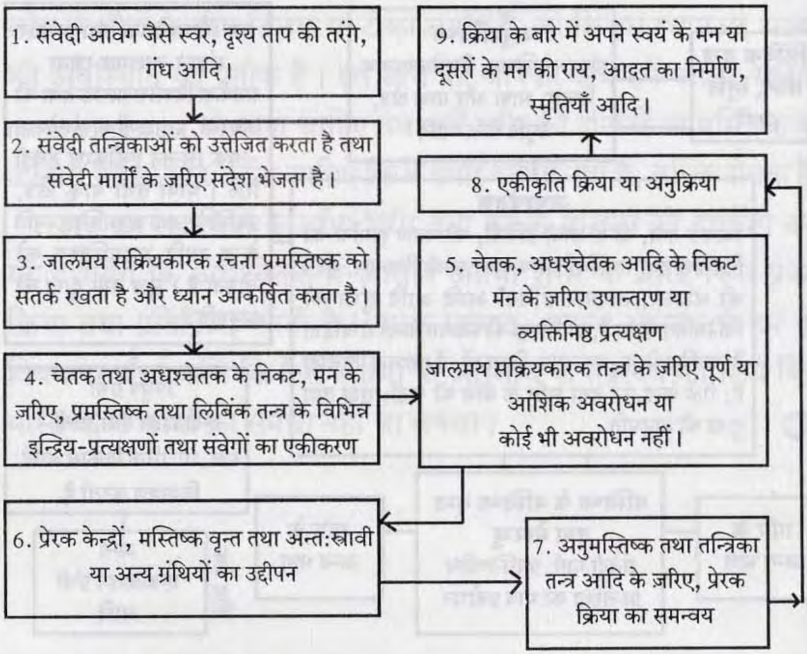

__आकृति 9__- उपर्युक्त योजना में मन तथा शरीर की परस्पर क्रिया तथा उद्दीपन और अनुक्रिया के अनुक्रम को दर्शाया गया है। कुछ तन्त्रिका विज्ञानी यह कहते हैं कि प्रत्यक्षित संवेदी संदेश (अवस्था 4 देखिये) तथा क्रिया आदि होने (अवस्था 6 और उसके आगे के बीच) कुछ सेकण्डों (या यहाँ तक कि सेकण्ड के एक खण्ड का) का समय अन्तराल होता है और इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अवस्था 5 में यह निर्णय लिया जाता है कि क्रिया की जाए या न की जाए या कैसे कब की जाए, और इससे यहाँ आत्मा की विद्यमानता स्पष्ट हो जाती है। यह वह स्थान या 'अकाल तख्त' है जहाँ से समयविहीन आत्मा — 'शरीर' कहलाने वाले महानगर का शासन करती है। वह एक ऐसी 'खिड़की' है जिससे आत्मा विश्व को 'देखती' है। वह एक तिजोरी है या पेटी है जिसमें सभी खजानों में से सबसे बड़ा खजाना 'आत्मा' रहती है। 'आत्मा' वह उच्चतम कार्यकारी है जो कि ज्ञात अत्यन्त जटिल तन्त्र का संचालन तथा संगठन करती है।

यद्यपि 'आत्मा' एक आवकाशिक-पार्थिक सत्ता है और इतनी सूक्ष्म होती है कि यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मस्तिष्क में वह कहाँ है फिर भी शरीर तन्त्र के साथ उसकी अन्त:क्रिया का स्थान दर्शाकर हम यह दर्शा सकते हैं कि (1) यह कि आत्मा का अस्तित्व है, (2) यह कि आत्मा शरीर के समरूप नहीं है या शरीर में सर्वत्र उपस्थित नहीं है, बल्कि वह एक नियन्त्रण तन्त्र के ज़रिए कार्य करती है तथा (3) यह कि वह हृदय में अवस्थित नहीं है परन्तु मस्तिष्क के एक हृदय स्थान में अवस्थित है और, (4) यह कि वह शरीर के ज़रिए कार्य करती है। इसे समझ लेने पर हमें आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करने में सहायता मिलेगी। इसके आधार पर हम चिन्तन (योग) के क्रियाविज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं।

मन अथवा आत्मा

मस्तिष्क की क्रियाओं के निष्पादन के लिये अनिवार्य है

"मस्तिष्क में आसीन 'आत्मा' ही सूचना प्राप्त करती है तथा उसे समझती है और वह इन्द्रियों के ज़रिए वस्तुओं का प्रत्यक्षण करती है। आत्मा ही निर्णय करती है और मस्तिष्क तथा शरीर के समुचित तन्त्र के ज़रिए क्रिया करती है। इसलिये स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करते हुए सही और ग़लत के बीच विभेद करना चाहिए तथा केवल सत्कर्म ही करना चाहिए"।

— शिव भगवानुवाच

पूर्वगामी पृष्ठों में मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा तन्त्रिका तन्त्र के कार्यों के बारे में जो स्पष्टीकरण दिया गया उसे दृष्टिगत रखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से कुछ भागों का उपयोग संवेदी सन्देश लाने के लिये किया जाता है, जबकि अन्य भागों का उपयोग उन्हें एक सुसंगत चित्र के रूप में संयुक्त करने के लिये किया जाता है, और कुछ अन्य भागों का उपयोग स्मृतियों के भण्डारण के लिये या संवेगों के बाह्यकरण के लिये या मस्तिष्क को सजगता आदि की अवस्था में रखने के लिये किया जाता है, तथा अधश्चेतक (Hypothalamus) इन कार्यों को परस्पर जोड़ने वाला एक केन्द्रीय बिन्दु है। किन्तु प्रश्न यह है कि कौन अधश्चेतक का उपयोग अपने आसन के रूप में करता है और सुख या दुःख का अनुभव करता है या उस अनुभव को जारी रखने के लिये या उससे मुक्त होने के लिये अपनी इच्छा या अपने आदेश का उपयोग करता है? वह कौन है जो कि जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र (RAS) तथा अधश्चेतक या चेतक का उपयोग करने का निर्णय तब करता है जब वह सतर्क या सजग रहने का निर्णय करता है, तथा जब वह सोने का निर्णय करता है तब अवरोधक तन्त्र का उपयोग करता है? वह कौन है जो कि बाह्य उद्दीपन की उपेक्षा करने का चयन करता है (जो कि अन्यथा

अपकर्षण (distraction) का एक स्त्रोत हो सकता है) और इसके बजाय उन वस्तुओं पर ध्यान देता रहता है, जो कि उस क्षण उसकी इन्द्रियों के घनिष्ठ या दूरस्थ सम्पर्क में नहीं होती। वह कौन है जो कि जब कतिपय स्मृतियाँ जागती हैं तो उनसे मुक्ति पाना चाहता है, या वह कौन है जो कि कतिपय संवेगों के उद्वेगित होने पर उन्हें नियन्त्रित करने की कोशिश करता है? वह कौन है जो कि जीते रहना चाहता है या अपने शरीर का परीक्षण करना चाहता है या जो कि कुछ विरले मामलों में, अपने मस्तिष्क, शरीर या सभी को समाप्त कर देना चाहता है? दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह कौन है जो कि अपनी इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय या अपने मस्तिष्क के भागों में से किसी भाग के उपयोग के लिये या दुरुपयोग के लिये या उसका उपयोग नहीं करने के लिये या उसे उपयोग से बाहर कर देने के लिये अपने विवेक या अपनी इच्छा का उपयोग करता है? हमें यह स्वीकार करना होगा कि ऐसा कार्य किसी ऐसी सत्ता का है जो कि मस्तिष्क का कोई भाग नहीं है बल्कि वह एक ऐसी सत्ता है जो कि स्वभाव से चैतन्यमय है और मस्तिष्क से भिन्न है — इसी को हम 'मन' या 'आत्मा' कहते हैं।

पुनः उन न्यूरोसर्जनों (neuro-surgeons) के निम्नलिखित निष्कर्षों पर विचार कीजिए जिन्होंने मस्तिष्क के सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान किये हैं। पेनफील्ड तथा अन्य (Penfield and others) विद्वानों के प्रयोग स्पष्ट चिकित्सा विज्ञानीय साक्ष्य हैं जो कि हमें दो निष्कर्ष निकालने के लिये प्रेरित करते हैं। इनमें से एक निष्कर्ष यह है कि मस्तिष्क के विभिन्न भाग केवल उपकरण है; मस्तिष्क में आसीन कोई सत्ता ही इन भागों का उपयोग करती है। दूसरा निष्कर्ष यह है कि यह सत्ता, जो कि मस्तिष्क का उपयोग करती है, मस्तिष्क से भिन्न है तथा वह अधि-भौतिक स्वरूप की है तथा वह प्रमस्तिष्क में अवस्थित नहीं है।

पेनफ़ील्ड के प्रयोग यह दर्शाते हैं कि प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था मन का आसन नहीं है

पेनफील्ड (Penfield) के प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि प्रमस्तिष्कीय

प्रान्तस्था (Cerebral Cortex) के बड़े भाग को निकाल देने पर भी अभिज्ञा समाप्त नहीं होती, जबकि मस्तिष्क वृन्त में हुए छोटे क्षत भी अप्रत्यावर्ती अति मूर्च्छा उत्पन्न कर देते हैं। पेनफील्ड तथा एक अन्य तन्त्रिका-विज्ञानी हेरना डीएज़-पिओन (Penfield and Heranadoez-peon) ने भी उन अभागे मनुष्यों के उदाहरण दिए हैं जो कि प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था के बिना जन्म लेते हैं और उन्हें वैज्ञानिक भाषा में मस्तिष्क विहीन दैत्य (Anecephalic monsters) कहा जाता है, क्योंकि वे अधिक सीखने तथा अपने पर्यावरण को समझने में सक्षम नहीं होते। वे सोते भी हैं और जागते भी हैं और जब वे जागृत अवस्था में होते हैं तो वे मुस्कुरा भी सकते हैं तथा रो भी सकते हैं। इसी प्रकार, वे नवजात सामान्य शिशु भी जिनकी प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था अभी क्रियाशील नहीं होती है, दिन के दौरान जागृत अवस्था की संक्षिप्त अवधियाँ दर्शाते हैं। इन मस्तिष्क विहीन दैत्यों का मामला यह दर्शाता है कि यद्यपि दो प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध उच्चतर चिन्तन प्रक्रिया के लिये भाषा कूट को समझने के लिये और विचारों को भाषा में अभिव्यक्त करने आदि के लिये उत्तरदायी हैं, तथा वे चेतना या मन के आसन नहीं हैं, क्योंकि यद्यपि इन मस्तिष्क विहीन दैत्यों में प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था नहीं होती, तथापि उनमें चेतना होती है। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ है कि यदि किसी मनुष्य के पास दो प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध न हो तो भी वह जीवित रह सकता है तथा उसमें चेतना हो सकती है।

आगे पेनफील्ड ने ऐसे हजारों प्रयोग किए। उन्होंने उन्हें प्रलेखबद्ध किया है। उन्होंने मस्तिष्क में अनेक स्थलों या बिन्दुओं को उद्दीप्त (stimulate) किया। प्रेरक प्रान्तस्था के उद्दीपन ने केवल शारीरिक गतियाँ उत्पन्न की, उदाहरणार्थ, हाथ की गति, किन्तु उससे कोई भी सचेतन प्रभाव उत्पन्न नहीं हुए। उसने केवल एक यान्त्रिक या प्रेरक क्रिया को उद्दीप्त किया और रोगी की चेतना ने यह अनुभव किया कि वह उसकी इच्छा के बिना किया जा रहा था, जिसका यह अर्थ कि सचेतन मन प्रेरक प्रान्तस्था में भी अवस्थित नहीं है, यद्यपि प्रेरक क्रिया को चालित करने वाली प्रेरक तन्त्रिकायें वहाँ अवस्थित हैं। इससे यह भी प्रकट होता है कि प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था तथा प्रेरक प्रान्तस्था केवल उपकरण हैं और

उनका उपयोग करने वाली अन्तर्विवेकशील सत्ता उनसे भिन्न है।

पेनफील्ड अपने इस निष्कर्ष के लिये विख्यात हैं कि किसी इलेक्ट्रोड को शंख पालि (Temporal lobe) पर या प्रान्तस्था की सतह किसी भी अन्य भाग पर रखकर स्मृतियों को सक्रिय किया जा सकता है। किन्तु, वस्तुत:, स्मृतियों की संस्थिति (Locus) ऊपरी मस्तिष्क-वृन्त तथा अधश्चेतक में थी।

पुन:, प्रान्तस्था के संवेदी क्षेत्र के उद्दीपन के परिणामस्वरूप व्यक्ति तो सुनने लगा, देखने लगा या अनुभव करने लगा, वह इस बात पर निर्भर था कि किस प्रान्तस्थ क्षेत्र को उद्दीप्त किया गया था, किन्तु इससे जो संवेदन उत्पन्न हुये वे वैसे भली-भाँति बुने हुए प्रत्यक्ष नहीं थे जैसे कि हम मेज, कुर्सी, आदि के दृश्य देखते हैं, किन्तु ये संवेदन स्मृतियों या संवेदनों के टुकडों के रूप में थे। वे केवल प्रत्यक्षणों के टुकड़े थे और जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, इनकी संस्थिति मस्तिष्क-वृन्त के निकट प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त, प्रान्तस्था के 'अप्रतिबद्ध प्रान्तस्था' (Uncommitted cortex) कहलाने वाले शेष भाग के उद्दीपन से कोई भी सचेतन प्रभाव उत्पन्न नहीं हुए। इन सभी बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नव-प्रान्तस्था (Neo-cortex) या प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध, चेतना या मन के आसन नहीं है जो कि उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार अधश्चेतक में या अधश्चेतक के निकट, जिसका चेतक तथा मस्तिष्क वृन्त के साथ सम्बन्ध है, स्थित प्रतीत होता है।

इसी प्रकार मेक्सिकन न्यूरो साइकॉलॉजिस्ट राउल हरनन्डज़ पिओन (Raul Heranandez-Peon) अपने प्रयोगों के ज़रिए इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मस्तिष्क वृन्त का जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र (RAS) वह द्वार है जिससे होकर संवेदी आवेग प्रान्तस्था तक जाते हैं और वही 'अवधान' का विनियामक है। हम सभी लोग यह जानते हैं कि 'अवधान' (Attention) तथा 'चेतना' (Consciousness) में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनोविज्ञान के छात्र यह जानते हैं कि सीखने तथा अनुभव करने के लिये अवधान अनिवार्य है, जो कि चेतना या मन का एक कार्य है। इससे भी यह प्रकट होता है कि मन, चेतना या आत्मा को मस्तिष्क-वृन्त के ऊपरी भाग के निकट जिसमें आर.ए.एस. है, अधश्चेतक में अवस्थित होना

चाहिए। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक तथा न्यूरोलॉजिस्ट डॉ. स्पेरी (Dr. Sperry) के प्रयोगों द्वारा उपर्युक्त तथ्य और साबित होते हैं।

दाहिना तथा बायाँ गोलार्ध (Hemispheres) मन के आसन नहीं हैं

अब तक यह विश्वास किया जाता रहा है कि दाहिने गोलार्ध के स्वयं के कोई विशेषीकृत कार्य नहीं थे, किन्तु यदि बायाँ गोलार्ध क्षतिग्रस्त हो जाए तो वह भाषा तथा अन्य विचार-प्रक्रिया के कार्य करने में सक्षम था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दाहिने गोलार्ध को एक अतिरिक्त टायर की तरह माना जाता था। इसका कारण यह है कि अनेक रोगियों में यह पाया गया कि जब दाहिना गोलार्ध क्षतिग्रस्त हो गया तो विचार-प्रक्रिया में ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न नहीं होतीं जैसी की वाचाघात (Aphasia) में दिखाई देती हैं। इसलिये, यह सोचा जाता है कि सभी उच्चतर मानसिक क्रियायें बायें गोलार्ध में होती थीं। इस विश्वास के कारण मस्तिष्क के दाहिने भाग को 'अप्रबल' या 'गौण' गोलार्ध कहा गया तथा बायें गोलार्ध को 'प्रबल' या 'प्रधान' गोलार्ध कहा गया है। किन्तु पिछली आधी शताब्दी में, दाहिने गोलार्ध को बायें गोलार्ध से शल्य क्रिया द्वारा पृथक् कर देने पर होने वाले परिणामों को देखने के उपरान्त इस दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। संभवत:, दो गोलार्धों को पृथक करने का प्रथम ऑपरेशन वर्ष 1960 में उन कुछ रोगियों पर किया गया था जो कि इस ऑपरेशन में दो गोलार्धों के तत्स्थानी भागों को जोड़ने वाले तन्त्रिका-तन्तुओं गोलार्ध के सभी बलों को काटकर दो गोलार्ध के बीच के सभी सीधे सम्बन्धों को तोड़ दिया गया। दो गोलार्धों के बीच सम्बन्ध इसलिये होता है क्योंकि वहाँ महासंयोजक (Corpus callosum) है, जो कि ऐसे लगभग 2000 लाख तन्त्रिका-तन्तुओं तथा तन्त्रिका-कोशिकाओं से निर्मित है, जो कि सामान्यत: दो गोलार्धों के बीच सूचना के प्रेषण का कार्य करती हैं तथा उनके प्रेरक क्रिया-कलाप का समन्वय भी करती हैं। वर्ष 1960 से आज तक अनेक ऑपरेशन किए गये हैं। कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी के रोजर स्पेरी (Roger Sperry) इस

क्षेत्र में अग्रणी हैं, जिन्हें शरीरक्रिया-विज्ञान में इस कार्य के लिये नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। हमारे वर्तमान विषयांग से सुसंगत उनके कुछ निष्कर्ष निम्नानुसार है —

1. एक गोलार्ध को हटा देने के पश्चात् भी व्यक्ति सतर्क, अनुक्रियाशील तथा बुद्धिमान रहता है तथा ऐसे व्यक्ति को देखने पर यह प्रकट नहीं होता कि वह कमिसुरोटोमी (Commissurotomy) के कारण दो गोलार्धों को ऑपरेशन द्वारा पृथक्-पृथक् कर देने के कारण दूसरे मनुष्यों से भिन्न है, यद्यपि कतिपय कमियाँ दिखाई देती हैं, क्योंकि संवेदी सूचना एक गोलार्ध से दूसरे गोलार्ध को नहीं भेजी जाती। चूँकि एक गोलार्ध दूसरे गोलार्ध के बिना भी काम चला सकता है; इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि दो गोलार्धों में से कोई भी गोलार्ध चेतना या मन का आसन नहीं है, यद्यपि मन द्वारा इन दोनों गोलार्धों का उपयोग किया जाता है।
2. यह देखा गया है कि जब किसी रोगी को बायें गोलार्ध, किसी बड़े मस्तिष्क गुल्म (Brain-tumor) के इलाज के लिये पूरी तरह से निकाल दिया गया तो भाषा क्षमता की हानि के बावजूद जो कि बाँए गोलार्ध की विशेषता है, रोगी में बुद्धिमानीपूर्ण तथा सक्रिय व्यवहार के सभी लक्षण दिखाई देते थे। यह बात पर्याप्त: स्पष्ट है कि बायें गोलार्ध की अनुपस्थिति में भी दाहिना गोलार्ध संवेदी क्रिया तथा प्रेरक क्रिया करने में सक्षम है, जबकि कुछ दशक पूर्व बायें गोलार्ध को भूलवश आत्मा या मन का आसन समझा जाता था।
3. इसके अतिरिक्त, यह पाया गया है कि दाहिना गोलार्ध प्रत्यक्षण तथा संगीत की अभिव्यक्ति में भी तथा दृष्टि आवकाशिक (Visuo-spatial) चित्रात्मक चिन्तन में तथा संश्लेषण में भी श्रेष्ठ है, जबकि बायाँ गोलार्ध मानव वाक् (human speech), अमूर्त संप्रत्ययीकरण (abstract conceptualisation), तर्क (logic), गणित तथा विश्लेषणात्मक चिन्तन (analytical thinking) में श्रेष्ठ है।

मन मानसिक सत्ता है जो कि दो गोलार्धों के बाहर अवस्थित है

अब उपर्युक्त निष्कर्षों से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि "वह कौन है जो कि विश्लेषक (analytic)/संश्लेषक या तार्किक (synthetic or logical)/ स्वप्नदर्शक (dreaming) कहलाने वाले इन दो गोलार्धों से प्राप्त सूचना का कुशल प्रयोग करता है। दूसरे शब्दों में यह पूछा जा सकता है कि जबकि दो गोलार्धों को अलग-अलग करने वाले ऑपरेशनों ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि दो विभिन्न प्रकार के मस्तिष्क हैं, या कि दो विभिन्न प्रकार के मस्तिष्क कूट (Brain codes) हैं जो कि प्रत्येक गोलार्ध को उसकी विशिष्ट चिन्तन प्रणाली देते हैं तो वह कौन है जो कि यह निर्णय करता है कि किसी विशिष्ट क्षण में और किसी विशिष्ट परिस्थिति में किस गोलार्ध को दूसरे गोलार्ध पर अग्रता दी जाए? कौन यह निर्णय करता है कि इस समस्या के लिये विश्लेषणात्मक चिन्तन, तर्क आदि की आवश्यकता है और इसलिये बायाँ गोलार्ध उस समस्या पर कार्य करे या कि दूसरी समस्या आवकाशिक दृष्टि स्वरूप की है— जैसा कि किसी कलाकार का कार्य होता है— और यह कि दाहिना गोलार्ध यह कार्य करे ?

यह स्पष्ट है कि चेतना या मन, जिसके द्वारा निर्णय किया जाता है और दो गोलार्धों में से एक गोलार्ध का उपयोग किया जाता है, इन दो गोलार्धों से पृथक् तथा भिन्न है और वह किसी अन्य स्थल पर अवस्थित है। वस्तुत: जिन रोगियों के पास खंडित मस्तिष्क होते हैं उनमें चेतना दो गोलार्धों के ज़रिए पृथकत: अभिव्यक्त होती हुई प्रतीत होती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि चेतना का स्त्रोत-बिन्दु इन दो गोलार्धों के बाहर कहीं है।

इस सिलसिले में, स्पेरी द्वारा प्रतिवेदित एक घटना उद्धृत करने योग्य है, क्योंकि उससे हमारे इस कथन की अतिरिक्त पुष्टि होगी कि मन या चेतना का स्त्रोत-बिन्दु अधि-भौतिक है और वह मस्तिष्क से भिन्न सत्ता है और इन गोलार्धों के बाहर अवस्थित है।

स्पेरी यह कहते हैं कि वे एक अध्ययनाधीन रोगी के एक या दूसरे गोलार्ध का चित्र दिखा रहे थे। रोगी एक महिला थी। चित्रों के क्रम में एक चित्र नग्न

व्यक्ति का था। यह चित्र खंडित मस्तिष्क (Split brain) वाले रोगी की बाईं आँख को दिखाया गया जिसका व्यवहार ऐसा था कि मानो कि उसके पास दो मस्तिष्क थे। अब, चूँकि बायीं आँख दायें गोलार्ध से जुड़ी हुई है और दाहिनी आँख बायें गोलार्ध से जुड़ी हुई है इसका यह अर्थ है कि चित्र खंडित मस्तिष्क वाले रोगी के दाहिने गोलार्ध को दिखाया गया था। इस नग्न चित्र को देखकर रोगी महिला शरमा गई तथा हंस पड़ी, किन्तु जब उससे यह पूछा गया कि उसने क्या देखा तो उसने उत्तर दिया कि उसने सिर्फ प्रकाश की एक कौंध देखी थी और उसके सिवाय कुछ भी नहीं देखा था। (स्पष्ट है कि वह एक नग्न चित्र देखकर व्यग्र हो उठी तथा उसे यह कहने में शर्म लगी कि वह एक नग्न चित्र था)। जब उससे यह पूछा गया कि जब उसने केवल प्रकाश की कौंध देखी थी तो वह हंस क्यों रही थी तो वह निर्णय न कर सकी कि क्या कहे और कुछ समय बाद वह फिर हंस पड़ी और उसने कहा— "डॉ. स्पेरी आपके पास कोई मशीन है?"

इस घटना के बारे में तन्त्रिका विज्ञानी तथा मनोवैज्ञानिक डेविड गैलिन (David Galin) कहते हैं कि सुविख्यात मनोविश्लेषक डॉ. फ्रायड (Dr. Freud) के अनुसार इस घटना का स्पष्टीकरण यह होगा कि नग्न चित्र देखकर वह महिला व्यग्र हो उठी थी और दमन की एक प्रक्रिया द्वारा उसे चेतना से अलग रख दिया था।

अब फ्रायड के मतानुसार, उपर्युक्त घटना में जिस 'अचेतन' ने नग्न चित्र के प्रत्यक्षण को दबा दिया था वह मानसिक क्रिया का एक स्वतन्त्र क्षेत्र था। फ्रायड यह कहते हैं कि अचेतन "वास्तविक मानसिक सत्ता है" क्योंकि उसकी प्रेरणा आज के समाज के अनुमोदनों तथा प्रतिबन्धों द्वारा प्रतिवेचित (Censored) नहीं थी। किन्तु हम यह पूछ सकते हैं कि वह कौन था, वह क्या था जिसने रोगी के नग्न चित्र के प्रत्यक्षण (Perception) को देखा और उसकी अभिव्यक्ति को दबा दिया? क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि 'सचेतन प्रत्यक्षण' या 'अचेतन दमन' का वास्तविक बिन्दु दाहिने गोलार्ध और बायें गोलार्ध से बाहर स्थित है, यद्यपि वह प्रत्यक्षण, अभिव्यक्ति, दमन या अवरोधन की अपनी शक्ति मस्तिष्क के विभिन्न भागों या शरीर तन्त्र के ज़रिए प्रकट करता है?

इसके अतिरिक्त, क्या यह घटना यह नहीं दर्शाती की बाह्य उद्दीपनों के प्रति मस्तिष्क तथा शरीर की अनुक्रिया मात्र यान्त्रिक नहीं है? यदि वह यान्त्रिक हुई तो रोगी को सीधे-सीधे यह बता देना चाहिए था कि उसने क्या देखा था, किन्तु रोगी महिला ने उसे दबा दिया, जिससे यह ध्वनित होता है कि इससे व्यक्ति की स्वयं की निष्ठता (उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि) जैसे अन्य कारक भी अन्तर्ग्रस्त हैं। इससे यह प्रकट होता है कि उद्दीपनों के प्रति शरीर की अनुक्रिया को विद्युत आवेगों (Electrical impulses), क्षेत्र-परिपथों (Field circuits) के रूप में या जैव-रासायनिक परिवर्तनों के रूप में पूर्णतः नहीं समझा जा सकता, बल्कि एक मानसिक या आध्यात्मिक कारक भी अन्तर्ग्रस्त है और उसका स्वयं का अपना अधिरोही महत्व है। यह कारक है — मन। मानस, चेतना या आत्मा और यह मन मस्तिष्क में अवस्थित है, किन्तु दो गोलार्धों में या संवेदी अथवा प्रेरक प्रान्तस्था में अवस्थित नहीं है — क्योंकि उनके अपने-अपने विशेषीकृत कार्य हैं।

इस प्रकार, समग्र चित्र पर विचार करते हुए हम यह कह सकते हैं कि चेतना या चैतन्य या मन को अधश्चेतक में अवस्थित होना चाहिए (जिसका एक भाग पश्च पियूष वन्त (posterior pitutary stalk) है), जो कि चेतक, मध्य मस्तिष्क, मस्तिष्क-वृन्त तथा जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS) तथा बैसल गैंग्लिया (basal ganglia) के साथ अन्तःक्रिया करता है। यह अवस्थिति बहुत अद्वितीय है, क्योंकि वह उसे शरीर के सभी भागों से सम्बद्ध होने योग्य बनाती है तथा प्रत्यक्षण तथा संवेदन ग्रहण करने तथा प्रेरक क्रियाओं के लिये आदेश जारी करने योग्य बनाती है। चेतक, अधश्चेतक तथा मस्तिष्क-वृन्त का क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है, तथा इसमें अधश्चेतक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह मस्तिष्क के सभी भागों से जुड़ा हुआ है तथा पियूष ग्रंथि के ज़रिए, वह सभी ग्रंथियों को प्रभावित कर सकता है तथा हार्मोनों के स्रावों को नियन्त्रित करता है। वह चेतक के ज़रिए कायिक तन्त्रिका तन्त्र (Somatic nervous system) से जुड़ा हुआ है तथा मस्तिष्क वृन्त के ज़रिए स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र से जुड़ा हुआ है और वस्तुतः शरीर के प्रत्येक भाग का नियन्त्रण करता है।

इसलिये, इस स्थान में आसीन 'मन' या 'आत्मा' एक अद्वितीय चुम्बक की तरह या एक मानसिक विद्युत चुम्बकीय सत्ता की तरह कार्य करता है। यह चुम्बक हमारे स्थूल, प्राकृतिक या कृत्रिम या विद्युत चुम्बकीय साधनों से भिन्न है, क्योंकि वह अभौतिक, अपदार्थिक है, सूक्ष्म है तथा सर्वोपरि है।उसके पास प्रत्यक्षण करने, समझने, अनुभूति करने, अनुभव करने आदि के गुण हैं। इसलिये, प्रभावत: वह अधश्चेतक पर बमबारी करने वाले संवेदी सन्देशों का तथा घटित होने वाले रासायनिक परिवर्तनों का प्रत्यक्षण कर सकता है और प्राप्त सूचना को समझ सकता है तथा उपान्तरित कर सकता है तथा ग्रंथिय क्रिया, स्वायत्त तन्त्र तथा प्रेरक मार्गों आदि जैसे विभिन्न समुचित तन्त्रों के ज़रिए, वह क्रिया चालित कर सकता है जिसका निर्णय वह करता है। यदि आत्मा न हो तो सभी तन्त्रों में से सर्वाधिक जटिल तन्त्र शरीर उस तरह कार्य नहीं करता जिस तरह वह करता है, क्योंकि वहाँ अवश्य ही कोई न्यायाधीश, कोई अधिनिर्णायक या कोई उच्चकार्यकारी होना चाहिए जो कि निर्णय कर सकता है तथा कार्यवाही कर सकता है। इसके अतिरिक्त, इस दृष्टिकोण से ही आत्मा या मन 'समस्थित' (Homeostasis) कहलाने वाला कार्य कर सकता है।[1] इसके अतिरिक्त, निद्रा की अवस्था तथा चेतना की अन्य परिवर्तन अवस्थाओं से भी यह प्रकट होता है कि अधि-भौतिक सत्ता है जो कि अध:श्चेतक में अवस्थित है। हम अगले अध्याय में इस बात को स्पष्ट करेंगे। हमने डायग्रामों में अध:श्चेतक का अद्वितीय महत्व दर्शाया है तथा यह दर्शाया जायेगा कि कैसे यहाँ आसीन 'आत्मा' कार्य करती है।

---

1. *मानव शरीर तथा उसके विभिन्न तन्त्रों और उनके कार्य के अध्ययन से हम यह जान सकते हैं कि उसमें चलने वाली सभी प्रक्रियाओं को निश्चित सीमाओं के भीतर नियन्त्रित किया जाना होगा, अन्यथा शरीर की मृत्यु हो जायेगी। उपापाचय (Metobalism) का अर्थात् जो कच्ची सामग्री हम लेते हैं उसके प्रसंस्कारण का, ऊर्जा के भण्डारण तथा वितरण का और एक स्थिर आन्तरिक रासायनिक पर्यावरण को कायम रखने का विनियमन होना चाहिए। रक्षण तथा प्रतिरक्षण का तथा हार्मोनों का भी विनियमन होना चाहिए। तन्त्रिका तन्त्र विनियमन तथा समन्वय भी होना चाहिए शब्द 'समस्थिति' (Homeostasis) का उपयोग सभी विनियामक प्रक्रियाओं के लिये किया जाता है।*

अब हम आत्मा के अस्तित्व को साबित करने के लिये अगला साक्ष्य प्रस्तुत करेंगे। अगले अध्याय के अवलोकन से यह पाया जाएगा कि चेतना की परिवर्तित अवस्थायें और तनाव के प्रभाव तथा योग (Meditation) के प्रभाव भी यह दर्शाते हैं कि आत्मा एक अधि-भौतिक सत्ता के रूप में अस्तित्व में है।

अब हम हमारी चिन्तन-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करेंगे कि मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली को समझने के लिये आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करना कैसे आवश्यक है।

मस्तिष्क बिना जन्मे शिशु

दो माह का एन्ड्रयू, अमेरिका में अपनी पालक माता बार्बरा स्टेन्ले (Barbara Stanley) की उंगली पकड़ता है। डॉक्टरों के मतानुसार एन्ड्रयू का जन्म बिना मस्तिष्क के हुआ था। डॉक्टरों ने यह कहा है कि जब शिशु के मस्तिष्क-वृन्त के ऊपर एक रसोल (Cyst) विकसित हो गई तो उसका मष्तिष्क विकसित न हो सका। मस्तिष्क-वृन्त एन्ड्रयू को श्वसन जैसे स्वचालिक क्रियायें प्रदान करता है।

(सौजन्य : जकार्ता पोस्ट 5 अक्टूबर, 1984)

यह मामला यह दर्शाता है कि मस्तिष्क के बिना कोई प्राणी जीवित रह सकता है। तथापि शिशु के चेहरे पर जो भाव हैं वे भाव एक अन्तर्विवेकशील स्वत्व (Conscient being) — आत्मा के अस्तित्व के साक्ष्य हैं।

योग, चेतना की परिवर्तित अवस्था तथा तनाव से भी आत्मा का अस्तित्व सूचित होता है

"यदि तुम परमानन्द तथा स्थायी शान्ति एवं उच्चतर चेतना की अवस्था के आकांक्षी हो तो प्रेमपूर्वक मेरी याद (योग) करो।"

— शिव भगवानुवाच

चेतना के स्वरूप तथा उसकी अवस्थिति के स्थान को समझने के लिये 'चेतना की परिवर्तित अवस्थाओं' का संक्षेप में अध्ययन करना रोचक होगा। चेतना के स्तरों या अवस्थाओं में कतिपय परिवर्तन सामान्य हैं। उदाहरणार्थ, हम सभी लोग, जागृत अवस्था के विभिन्न स्तरों का अनुभव करते हैं। कभी-कभी हम बहुत सावधान तथा सतर्क रहते हैं। अन्य समयों पर हम विश्रान्त तथा असावधान रहते हैं।

चेतना की परिवर्तित अवस्थायें (ASC) कतिपय अन्य स्थितियों में भी घटित होती हैं, उदाहरणार्थ, निश्चेतक औषधियों द्वारा उत्पन्न स्थिति में मस्तिष्क की बीमारी या क्षति भी एक प्रकार की चेतना की परिवर्तित अवस्था उत्पन्न कर सकती है, जिसे अतिमूर्च्छा (Coma) अवस्था कहा जाता है। तन्त्रिका वैज्ञानिकों ने इन सभी अवस्थाओं का जो एक उल्लेखनीय लक्षण खोज निकाला है वह यह है कि ये सभी विभिन्न अवस्थायें, किसी-न-किसी प्रकार से, जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र से, मस्तिष्क-वृन्त से तथा अन्ततः अधश्चेतक से जुड़ी हुई हैं।

योग — मस्तिष्क में आत्मा के अस्तित्व को सूचित करता है

योग या राजयोग से अभिप्राप्त चेतना की परिवर्तित अवस्थाओं का यहाँ विशेष उल्लेख किया जाना चाहिए। चेतना की यह परिवर्तित अवस्था, हर्षातिरेक

की अवस्था, विशेष तन्मयता की अवस्था या गहन शान्ति तथा विश्रान्ति की अवस्था हो सकती हैं। योग से प्रत्यक्षण, अनुभूति या अनुभव और विचार में एक परिवर्तन आता है जो कि कभी-कभी बहुत गहन होता है। वह उपयोगी मनोवैज्ञानिक परिवर्तन भी लाता है — उदाहरणार्थ, वह ऑक्सीजन उपयोग की दर, हृदय के धड़कन की दर, रक्त-चाप आदि को कम कर देता है और त्वचा का प्रतिरोध बढ़ा देता है। विश्रान्ति की अवस्था इलेक्ट्रोएन्सेफेलोग्राम (EEG) नामक साधन के ज़रिए जानी जाती है। आइये, ईईजी (EEG) के उपयोग को कुछ स्पष्टतापूर्वक समझ लें।

आज हम में से अधिकांश लोगों ने ईईजी (EEG) के बारे में सुना है। अब डॉक्टर इन साधनों का उपयोग मस्तिष्क की क्रियाओं की कतिपय परिवर्तित अवस्थाओं का निदान करने के लिये तथा मृत्यु स्थापित करने के लिये करते हैं। ये प्रमस्तिष्क की या मस्तिष्क की विद्युत क्रिया के अभिलेख होते हैं। शिरोवल्क (Scalp) के विभिन्न क्षेत्रों पर इलेक्ट्रोड रखे जाते हैं और मस्तिष्क-तरंगों को (जैसा कि उन्हें कहा जाता है) अभिलिखित किया जाता है। किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्था के अनुसार मस्तिष्क तरंगों के प्रतिरूप भिन्न-भिन्न होते हैं।

चार प्रकार की मस्तिष्क-तरंगों को अभिज्ञात किया गया है जैसे कि 'अल्फा', 'बीटा', 'डेल्टा' तथा 'थीटा'। यह अन्तर दो पहलुओं पर आधारित है— (1) तरंगे प्रति सेकण्ड कितनी बार घटित होती हैं और (2) उनका विद्युत-दाब (Voltage) कितना है।

अल्फा तरंगें (Alpha weaves) साधारण द्रुत होती हैं (प्रति सेकण्ड 8 से लेकर 13 तक) और ये सापेक्षत: उच्च विद्युत दाब वाली तरंगें होती हैं। सामान्यत: ईईजी इन तरंगों को तब अभिलिखित करता है जब कोई व्यक्ति जाग्रत होता है, उसकी आँखें बन्द होती हैं और वह एक विश्रान्त, असजग अवस्था में होता है और उसका प्रमस्तिष्क 'अलसा' (idling) रहा होता है।

बीटा तरंगें (Beta weaves) तुलनात्मक दृष्टि से द्रुततर होती हैं (प्रति सेकण्ड 13 से 25 तक) किन्तु आयाम में वे अल्फा तरंगों के विपरीत निम्नतर विद्युत

दाब तरंगें होती हैं। बीटा तरंगें तब अभिप्राप्त होती हैं जब कोई व्यक्ति जाग्रत अवस्था में होता है, उसकी आँखें खुली होती हैं और वह उत्प्रेरित तथा सावधान अवस्था में होता है अर्थात् जब उसका प्रमस्तिष्क अलसा नहीं रहा होता है, बल्कि संवेदी उद्दीपन तथा मानसिक उद्दीपन में व्यस्त रहता है।

डेल्टा तरंगें (Delta weaves) निम्नतम मस्तिष्क-तरंगें होती हैं (प्रति सेकण्ड 0.5 से लेकर 3.5 तक) और उनका विद्युत-दाब (Voltage) उच्च होता है। वे तब अभिलिखित की जाती हैं जब कोई व्यक्ति गहरी निद्रा में होता है। इसीलिये मनोवैज्ञानिक गहरी निद्रा को धीमी तरंग वाली निद्रा (SWS) कहते हैं।

थीटा तरंगें (Theta weaves) साधारण धीमी होती हैं (प्रति सेकण्ड 3 से लेकर 7 तक), निम्न विद्युत-दाब वाली तरंगें होती हैं जो कि तब प्रबल होती हैं जब उनींद्रापन (Drowsiness) उतर जाता है।

यदि ईईजी (EEG) यह सूचित करे कि प्रमस्तिष्क कोई भी मस्तिष्क-तरंगें उत्पन्न नहीं कर रहा है तो उसे एक सपाट ईईजी (Flat EEG) समझा जाता है।

जब व्यक्ति जागृत होता है और उसकी आँखें खुली हुई होती हैं तथा व्यस्त होता है — उसका प्रमस्तिष्क कार्य कर रहा होता है — तब ईईजी (EEG) उससे बीटा तरंगें प्राप्त करता है, किन्तु विरोधात्मक रूप में जब कोई व्यक्ति योग की अवस्था में होता है (भले ही उसकी आँखें खुली हुई होती हैं तथा वह मानसिक रूप से सक्रिय होता है) तब हम उससे अल्फा तरंगें तथा कुछ बीटा तरंगें पाते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अल्फा तरंगें सामान्यत: किसी व्यक्ति से तब अभिप्राप्त की जाती हैं जब उसकी आँखें बन्द होती हैं तथा उसका प्रमस्तिष्क 'अलसा' रहा होता है और डेल्टा तरंगें तब अभिलिखित की जाती हैं जब कोई व्यक्ति गहरी निद्रा में होता है। इसलिये तन्त्रिका विज्ञानी यह स्पष्ट करने में असमर्थ हैं कि जब कोई व्यक्ति 'योग' की अवस्था में होता है तब उससे हमें अल्फा तरंगें तथा डेल्टा तरंगे क्यों प्राप्त होती है!

इतना ही नहीं, हम अनेक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन भी पाते हैं: रक्त में लेक्टेट (Lactate) का संकेन्द्रण कम हो जाता है, ऑक्सीजन के उपयोग में तथा श्वसन-

दर और परिमाण में नाटकीय कमी हो जाती है, हृदय की धड़कन साधारण धीमी हो जाती है और रक्त-चाप निम्न लगभग अपरिवर्ती हो जाता है तथा त्वचा के विद्युत प्रतिरोध में द्रुत तथा उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है। अब, यह 'लड़ाई करने या पलायन करने' वाली अनुक्रिया, जब कि सामान्यत: तब होती है जब व्यक्ति सतर्क तथा सजग अवस्था में होता है, ठीक विपरीत है।

योग — मस्तिष्क में आत्मा का अस्तित्व सूचित करता है

मनोवैज्ञानिक, शरीर-क्रिया विज्ञानी तथा तन्त्रिका विज्ञानी यह कहते हैं कि योग में मन तथा अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र निश्चल हो जाता है। वे यह भी कहते हैं कि वह एक एकीकृत अनुक्रिया है। अब, चूँकि तनाव शरीर को उसकी प्रतिरक्षा हेतु तैयार करने के लिये अधश्चेतक को प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उद्दीप्त करता है अर्थात् लड़ने के लिये या पलायन करने के लिये, इसलिये योग को भी अधश्चेतक के ज़रिए उपर्युक्त परिवर्तन उत्पन्न करने चाहिए। पुन: चूँकि जब कोई व्यक्ति विश्रान्त होता है और उसका प्रमस्तिष्क 'अलसा' रहा होता है तब हम अल्फा तरंगे पाते हैं, इसलिये *योग की अवस्था यह दर्शाती है कि एक अन्तर्विवेकशील सत्ता है, चाहे हम उसे मन कहें या आत्मा कहें, जो कि सोच सकती है और सक्रिय रहती है, फिर भी इन्द्रियगत प्रत्यक्षण के लिये मस्तिष्क या जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र (आर.ए.एस.) का उपयोग नहीं करती, जिससे कि हमें वे तरंगें प्राप्त होती हैं जो कि उच्च विचार क्रिया की अवस्था के साथ विश्रान्ति दर्शाती है।* इस प्रकार, मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को उपयोग करने वाली 'आत्मा' के अस्तित्व की स्पष्ट सूचना मिलती है।

योग के प्रभावों से निकाले गये निष्कर्ष

आइये, इस बात को इस प्रकार कहें। आध्यात्मिक योग-साधना जिसमें 'स्व' का चिन्तन एक शान्तिपूर्ण तथा विशुद्ध आत्मा के रूप में किया जाता है, ऐसे परिवर्तन लाती है, जिनकी व्याख्या वस्तुत: उद्दीपन-अनुक्रिया (Stimulus response) के आधार पर नहीं की जा सकती। आधुनिक रसायन शास्त्र तथा

भौतिक शास्त्र भी इस घटना की व्याख्या नहीं कर सकते। मात्र यह ध्यान करने से कि "मैं शरीर से भिन्न एक आत्मा हूँ... मैं ईश्वर से हृदयपूर्वक प्रेम करता हूँ" आदि से शरीरक्रिया विज्ञानात्मक परिवर्तन कैसे घटित होते हैं यह तन्त्रिका विज्ञानियों के लिये अभी भी अव्याख्येय तथा आश्चर्यजनक बात है। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति ध्यान धारणा करता है वह व्यक्ति कोई भौतिक सत्ता नहीं होता तथा योग साधना करते समय वह इन्द्रियों के अधिकांश क्रियाओं को शान्त कर देता है और शरीर से विलग हो जाता है। तथापि, चूँकि उसकी संस्थिति मस्तिष्क-वृन्त, अधश्चेतक आदि का क्षेत्र है, इसलिये उसकी स्वयं की परिवर्तित अवस्था इस क्षेत्र पर प्रभाव उत्पन्न करती है। इस परिप्रेक्ष्य में चेतना की परिवर्तित अवस्था हमें आत्मा के अस्तित्व तथा ऊपर वर्णित क्षेत्र में उसकी अवस्थिति की पुष्टि के लिये प्रेरित करती है।

औषधियों द्वारा उत्पन्न परिवर्तित अवस्थायें

कतिपय औषधि प्रेरित अवस्थायें तथा सम्मोहनावस्थायें भी चेतना की परिवर्तित अवस्थायें हैं, किन्तु वे मानसिक दृष्टि से तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से योग की अवस्था से बहुत भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति एल.एस.डी. (Lysergic acid di-ethylamid) का उपयोग करता है वह व्यक्ति चेतना की एक परिवर्तित अवस्था, या जिसे मादक द्रव्य लेने वाले "ट्रिप" (Trip) कहते हैं उस अवस्था का अनुभव कर सकता है, किन्तु इस अवस्था में तथा योग द्वारा उत्पन्न अवस्था में बहुत अन्तर है। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति एल.एस.डी. लेता है उसके इन्द्रिय-प्रत्यक्षण में विकृति आ जाती है और वास्तविकता के साथ उसका सम्पर्क छूट जाता है, किन्तु जो व्यक्ति योग-साधना करता है वह व्यक्ति वास्तविकता का तथा इन्द्रिय-प्रत्यक्षण की दक्षता की अनुभूति करता है, और उसकी संज्ञानात्मक शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। वह वास्तविकता से कट नहीं जाता। पुनः, जबकि जिस व्यक्ति ने एल.एस.डी. (LSD) लिया हो उसे प्रत्यक्षणात्मक परिवर्तन के पूर्व चक्कर आते हैं तथा उसे वमन करने की इच्छा होती है, और उसकी ट्रिपें (Trips) सुखद या असुखद हो सकती हैं, किन्तु योग-साधना करने वाला व्यक्ति

योग की अवस्था में और योग की अवस्था के आरम्भ में तथा योग की अवस्था के पश्चात् भी हर्ष और आनन्द का अनुभव करता है। जो व्यक्ति एल.एस.डी. के प्रभाव में होता है उसका व्यवहार अनियन्त्रित हो जाता है, जबकि योग साधना करने वाला व्यक्ति अपने व्यवहार पर पहले से भी बेहतर नियन्त्रण रखता है।

अत्यन्त सुंझावात्मकता द्वारा भी सम्मोहनावस्था अभिप्राप्त की जाती है। किसी सम्मोहित व्यक्ति के इन्द्रिय-प्रत्यक्षणों में वृद्धि या कमी हो सकती है। उसे विभ्रान्ति हो सकती है अर्थात् वह ऐसी वस्तुओं को देख सकता है जो कि उसके सामने नहीं होती तथा उन वस्तुओं को नहीं देख पाता, जो कि उसके सामने होती हैं। वह अपने बाल्यकाल की विस्मृत स्मृतियों का प्रत्यास्मरण कर सकता है या उदाहरणार्थ विभ्रान्ति की अवस्था में यह कल्पना करें कि एक जलती हुई माचिस की तीली उसकी त्वचा को जला रही है, वह अपनी त्वचा पर फफोला बना सकती है।

कतिपय अन्य स्थितियों में भी चेतना की परिवर्तित अवस्थायें घटित होती हैं, उदाहरणार्थ निश्चेतक औषधियों (Anaesthetic drugs) द्वारा उत्पन्न अवस्था। मस्तिष्क की बीमारी या चोट भी चेतना की एक प्रकार की परिवर्तित अवस्था उत्पन्न कर सकती है, जो कि अति मूर्च्छा की अवस्था कहलाती है। तन्त्रिका विज्ञानियों द्वारा पता लगाया गया इन अवस्थाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ये सभी विभिन्न अवस्थायें किसी-न-किसी तरह से जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र, मस्तिष्क वृन्त तथा अधश्चेतक से जुड़ी हुई हैं।

इस प्रकार इस सत्य का संकेत मिलता है कि यह क्षेत्र चेतना या मानस तथा काया (सीमा) की अन्त:क्रिया का बिन्दु है, क्योंकि वह योग की अवस्था या सम्मोहन की अवस्था में सुख के रूप में प्रभावित कर सकता है या एल.एस.डी. के ज़रिए भी मन को प्रभावित कर सकता है। सम्मोहनावस्था के ज़रिए शरीर पर फफोले (Blisters) पैदा करना या योग-साधना द्वारा शरीर-क्रियात्मक परिवर्तन लाना, 'विचार' या 'मन' का प्रभाव दर्शाता है, जबकि मन पर एल.एस.डी. का

प्रभाव शरीर या मन में हुए रासायनिक परिवर्तनों का प्रभाव दर्शाता है, क्योंकि मन तथा शरीर की अन्त:क्रिया का स्थान मध्य मस्तिष्क तथा अधश्चेतक का क्षेत्र है।

तनाव को समझना

यदि हम शरीर के उस तन्त्र को समझ लें जो कि उसकी प्रणालियों को विनियमित करता है, तो हम आत्मा के अस्तित्व तथा मन की संस्थिति के प्रश्न को उचित रीति से समझ सकेंगे। आधुनिक तन्त्रिका-विज्ञानियों के द्वारा की गई व्याख्या के अनुसार, तनाव ऐसा कोई भी उद्दीपन होता है जो कि पियूष प्रतहार रक्त सी.आर.एच. (CRH) के विमोचन के लिये अधश्चेतक के हार्मोनों को प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उद्दीप्त करता है। अधश्चेतक के अप्रत्यक्ष उद्दीपन के परिणामस्वरूप प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्थ के लिंबिक या अन्य भागों से उस तक आवेगों का संवाहन हो सकता है।

तनाव भौतिक हो सकता है; तनाव मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है। मनोवैज्ञानिक तनाव, ऐसी कोई भी चीज़ है जिसे व्यक्ति या तो अपनी उत्तरजीविता के लिये या आत्म-छवि के लिये या ख़तरे के रूप में देखता है। इससे दुश्चिन्ता की भावना उत्पन्न होती है। क्रोध, घृणा, अवसाद, भय और दोष-भावना जैसी भावात्मक अनुक्रियायें मनोवैज्ञानिक तनाव की स्थितियों के प्रति सामान्य अनुक्रियायें हैं। बेचैनी की दशा में इधर-उधर घूमना, आलोचना करना, झगड़ना, झूठ बोलना, रोना आदि कुछ अन्य अनुक्रियायें हैं। यह पाया गया है कि मनोवैज्ञानिक तनाव शरीर-क्रियात्मक तनाव से सम्बन्धित है। दोनों ही कुछ मात्रा में एक-दूसरे के साथ होते हैं। इस तथ्य से यह भी प्रकट होता है कि मन तथा शरीर की अन्त:क्रिया का बिन्दु अधश्चेतक क्षेत्र तथा मस्तिष्क-वृन्त क्षेत्र है।

इसके अतिरिक्त, तनाव के परिणामस्वरूप भय, घृणा, क्रोध आदि जैसी अनुक्रियायें भी उत्पन्न होती हैं। इन अवस्थाओं को योग द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। उस समय यह चिन्तन करे कि ''मैं एक शुद्ध तथा आनन्दमय

स्वरूप आत्मा हूँ।" इससे यह प्रकट होता है कि इस क्षेत्र में एक ऐसी सत्ता उपस्थित है जो कि अभौतिक है और इन मानसिक अवस्थाओं — संवेगों, अनुभूतियों तथा अनुभवों से सम्बन्धित है। इसे ही हम 'आत्मा' कहते हैं। इसलिये इससे इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि आत्मा तथा चेतना अधश्चेतक में अवस्थित है।

अब विज्ञान द्वारा तथा व्यवहार द्वारा यह साबित हो गया है कि 'योग' गहरी विश्रान्ति तथा निश्चलता की स्थिति उत्पन्न करता है तथा मनुष्य को उच्च आनन्द तथा स्थायी शान्ति प्रदान करता है। इसलिये मनुष्य को योग-साधना के लिये समय निकालना चाहिए, क्योंकि जब आत्मा शान्ति तथा आनन्द के सागर परमात्मा के साथ सम्बद्ध होती है, तब उसे जिस हर्ष तथा आनन्द का अनुभव होता है वह ऐंद्रिक विषयों से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

निद्रा तथा स्वप्न से भी 'आत्मा' का अस्तित्व सूचित होता है

"अज्ञान की निद्रा तथा शरीर-सचेतना की तन्द्रा को त्याग दो। जागो और अपने लक्ष्य की ओर उत्साह तथा उमंग के साथ आगे बढ़ो, क्योंकि अब अमृतवेला आ गई है — जो जागने और ईश्वरीय ज्ञान का अमृत पीने का समय है।"

— शिव भगवानुवाच

निद्रा की स्थिति लाने वाले कारक चाहे जो भी हो फिर भी निद्रा के बारे में सामान्य विश्वास यह है कि वह शरीर को थकान तथा कठोर परिश्रम के अन्य प्रभावों से मुक्त कर देती है तथा उल्लासित कर देती है और उन परेशानियों से भी मुक्त कर देती है जिनका सामना मन को जागृत अवस्था में करना होता है।

यह पाया गया है कि मेडुला ऑब्लान्गैटा (Medulla Oblongata) में स्थित श्वसन के केन्द्रों जैसे मार्मिक केन्द्र निद्रा के दौरान सामान्य कार्य करते रहते हैं। वस्तुत: सम्पूर्ण स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र निद्रा के दौरान उसी तरह से कार्य करता रहता है जिस तरह से वह जाग्रत अवस्था में कार्य करता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि निद्रा के दौरान परा-अनुकंपी क्रिया कुछ अधिक होती है और अनुकंपी क्रिया कम होती है। लयबद्ध श्वसन में उपयोग में आने वाली पेशियाँ भी लगभग उसी रीति से कार्य करती हैं जैसे कि पहले।

निद्रा — शरीर के कतिपय भागों को विश्राम देती है

किन्तु इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि कंकाल-पेशी विन्यास की तुलनात्मक विश्रान्ति की अवस्था में आ जाता है। यह भी पाया गया है कि मुख्यत: मस्तिष्क के उच्चतर भागों की क्रिया विशेषत: प्रान्तस्था की क्रिया ही कम या उपान्तरित क्रिया की अवस्था में या सापेक्ष अक्रियता की अवस्था में पाई जाती है। यह भी

देखा गया है कि प्रेरक प्रान्तस्था (Motor cortex) से होने वाला विसर्जन निद्रा के दौरान प्रसुप्त हो जाता है। क्लाइटमैन (Kleitman), जिन्होंने निद्रा के सम्बन्ध में प्रयोग किये हैं, यह सुझाते हैं कि निद्रा पेशी की स्फूर्ति को कायम रखने वाले तन्त्रिका पेशी-तन्त्र की थकान के कारण आती है। यद्यपि इस तन्त्र का स्वरूप ही ऐसा है कि वह थकान का परिहार करने के लिये विशिष्टत: उपयुक्त रीति से कार्य करता है, तथापि कार्य की एक अवधि के पश्चात् पेशियाँ थक जाती हैं। इसलिये पेशियों की विश्रान्ति निद्रावस्था लाने में सहायता पहुँचाती है। क्लाइटमैन तथा कैमिले (Kleitmen and Camille) ने भी प्रायोगिक परीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन पशुओं की प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था निकाल दी गई हो वे पशु भी सोते हैं।

शरीर-तन्त्र — निद्रा (sleep) तथा जागरण (arousal) को अधोरेखित (underline) करता है

इसलिये, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सामान्यत: प्रान्तस्था की क्रियाशील अवस्था के आधार पर (ईईजी या कॉर्टिकोग्राम (carticogram) के ज़रिए) हम यह अवधारित कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति सो रहा है या जाग रहा है, तथापि आरोही जालाकार सक्रियकारक तन्त्र का अभिपुच्छ भाग (Caudal part) ही जागने की अवस्था को जाग्रत करने में या जागरण की अवस्था को आरम्भ करने में या जागरण की अवस्था को कायम रखने में प्रथम महत्वपूर्ण कारक है। प्रयोग द्वारा यह पाया गया है कि आर.ए.एस. (RAS) का अवरोधन होने से कोई जीवित प्राणी ऐसा व्यवहार करता है मानो कि वह गहरी निद्रा में हो या संवेदनाविहीन हो गया हो। तथापि, ऐसे जीवित प्राणी की प्रान्तस्थीय विद्युत क्रिया सामान्य निद्रा के लक्षण दर्शाती है। रोग-निदानात्मक रूप में यह देखा गया है कि जागरण, व्यवहारात्मक अर्थ में तथा ईईजी (EEG; Electro-encephalogranphic) के अर्थ में कॉर्टिसेप्टल मार्ग (corticipetal pathway) द्वारा हस्तक्षेपित होता है। इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि संवेदी उद्दीपन आरोही संवेदी मार्ग के ज़रिए, प्रान्तस्था के प्रबोधन की अवस्था उत्पन्न नहीं कर सकते,

किन्तु आर.ए.एस. (RAS) ही यह कार्य करता है। प्रयोगों द्वारा यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि यदि जागृतावस्था को प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था की अवस्था से परखा जाना हो तो जागृतावस्था सर्वप्रथम आरोही आर.ए.एस. (RAS) पर निर्भर होती है।

किन्तु जहाँ तक निद्रा या निद्रालुता का सम्बन्ध है, डबल्यू.आर. हेस (W.R. Hess) द्वारा किये गये प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि मस्तिष्क-वृन्त के कतिपय क्षेत्रों को उत्तेजित कर निद्रा उत्पन्न की जा सकती है। मस्तिष्क वृन्त के कतिपय केन्द्रों के अवरोधन से पेशी-स्फूर्ति कम हो जाती है, कंकाल पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, सिर झुक जाता है, अंग लटक जाते हैं, और शरीर के हिलने-डोलने में विकृति आ जाती है। किन्तु जैसा कि पूर्वगामी अध्याय में समझाया गया है, जालाकार रचना के जो कि पोन्स तथा मेडुला में पिरामिडीय मार्गों में या मस्तिष्क वृन्त में तथा मध्य मस्तिष्क की छादिक (Tegmentum) में पाई जाती है जो अधश्चेतक के साथ सम्बन्ध होते हैं। जालक मेरुरज्जू तन्तु, (The retico-spinal fibres) मस्तिष्क वृन्त को मेरुप्रेरक न्यूरॉनों (Spinal motor-neurons) से जोड़ते हैं तथा ये मार्ग जो कि सुविधाकारक भी हैं और अवरोध भी हैं, अधश्चेतक से जुड़े हुए हैं, और अधश्चेतक तथा चेतक के ज़रिए प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था से भी जुड़े हुए हैं, और इस बात का निर्णायक साक्ष्य है कि अधश्चेतक वह मुख्य क्षेत्र है जो कि निद्रा की घटना से जुड़ा हुआ है। इसीलिये यह पाया जाता है कि चेतकीय तथा अधश्चेतकीय क्षेत्रों की वृद्धि बहुधा अतिनिद्रा या जड़िमा (Hypersomnia or stupor) की अवस्था दर्शाती है। मध्य मस्तिष्क क्षेत्र की विशिष्टत: उस क्षेत्र की जिसके अन्तर्गत अधश्चेतक आता हो, क्षति होने से या उस पर दबाव पड़ने से बढ़ी हुई नींद के अत्यन्त स्पष्ट प्रभाव दिखाई देते हैं। इन क्षेत्रों के बाहर के विस्मृत क्षेत्र अन्तर्भूत होने पर भी निद्रा पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

रोग-निदानात्मक साक्ष्य यह दर्शाता है कि अधश्चेतक निद्रा का विनियमन करने वाला क्षेत्र है

पुन: 'स्लीपिंग सिकनेस' (Sleeping sickness) कहलाने वाले एक संक्रामक

रोग के मामले में किए गये रोग-निदानात्मक प्रेक्षणों से भी यह प्रकट होता है कि अधश्चेतक निद्रा की घटना से घनिष्ठत: सम्बन्धित है। स्लीपिंग सिकनेस रोग जो कि 'एन्सेफेलिटिस लेथार्जिका' (Encephalitis lethargica) भी कहलाता है, एक विषाणु संक्रमण द्वारा केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का आक्रमण है। इस संक्रमण की अधश्चेतक क्षेत्र के साथ विशिष्ट बन्धुता होती है। एन्सेफेलिटिस लेथार्जिका या स्लीपिंग सिकनेस बीमारी अनेक बार फैली है। इटली में 1919-20 में फैली थी। वोन इकोनोमो (Von Economo) ने भी 1916-17 की महामारी (Epidemic) के दौरान अनेक प्रयोग किये। वान इकोनोमो ने यह दावा किया कि इस रोग का अध्ययन अभिपुच्छ अधश्चेतक (Caudal Hypothalamus) तथा मध्य मस्तिष्क के तुंड (Rostral) भाग में निद्रा विनियामक केन्द्र की विद्यमानता दर्शाता है। लेरमिटी तथा टाउर्ने (Lhermittee and Tournay) भी, रोग-नैदानिक अध्ययनों के आधार पर, सारत: इसी निष्कर्ष पर पहुँचे।

इसके अतिरिक्त, यह सर्वविदित है कि न्यूरोसेस या चिन्ता (Neuroses or anxiety) से अनेक मामलों मे अनिद्रा रोग (Insomnia) हो जाता है, क्योंकि न्यूरोटिक व्यक्ति (अर्थात् वे व्यक्ति जो कि निरन्तर दबावों तथा संघर्षों का सामना करने की अपनी असमर्थता के कारण बंहुत परेशान रहते हैं) परिणामों से निरन्तर डरते हैं। ऐसी व्यक्ति की नींद, उसके पर्यावरणों तथा उसकी समस्याओं के प्रति, जो कि उसे एक ख़तरा प्रतीत होता है, वास्तविक, कल्पित या अतिरंजित अनुक्रियाओं के कारण बारंबार भंग हो जाती है। इसी प्रकार, उन्मादी (maniac; मनोविक्षिप्ति) भी निद्रा में बहुत व्यवधान डालती है। किन्तु हम अगले अध्याय में, अधश्चेतक में संवेगों के बाह्यकरण के केन्द्रीय तन्त्र का वर्णन करेंगे।

निद्रा की घटना भी मस्तिष्क में आत्मा की विद्यमानता को सूचित करती है

अब किसी सामान्य व्यक्ति की निद्रा के मामले में ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब-जब व्यक्ति सोना चाहता है तो वह संवेदी आवेगों को कम कर देता है या समाप्त कर देता है। उदाहरणार्थ, यदि बाहर शोरगुल हो

रहा हो तो वह अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लेता है। यदि उसका रेडियो चल रहा हो तो वह उसे बन्द कर देता है। यदि उसके शयन-कक्ष में तेज़ रोशनी हो तो वह बत्ती बुझा देता है। यदि बहुत गर्मी हो तो वह कूलर का बटन दबा देता है। किन्तु पुन: यदि कमरा इतना ठंडा हो जाता है कि वह एक संवेदी उद्दीपन का कार्य करता हो तो वह कूलर को धीमा कर देता है ताकि ठंड के रूप में जो संवेदी उद्दीपन हो उसे हटा दिया जाए। इसी प्रकार, वह ऐसे सभी साधनों का उपयोग करता है जिनसे उसकी पेशियाँ विश्रान्त हो जायें और ऊतक संवेदी उद्दीपन (Proprioceptive stimulation) को कम किया जा सके। यदि वह इस प्रकार से विश्रान्त हो जाता है तो भले ही व्यक्ति थका हुआ न हो तब भी निद्रा प्रेरित की जा सकती है। विश्रान्ति की अनुभूति करने के लिये लोग नर्म तकियों, फोम की दोहरी गद्दियों तथा गद्दीदार आराम कुर्सियों का उपयोग करते हैं, और जब वे ऐसा करते हैं तो वे आसानी से सो जाते हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि निद्रा के आगमन को आसान बनाने के लिये व्यक्ति — दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि के संवेदनों को न्यूनतम करने की कोशिश करता है। इसीलिये वह व्यक्ति शान्त, अन्धेरे कमरे में सोता है। हम यह पूछते हैं कि संवेदी उद्दीपनों को हटाने और सोने का निर्णय कौन करता है? प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था तथा जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS) के जागरण को अवरोधित करने का निर्णय कौन करता है? जैसा कि कोर्टिकोग्राम के ज़रिए किए गये प्रयोग दर्शाते हैं, प्रान्तस्था (cortex) चेतक (thalamus) को उद्दीप्त करती है और चेतक प्रान्तस्था को उद्दीप्त करता है और इस प्रकार विद्युत तरंगों की एक निरन्तर धारा चलती रहती है और चक्र जारी रहता है, किन्तु चेतक या अधश्चेतक के स्तर पर किसी प्रकार के अवरोधन के कारण प्रान्तस्थीय तरंगों के समाप्त हो जाने पर वह गहरी नींद में निरोधित हो जाता है; यह चक्र व्यक्ति के जागने के बाद चालू हो जाता है। हम पूछते हैं कि "इस अन्यथा सतत चलने वाले चक्र को कौन काटता है?" स्पष्ट है कि वह न तो प्रान्तस्था हो सकती है और न ही अधश्चेतक हो सकता है, जो कि चक्र के भाग है, बल्कि कोई ऐसी सत्ता इस चक्र को काटती है जो कि

दोनों तन्त्रों का उपयोग करती है। अब यह कोई सत्ता जो कि संवेदी उद्दीपनों को अभिप्रायपूर्वक समाप्त कर देती है या कम कर देती है और जो प्रान्तस्था द्वारा चेतक के उत्तेजन के चक्र को निरोधित या रोधित कर देती है, वह सत्ता है जो कि इनसे भिन्न है और वह 'आत्मा' है। यह विचार करते हुए कि शरीर थकान की अवस्था में है या कि शरीर के विभिन्न भागों को विश्राम करना चाहिए, ताकि अगले दिन वे दक्षतापूर्वक कार्य कर सकें, आत्मा अपनी इच्छा का उपयोग करती है तथा उद्दीपन के चक्र को काट देने का निर्णय करती है तथा स्वयं को 'वियुक्त' (detach) कर लेती है, ताकि शरीर विश्राम कर सके। वह एक चालक की तरह है, जो कि जब यह देखता है कि इंजन बहुत गर्म हो गया है या पेट्रोल समाप्त होने वाला है तो वह कार को चलाना रोक देता है। उसी प्रकार 'आत्मा' कार्य करती है।

एक अन्य मामले पर विचार कीजिए। एक व्यक्ति थकान महसूस कर रहा है, वह यह सोचता है कि यदि वह लेट जायेगा तो उसे नींद आ जायेगी, किन्तु उसे अगले एक घंटे तक सोना नहीं है, क्योंकि उसे चौकीदारी का अपना काम करना है। इसलिये, वह घूम-फिरकर अपनी जागरण-अवस्था को लंबा करना चाहता है, क्योंकि वह यह जानता है कि पेशियों को क्रियाशील रखकर वह नींद को टाल सकता है। अब, जबकि कंकाल पेशी-विन्यास को विश्रान्ति और विश्राम या आराम की आवश्यकता है और अधश्चेतक (या मस्तिष्क-वृन्त) में स्थित निद्रा-तन्त्र निद्रा का धावा सूचित कर रहा हो तो वह कौन है जो कि हस्तक्षेप करता है, जो कि पेशी-क्रिया द्वारा तथा किसी दूसरे चौकीदार के साथ बातचीत कर प्रान्तस्था को सतर्क तथा सजग रखकर निद्रा को भगाने का निर्णय करता है? स्पष्ट है कि वह प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था,अधश्चेतक, मस्तिष्क-वृन्त तथा कंकाल-पेशी विन्यास से भिन्न है, क्योंकि ये सभी इस क्षण निद्रा-प्रवण (sleep-prone) होते हैं।

एक ऐसे छात्र का उदाहरण लीजिए जो कि अन्तिम परीक्षा के लिये तैयारी कर रहा है। वह रात में देर तक पढ़ रहा है। उसे यह महसूस होता है कि निद्रा उसे

घेर रही है, किन्तु फिर भी उसे जागना है, क्योंकि उसे पाठ्य-पुस्तक के कुछ और पृष्ठ पढ़ने हैं। इसलिये वह उस आरामदेह बिस्तर पर नहीं जाता जो कि पास ही में लगा हुआ है, यद्यपि सोने की भौतिक प्रेरणा उपस्थित है। हमें यह जानना चाहिए कि पेशियों में स्थित इन्द्रिय-अंग, जो कि फैलनेट की अनुक्रिया करते हैं, कम अभ्यानुकूलन दर्शाते हैं; किन्तु जब कोई व्यक्ति किसी आरामदेह बिस्तर पर विश्रान्ति की स्थिति में लेट जाता है तो पेशी-मध्यग्राहकों से निकलने वाले संवेदी आवेग धीरे-धीरे कम हो जाते हैं और इससे नींद आती है, और इसलिये यदि यह छात्र बिस्तर पर लेटा होता तो उसे नीन्द आ जाती। किन्तु यह छात्र बिस्तर पर आराम नहीं करता क्योंकि वह यह जानता है कि ऐसा करने से नींद आ जायेगी। अब, वह कौन है जो कि कुर्सी पर सीधे बैठकर निद्रा के आक्रमण से अभिप्रायपूर्वक अपनी रक्षा करता है? क्या वह सम्पूर्ण शरीर तथा मस्तिष्क-तन्त्र से भिन्न नहीं है, जिसका वह उपयोग कर रहा है और सोने के लिये जाने के पहले कुछ और भी समय तक उसका उपयोग करना चाहता है?

एक अन्य उदाहरण, बात को संभवत: अधिक स्पष्ट कर देगा। एक माता उनींद्रापन महसूस कर रही है। वह अपने बच्चे के आने की प्रतीक्षा कर रही है। उसका यह विचार है कि जब उसका बच्चा सिनेमा देखकर वापस आ जायेगा तो वह सोने जायेगी। किन्तु उसे नींद आ जाती है। अब, यद्यपि वह नींद में हैं तथापि उसकी नींद पूरी नहीं है, क्योंकि वह अपने बच्चे की सुरक्षा के बारे में चिन्तित है। आज थोड़ी-सी भी आवाज़ उसे जगा देने के लिये काफी है, क्योंकि वह अपने बच्चे की प्रतीक्षा कर रही है। अब जबकि आन्तरिक अवरोधन की प्रक्रिया कार्य कर रही है (पावलोव ;Pavlov के शब्दों में), ऐसा प्रतीत होता है कि एक विश्लेषक सापेक्षत: मुक्त है, क्योंकि चिन्तित माता की निद्रा वैसी पूर्ण या गहरी निद्रा नहीं हैं, जैसा कि अन्य दिनों में हुआ करती थी। *अब, वह कौन है जो कि एक विश्लेषक को मुक्त रखती है? वह कौन है जो निद्रा में भी चिंतित है और प्रतीक्षा कर रहा है?* वह — 'आत्मा' नामक एक अधि-भौतिक सत्ता है।

नींद में चलने तथा नींद में बोलने के मामले भी आत्मा का अस्तित्व सूचित करते हैं

पुनः, निद्राचार अर्थात् नींद में चलने का मामला लीजिये। जब कोई व्यक्ति निद्राचार की अवस्था में होता है तो उसके आसपास के पर्यावरण के प्रति उसकी प्रतिक्रियाशीलता निम्न होती है, जिससे यह प्रकट होता है कि वह सो रहा है। जब हम उसे जगाते हैं तो वह हड़बड़ा जाता है जिससे यह प्रकट होता है कि जब वह नींद में चल रहा था तब वह एक भिन्न (आन्तरिक) विश्व में था और अब उसे उस विश्व से बाहर खींचकर जागृतावस्था के इस विश्व में ले आया गया है। जब यह व्यक्ति जागता है तो उसे किसी भी स्वप्न की याद नहीं रहती, जिससे यह प्रकट होता है कि वह गहरी, मंद-तरंग वाली निद्रा में था और द्रुत नेत्र गति (Rapid eye movement) वाली स्वप्नपूर्व निद्रा में नहीं था। कुछ लोग बहुत कम अवधियों में निद्रा में चलते हैं; वे केवल बिस्तर से उठते हैं, कुछ देर खड़े रहते हैं, थोड़ा चलते हैं और फिर बिस्तर पर लौट आते हैं। अन्य लोगों के मामले में यह क्रिया और अवधि अधिक होती है। उनमें से कुछ लोग दरवाजे तक भी जाते हैं, दरवाजे को खोलते हैं तथा बाहर जाते हैं और कुछ देर चलने के बाद बिस्तर पर लौट आते हैं। (फिर भी दूसरे दिन सुबह उन्हें पूरी घटना का स्मरण नहीं रहता)। कुछ लोग बाहर जाकर अपनी कार का दरवाजा खोलने की भी कोशिश करते हैं। तब हम यह पूछ सकते हैं कि "जब निद्रा का तन्त्र क्रियाशील होता है तो वह कौन है जो कि गहरी निद्रा में भी चलने के लिये प्रेरक प्रान्तस्था (Motor-cortex) तथा पैरों का उपयोग करता है? स्पष्टतः वह कोई ऐसा है जो कि निद्रा से प्रभावित नहीं होता और सोचता रहता है, इच्छा करता रहता है और क्रिया करता रहता है, यद्यपि उसने निद्रा के दौर में शरीर के कुछ भागों का उपयोग किया होता है। यह वह कोई सत्ता — 'आत्मा' है।

इसी प्रकार, निद्रा मे बोलना भी हमें चेतना को देखने का अवसर प्रदान करता है। मनुष्य द्रुत-नेत्र-गति (Rapid eye movement) वाली निद्रा में भी बोल सकता हैं। यद्यपि अधिकांश मामलों में यह घटना तब घटित होती है जब कोई

व्यक्ति निद्रा तथा जागरण के बीच की सीमा-रेखा वाली अवस्था में होता है। जागरण की अवस्था में वह विशिष्टत: जाग्रत होता है तथा हम उससे बातचीत कर सकते हैं। जब कोई व्यक्ति द्रुत-नेत्र-गति वाली निद्रा की अवस्था में बोलता है तो यह पाया जाता है कि उस अवधि के दौरान वहा संवेगात्मक गुण दर्शाता है, और प्राय: उसके परिवेश में कोई भी निर्देश-बिन्दु नहीं होता। जब हम उसे जगाते हैं तो वह हमें बताता है कि वह स्वप्नावस्था में था।

स्पष्ट है कि जब अवरोधात्मक तन्त्र क्रियाशील होता है तो ऐसी कोई सत्ता होती है जो कि स्वयं को इन्द्रियों से विलग (detach) कर लेती है, यद्यपि पूर्णत: नहीं और यह सत्ता सुविधाकारक तन्त्र या अवरोधक तन्त्र से या शरीर के निद्रा तथा जागरण तन्त्र से भिन्न या पृथक होती है। यह तथ्य 'आत्मा' के अस्तित्व का संकेत देता है।

निद्रा तथा आत्मा

जब कोई व्यक्ति सोता है तो उसके बारे में संस्कृत भाषा में कहते हैं : स्वपिति (स्वयं अपितो भवति)। इसका अर्थ यह है कि वह व्यक्ति 'स्व' की गहराई में चला गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अधि-भौतिक शब्दों में 'निद्रा' से हमारा आशय क्या है? गूढ़ विज्ञानों (Esoteric Sciences) के अनुसार, निद्रा आत्मा को पर्यावरणों से, इन्द्रियों से तथा बाहरी विश्व के साथ के सम्पर्कों से वापस ले लेता है। इस अवस्था में आत्मा प्रेरक प्रान्तस्था को, प्रेरक तन्त्रिका तन्त्र को तथा सामान्यत: संवेदी तन्त्रिका तन्त्र को भी अकेला छोड़ देती है तथा स्वयं में विश्राम करती है। जब वह ऐसा करती है तो वह यह पाती है कि शरीर विश्रान्त हो गया है तथा अब पुन: दक्षतापूर्ण कार्य करने के लिये उपयुक्त हो गया है। योग-साधना द्वारा भी यही किया जा सकता है। कतिपय दृष्टियों से योग की अवस्था भी निद्रा जैसी ही है। योगावस्था तथा निद्रावस्था दोनों ही में जो एक बात सामान्य है वह यह है कि योगावस्था में भी व्यक्ति स्वयं को प्रेरक क्रिया से हटा लेता है तथा स्वयं में विश्राम करता है। निद्रावस्था तथा योग की अवस्था में प्रधान अन्तर यह है कि योग की अवस्था में 'स्व' अपने को विश्व के विचारों से

वापस खींचकर आध्यात्मिक सत्यों में मग्न हो जाता है। जब प्रेरक तन्त्रिका तन्त्र तथा इन्द्रिय-अंगों आदि को उन्हीं के सहारे छोड़ दिया जाता है तो वह जब 'स्व' दैनिक कार्य की स्थितियों में लौटता है तो वह अपने को बहुत विश्रान्त पाता है। अब यदि हम इस परिप्रेक्ष्य में निद्रा को समझें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि निद्रा कहलाने वाली स्थिति या अवस्था की व्याख्या आत्मा के अस्तित्व को माने बिना नहीं की जा सकती, क्योंकि वह 'आत्मा' ही है जो कि स्वयं या कतिपय (certain) औषधियों के ज़रिए जागरण तन्त्र से वियोजित हो जाती है।

स्वप्न तथा आत्मा

ईईजी तथा नेत्र गतियों से यह पाया गया है कि सभी मनुष्य हर रात को बहुत स्वप्न देखते हैं। फ्रायड (Sigmund Freud) का यह कहना था कि स्वप्न अर्थपूर्ण होते हैं तथा वे किसी व्यक्ति की मनोगत्यात्म (Psychodynamic) आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करते हैं। फ्रायड का यह विचार था कि स्वप्न में देखी जाने वाली वस्तुयें प्रतीक (Symbols) होती हैं। यदि हम इन प्रतीकों का कूटवाचन (Decode) करें तो हम किसी व्यक्ति की समस्याओं के क्रोड (Core) को जान सकते हैं। कुछ अन्य विचारक यह कहते हैं कि स्वप्न में हम उन छापों का प्रत्यक्षण करते हैं जो कि मूल घटनायें, जब वे हमारी जागृतावस्था से गुजर जाती हैं, अपने पीछे छोड़ जाती हैं।

अब, स्वप्न विषयक जिस किसी भी दृष्टिकोण को हम स्वीकार करें, एक बात स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि स्वप्न की अवस्था में मन या चेतना भी क्रियाशील होती है भले ही वह बाहरी विश्व तथा पर्यावरण से तथा शरीर के प्रेरक तन्त्र से वियोजित होती है। स्वप्न में आत्म-अभिज्ञता भी होती है। इसलिये, निष्कर्ष यह है कि मन या आत्मा एक पृथक् सत्ता है, जो कि संवेदी आगत (Sensory input) के बिना भी सोच सकती है (स्वप्न देख सकती है)। निद्रा के दौरान मन या प्रज्ञा इन्द्रियों के साथ मिलकर कार्य नहीं कर रही होती है, बल्कि इनके बिना कार्य करती है। निद्रा के समय के दौरान उसका ध्यान बाहरी उद्दीपनों से हट जाता है और अब उसमें मग्न हो जाता है जो कि अतीत में घटित

हुआ था। स्वप्न किसी व्यक्ति के क्षमित प्रभावों या संवेगों का अंशत: संस्मरण और अंशत: बाह्यकरण है, अंशत: उसकी समस्याओं के समाधान को खोजने की कोशिश है; अंशत: अपने दुष्कर्मों के लिये पीड़ित होने की और अपने सत्कर्मों के लिये आनन्दित होने की अवस्था है। स्वप्न पर हम चाहे जिस किसी भी दृष्टिकोण से विचार करें फिर भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मस्तिष्क में एक अन्तर्विवेकशील 'स्वत्व' है, जो कि मोटर तन्त्र तथा संवेदी तन्त्र की विश्रान्ति की अवस्था में इनमें से किसी एक क्रिया में संलग्न रहता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकालने के लिये प्रेरित होते हैं कि मस्तिष्क में 'आत्मा' है जो कि जब व्यवहारात्मक तन्त्र नींद में होता है तब विचारों, संवेगों तथा स्मृति के चारे की जुगाली (cud of thoughts) करता है।

इसके अतिरिक्त, मनोविश्लेषण ने यह तथ्य स्थापित कर दिया है कि प्रत्येक स्वप्न व्यक्ति के अतीत से जुड़ा हुआ होता है। स्वप्न में आत्मा कतिपय अतीत कालीन घटनाओं को सतह पर ला देती है। इसलिये यह प्रकट होता है कि जबकि शरीर बढ़ चुका होता है तथा रासायनिक तथा जैव परिवर्तन घटित हो चुके होते हैं, शरीर में एक ऐसी सत्ता रह गई है जो कि अतीत का स्मरण कर सकती है तथा उसे वर्तमान के साथ सह सम्बद्ध कर सकती है और वह अनुभूति कर सकती है। इससे यह सत्य स्थापित हो जाता है कि 'आत्मा' का अस्तित्व है।

इसलिये, 'स्व' को शरीर तथा मस्तिष्क से भिन्न एक सत्ता जानकर हमें शरीर-सचेतन (देह-अभिमान ;body-consciousness) रूपी अज्ञान की निद्रा को त्याग देना चाहिए। अब हमें 'आत्म-सचेतन' (आत्म-अभिमानी; soul-consciousness) हो जाना चाहिए, क्योंकि अब वह समय आ गया है कि हम जागें, ईश्वरीय ज्ञान का अमृत पियें तथा हमारे लक्ष्य की ओर बढ़ें।

क्या मस्तिष्क में अधि-भौतिक मन या आत्मा है?

''आत्मा के पास ही रुचि, पसन्द और दृढ़ता की चेतना होती है। आत्मा ही अपने स्वयं के विचारों का मूल्यांकन करती है, गुण-विवेचन करती है तथा उपभोग करती है। आप इसे जानकर आनन्द का उपभोग करो, सद्गुणों का विवेचन करो, बुराइयों का उन्मूलन करने की दृढ़ता रखो तथा योगी बनने की पसन्द अपनाओ तो इस जीवन में ही तुम मुक्ति पाओगे।''

— शिव भगवानुवाच

पूर्वगामी अध्याय में हमने यह स्पष्ट किया है कि 'आत्मा' मस्तिष्क तथा शरीर से भिन्न है, फिर भी कुछ लोग यह विश्वास करते हैं कि विचार बाह्य उद्दीपनों के प्रति हमारे तन्त्रिका-भौतिक तन्त्र की अनुक्रिया का परिणाम हैं। उनकी यह राय है कि शरीर या मस्तिष्क से भिन्न कोई 'आत्मा' या 'आत्म-सचेतन मन' (soul-consciousness mind) नहीं है। इसलिये इस अध्याय में हम इस बात का परीक्षण करेंगे कि क्या हमारी विभिन्न इन्द्रियों, हमारे केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र, हमारे अनुकंपी तन्त्रिका-तन्त्र, हमारी अन्त:स्रावी ग्रंथियों तथा हमारे शरीर के अन्य भागों के साथ मिलकर कार्य करने वाले हमारे मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों या भागों के कार्यों के आधार पर हमारी सभी मानसिक घटनाओं की सन्तोषजनक व्याख्या की जा सकती है? यदि हम यह पायें कि ये नितान्त अपर्याप्त हैं तथा अनेक (यदि सभी नहीं तो) मानसिक तथा भौतिक घटनाओं की व्याख्या करने के लिये किसी अभौतिक, अपदार्थिक या अनुभवातीत सत्ता के अन्तर्भाव की आवश्यकता हो तो हमें 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करना होगा। अब हम कुछ ठोस उदाहरण लेकर इस पर चर्चा करेंगें, ताकि हमारी चर्चा स्पष्ट हो जाए।

आइये, हम गिरते हुए एक सेब के दृश्य का उदाहरण लें, जिसे कि न्यूटन

(Newton) ने देखा था, या उबलती हुई केतली (kettle) के ढक्कन के हिलने के दृश्य का उदाहरण लें जिसे कि स्टीम इंजन के आविष्कारक जेम्स वाट (James Watt) ने देखा था। जीव-विज्ञानीय या तन्त्रिका विज्ञानीय दृष्टि से ये दृश्य दृष्टि-तन्त्रिकाओं (Optic nerves) तथा नेत्र-पटल (Retina) के ज़रिए दृष्टि प्रान्तस्था तक पहुँचे होंगे तथा एक चित्र के रूप में एकीकृत तथा संश्लेषित हुए होंगे। यदि मस्तिष्क को, एक कम्पूयटर की तरह यह बताया गया होता कि इन मामलों में क्या करना चाहिए तो किसी मनुष्य ने एक रोबोट की तरह उस सेब को उठा लिया होता तथा ढक्कन को हटा दिया होता, क्योंकि वही इन्द्रियों का तथा मस्तिष्क की संवेदी तथा प्रेरक प्रान्तस्था का कार्य है। या शरीर के संवेदी तथा प्रेरक तन्त्र की जो भी अन्य प्रतिक्रिया हुई होती, बहरहाल मस्तिष्क ने गिरते हुए सेब या हिलते हुए ढक्कन की पहेली के हल की खोज का काम अपने जिम्मे न लिया होता, क्योंकि उद्दीपन आवश्यकता इस प्रतिक्रिया की मांग नहीं करता था।

किन्तु, जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं, इन दृश्यों का अन्त ढक्कन के हटा दिए जाने या सेब के उठा लिये जाने के साथ नहीं हुआ, किन्तु वे दृश्य उसके भी परे गये। उन दृश्यों ने जेम्स वाट तथा न्यूटन के मन में जिज्ञासा उत्पन्न की। न्यूटन के मन में अनेक प्रश्न उठे; उनमें से कुछ प्रश्न ये हैं : ''सेब का फल नीचे क्यों गिरा? वह ऊपर क्यों नहीं गया?'' वाट के मन में यह प्रश्न उठा कि ''ढक्कन क्यों हिला?'' जिज्ञासा इतनी गहरी थी कि उसने उन्हें गहराई से सोचने, संभव कारणों को खोज निकालने, निष्कर्षों को अन्तिम रूप देने, निष्कर्षों का मूल्यांकन करने तथा उसके पश्चात् सिद्धान्त निर्मित करने तथा नियम सूत्रित करने के लिये प्रेरित किया। स्पष्ट है कि उद्दीपनों ने मात्र यान्त्रिक, जैव-भौतिक, विद्युत-रासायनिक या तन्त्रिका विज्ञानीय अनुक्रिया आकर्षित नहीं की, बल्कि एक ऐसी अनुक्रिया आकर्षित की, जो कि यह दर्शाती है कि मस्तिष्क में कोई ऐसी सत्ता स्थित है जो कि भौतिक, रासायनिक या जैव स्वरूप की नहीं है, किन्तु अधि-भौतिक और (1) उसके पास स्वयं की इच्छा होती है, (2) यदि वह चाहे तो समस्याओं का समाधान पाने के लिये कार्य करने का निर्णय कर सकती है जो कि उद्दीपन के परे जा सकते हैं। इस सत्ता को हम 'आत्मा' कहते हैं।

सभी लोग इस बात से सहमत होंगे कि उठाए गये प्रश्न प्रथम दृष्ट्या (prima facie) इनमें से किसी भी मामले में दृष्टिक उद्दीपन की रचना नहीं है। विभिन्न जैव-विज्ञानों का हमारा अध्ययन हमें यह बताता है कि यदि व्यक्ति सजग हो तो गिरते हुए सेब या हिलते हुए ढक्कन के रूप में जो उद्दीपन प्रस्तुत हुआ था वह उद्दीपन आर.एन.ए. (RNA) में कूटबद्ध विद्युत आवेगों के रूप में या रासायनिक परिवर्तनों के रूप में या न्यूरॉनों तथा संयोजिकाओं के आण्विक परिवर्तनों के रूप में परिवर्तित हो जाएगा, या किसी प्रेरक क्रिया के रूप में परिणत होगा या कुछ स्मृति-चिह्न छोड़ जायेगा। किन्तु किसी भी अव्याख्येय रीति से उद्दीपन कोई ऐसा समीकरण स्थापित नहीं कर सकता था, जो कि गुणवत्ता, मात्रा, स्वरूप या रूप में किसी खोज की ओर ले जाने वाली अनुक्रिया उत्पन्न कर सकता था, अर्थात् कोई ऐसी अनुक्रिया उत्पन्न नहीं कर सकता था जो कि मुख्यत: देखने वालों की इच्छा, पसन्द, चयनात्मक अवधान पर निर्भर होती है। वर्तमान मामलों में ये देखने वाले व्यक्ति न्यूटन तथा जेम्स वाट ने उक्त घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया नहीं होता या उनमें कोई गहरी दिलचस्पी न ली होती या अन्वेषण करने की अपनी इच्छा का प्रयोग न किया होता तो वह बात इतनी दूर तक नहीं जाती, क्योंकि मस्तिष्क स्वयं के परे नहीं जा सकता; वह अपनी स्वयं की जैव या जैव-भौतिक सीमाओं को पार नहीं कर सकता। इससे यह प्रकट होता है कि मस्तिष्क में कोई अन्य सत्ता भी है और उस सत्ता के पास इच्छा है और उसी सत्ता ने उक्त विषय में दिलचस्पी ली और उस पर सोचा, विचारा।

अब, यदि कोई व्यक्ति यह भी विश्वास करता है कि पूर्वोक्त समस्याओं का निर्माण करने का कार्य तथा सेब को नीचे गिराने वाली शक्ति की खोज करने का निर्णय लेने का कार्य मस्तिष्क-ऊतक (Brain Tissue) के कार्य थे, तो इन कार्यों की व्याख्या जीव-रसायन के आधार पर या भौतिकी के नियमों के आधार पर या तन्त्रिका विज्ञान के नियमों के आधार पर या किसी भी विज्ञान के आधार पर करना उसका उत्तरदायित्व है। किन्तु कोई भी व्यक्ति सन्तोषजनक रूप में यह नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, हम आनुवंशिकी को लें। यदि कोई व्यक्ति यह

कहे कि इन प्रतिभाशाली व्यक्तियों के मस्तिष्क में कूटबद्ध आनुवंशिक अनुदेश ऐसे थे कि उन्होंने इस विशेष रीति से अनुक्रिया की या उनका सामाजिक पर्यावरण, उनका पालन-पोषण, उनके आनुवंशिक (hereditary) या वंशागत (genetic) कारक ऐसे थे कि वे इस प्रकार से सोचने में सक्षम थे, तो जो व्यक्ति अनुक्रिया की व्याख्या इस प्रकार से करता है उसे यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि कोई कार्य करने की योग्यता उस कार्य को करने से भिन्न है। किसी कार्य को करने के लिये मात्र योग्यता की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि रुचि, पसन्द तथा सचेतन जिनकी व्याख्या मस्तिष्क की आनुवंशिक अथवा वंशागत योग्यताओं सहित उसके उत्पादों के रूप नहीं की जा सकती। इसलिये आनुवंशिक कूटकरण के आधार पर कोई व्यक्ति केवल यह कह सकता है कि न्यूटन तथा जेम्स वाट के पास मस्तिष्क की कुछ विशेष शक्तियाँ थीं किन्तु कोई व्यक्ति यह स्पष्ट नहीं कर सकता कि उन्होंने उन घटनाओं के कारणों को खोजने के लिये अपनी इच्छा का उपयोग क्यों किया और इस एकल उद्दीपन ने उन्हें स्थायी रुचि लेने तथा प्रयास करने के लिये प्रेरित कैसे किया और वह यदि मन या आत्मा कहलाने वाली एक अधि-भौतिक सत्ता नहीं है तो वह कौन है जो कि इच्छा का प्रयोग करती है और जिसके पास रुचि होती है या अभिप्राय होता है?

मस्तिष्क उद्दीपन (stimulus) के परे कार्य नहीं कर सकता

पुन: चूँकि मस्तिष्क एक भौतिक सत्ता है इसलिये वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। रसायन शास्त्र या भौतिक शास्त्र या जीव-रसायन शास्त्र तथा शरीर क्रिया विज्ञान के नियम यह कहते हैं कि कोई भी प्रतिक्रिया उसकी क्रिया के बराबर होगी, और हम यह जानते हैं कि जैव रसायन (Bio-chemistry) में असन्तुलित समीकरणों में भी संमात्रा तथा ऊर्जा के संरक्षण के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जाता। किन्तु सेब के गिरने या ढक्कन के हिलने के उपर्युक्त दृष्टान्तों में एक निश्चित संकेत है कि मस्तिष्क में एक अधि-भौतिक सत्ता है, जिसके पास एक इच्छा है जिसके कारण उसने विचार-प्रक्रिया तथा प्रयासों को मूल उद्दीपन द्वारा अपेक्षित तथा उत्पन्न सीमा के परे जारी रखने का निर्णय किया

है। उद्दीपन के समाप्त हो जाने पर भी खोज का जारी रहना स्पष्टत: यह दर्शाता है कि यह विस्तार वह नहीं है जिसे कि उद्दीपन, अपने स्वयं के स्वरूप द्वारा भौतिक या रासायनिक नियमों के आधार पर, मांगेगा या उत्पन्न करेगा, किन्तु वह किसी ऐसी अन्य 'अन्त:प्रज्ञाशील' (the intuitive) या 'अनुध्यानशील' (contemplative) स्वरूप का परिणाम है, जिसकी इस समस्या में रुचि है, और वह अधि-भौतिक सत्ता जिसके पास एक इच्छा, एक रुचि तथा एक अभिप्राय है, वह है जिसे कि हम 'मन' या 'आत्मा' कहते हैं।

उद्दीपन की अपेक्षा के परे कार्य करने की इच्छा का प्रयोग कौन करता है?

एक अन्य उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति एक धार्मिक सभा में उपस्थित होने जाता है। वहाँ वह एक बहुत प्रेरक तथा उद्दीपक प्रवचन सुनता है। प्रवचनकर्त्ता का स्वर उस व्यक्ति की प्रान्तस्था के श्रवण क्षेत्रों में जाता है और वहाँ उसका संश्लेषण होता है और कूटवाचन (Decoded) होता है, किन्तु वह उद्दीपन इसी के साथ समाप्त नहीं हो जाता। न केवल श्रोता अपनी स्वयं की इच्छा से वह प्रवचन सुनने में मग्न रहता है जब वह प्रवचन चलता रहता है, किन्तु प्रवचन के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अर्थात् उद्दीपन के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी श्रोता उस पर बार-बार चिन्तन-मनन करता है। उसके भीतर जीवन का प्रयोजन तथा अर्थ खोजने की जिज्ञासा जाग उठती है। वह स्वयं से पूछता है, "यह विश्व क्या है और यह सब किस लिये है?" यह जानना चाहता है कि, "मेरे अस्तित्व का स्वरूप तथा प्रयोजन क्या है?" "क्या इस विश्व के परे कोई विश्व है और क्या मृत्यु के पश्चात् जीवन है?" अब वह इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये प्रयास करने लगता है।

अब, यह उदाहरण देकर हम जो बात कहना चाहते हैं वह यह है कि घटनायें मात्र हमारी इन्द्रियों या हमारे तन्त्रिका-तन्त्र या हमारे मस्तिष्क के स्तर पर घटित नहीं होती, बल्कि इनके अतिरिक्त एक ऐसी सत्ता है जो कि अपनी इच्छा का प्रयोग करती है, उन वस्तुओं को चुनती है जिनमें उसकी रुचि होती है, इन चुनी

हुई वस्तुओं पर निरन्तर ध्यान देती है, कतिपय ऐसी समस्यायें निर्मित करती है जो कि उसकी अपनी खोज होती है, मूल उद्दीपन के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी इन समस्याओं पर तथा उसके संभव समाधानों पर चिन्तन करती है, संप्रत्ययों का निर्माण करती है या नये प्रत्ययों (ideas) पर पहुँचती है या कुछ खोजें करती है।

यह स्पष्ट है कि ऊपर हमने जो उदाहरण उद्धृत किया है (प्रवचन सुनने वाले व्यक्ति का) उसमें संवेदी तथा प्रेरक क्रियायें या प्रत्यक्षण (Perceptions) वे नहीं हैं जो कि साधारणत: तब होंगे या होने चाहिए जब हम उद्दीपन तथा अनुक्रिया पर जीव-विज्ञानीय या तन्त्रिका-विज्ञानीय दृष्टि से विचार करें, क्योंकि जिज्ञासा करने, इच्छा का प्रयोग करने, किसी समस्या का उत्तर खोजने, कोई सिद्धान्त निर्मित करने आदि के कार्य की व्याख्या जीव-रासायनिक या जीव-विज्ञानीय प्रक्रिया के रूप में नहीं की जा सकती, बल्कि ये भौतिक या पदार्थिक सीमाओं के परे हैं। यदि मस्तिष्क में कोई इन्द्रियातीत सत्ता न होती तो प्रवचन को मस्तिष्क के श्रवण-क्षेत्रों में ग्रहण किया गया होता तथा उसने वहाँ से कोई प्रेरक चालित की होती तथा संभवत: कुछ स्मृति चिह्न छोड़े होते। किन्तु चूँकि संवेदी संदेशों का कूटवाचन किया जाता है, निर्वचन किया जाता है तथा चयन की प्रक्रिया होती है और इच्छा का उपयोग होता है और इन सभी बातों की अभिज्ञता भी होती है, इसलिये वहाँ एक इन्द्रियातीत, अन्तर्विवेकशील सत्ता होती है, जो कि अपने निर्णय, लक्ष्य या चयनित प्रयोजन की उपलब्धि के लिये, जहाँ तक उद्दीपन (stimulus) अपेक्षा करता है उसके परे, विचारों तथा समन्वेषण की प्रक्रिया जारी रखती है। इस इन्द्रियातीत तथा अन्तर्विवेकशील सत्ता को हम 'आत्मा' या 'आत्म-सचेतन मन' कहते हैं।

मस्तिष्क की क्रिया को वाञ्छित दिशा में कौन ले जाता है?

तन्त्रिका विज्ञानीय मशीनरी तथा आत्म-सचेतन मन या आत्मा के इस द्विभाजन (Dichotomy) को एक अन्य ढंग से स्पष्ट करें।

जब हमारी इन्द्रियों को कोई उद्दीपन प्राप्त होता है तो वे आरोही मार्गों के

ज़रिए सन्देशों को मस्तिष्क के सुसंगत भागों में भेजते हैं। उसके पश्चात्, आँखों, कानों, नाक आदि को प्रदान किए गये उद्दीपन के कारण प्राप्त सन्देशों को न्यूरोनल मशीनरी (neuronal machinery) द्वारा संश्लेषित किया जाता है। इस बिन्दु तक की अर्थात् एक तन्त्रिकीय रूप से एकीकृत संयोजन के निर्माण के बिन्दु तक की प्रक्रिया नि:सन्देह एक शरीर-क्रियात्मक प्रक्रिया है और उसकी व्याख्या उस आधार पर की जा सकती है। किन्तु हमारा मुद्दा यह है कि मस्तिष्क में कतिपय ऐसी घटनायें होती हैं। इसलिये, हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि मस्तिष्क के सम्पर्क क्षेत्र (अधश्चेतक क्षेत्र;Hypothalamic area) में कोई ऐसी सत्ता आसीन है जो कि तन्त्रिकीय रूप से एकीकृत इस संयोजन को 'पढ़ती' है। वह क्षण-प्रति-क्षण जटिल तन्त्रिकीय या संवेदी आगत सेन्सरी (Sensory input) को पढ़ती है तथा निर्वचन करने या कूटवाचन करने, परखने, चयन करने, मिश्रण करने आदि की एक सूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत क्रिया में संलग्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त वह मस्तिष्कीय घटनाओं पर अपनी स्वयं की इच्छा का प्रयोग करती है और मस्तिष्कीय क्रिया को जिस दिशा में वह उस समय संलग्न हो, उससे किसी अन्य दिशा में परिवर्तित करने का निर्णय भी कर सकती है, ताकि वाञ्छित परिणाम प्राप्त हो सके। उदाहरणार्थ यदि आप मुझे यह बता रहे हो कि किसी अन्य व्यक्ति ने कल आपके साथ कैसा व्यवहार किया तथा उसने आपको मेरे बारे में क्या बताया तो मैं आपको बोलने से रोककर यह कह सकता हूँ कि आप एक मिनट प्रतीक्षा करें। मैं आपकी बात द्वारा प्रदान की गई श्रव्य सूचना को मेरे मस्तिष्क की शंख पालि (Temporal lobe) में ग्रहण करते हुए तत्काल कुछ समय के लिये विराम लगाने का निर्णय कर सकता हूँ और उसके पश्चात् अपने ध्यान को मोड़कर तन्त्रिकीय क्रिया को अतीत की ओर ले जा सकता हूँ, ताकि मैं अपनी स्मृति से किसी घटना का अभिलेख (जो कि मुझे सुसंगत प्रतीत होता हो) प्राप्त कर सकूँ जैसे कि कोई व्यक्ति अपेक्षित विषय पर लिखी गई पुस्तक को प्राप्त करने के लिये, किसी पुस्तकालय में रखी हुई पुस्तकों की छानबीन करता है, फिर सुसंगत घटना की स्मृति को ढूँढ़ निकालने के बाद मैं मेरे विचारों को समुचित या प्रभावी रीति से व्यक्त करने के लिये मस्तिष्क के भाषा क्षेत्र (Wernicke's

area) आदि का उपयोग कर सकता हूँ। इस प्रकार वहाँ केवल तन्त्रिकीय मशीनरी ही कार्य नहीं कर रही होती है, बल्कि वहाँ कोई अन्य सत्ता भी होती है जो कि तन्त्रिकीय स्थल पर कार्य करती है, कुछ तन्त्रिकीय घटनाओं का चयन करती है (जिसमें उसकी रुचि हो) अपनी स्वयं की इच्छा तथा पसन्द का उपयोग करती है और वह तन्त्रिकीय वाचन को रूपान्तरित करती है या उसकी आलोचना करती है, अपनी स्मृति से कतिपय विगत घटनाओं का प्रत्यास्मरण करती है और उन्हें इन वर्तमान घटनाओं के साथ सहसम्बद्ध करती है तथा यह निर्णय करती है कि क्या किया जाए। वह तन्त्रिकीय क्रिया को एक दिशा से वापस भी ले सकती है या उसे किसी अन्य दिशा में ले जा सकती है या कुछ समय के लिये सभी तन्त्रिकीय क्रिया को रोक सकती है तथा इन्द्रियों को विश्रान्त कर देती है तथा स्वयं अवकाश लेकर विश्राम करती है। उसके पास एक इच्छा है, एक स्टीयरिंग व्हील है तथा एक ब्रेक है और एक व्यक्तित्व, एक लोकाचार तथा एक नैतिक चरित्र है, जो कि तन्त्रिकीय संयोजन के पास नहीं होता। वह पूर्वोल्लिखित सत्ता, जिसके पास एक इच्छा है, वह 'आत्मा', 'आत्म-सचेतन मन' या 'स्व' कहलाती है।

कौन अपने स्वयं के विचारों का मूल्यांकन करता है?

इस आत्मा की सक्रिय भूमिका को मान्य किए बिना, हमारे विचार तथा हमारी क्रियाओं की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकती है, जिनका हमारे मस्तिष्क में पहुँचने वाली आधार सामग्री से कोई सीधा सम्बन्ध होना प्रतीत नहीं होता। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति कोई नई खोज करता है या नई प्राक्कल्पना निर्मित करता है तो इसके पूर्व उसके स्वयं के विचारों तथा प्रत्ययों के विकास की जो प्रक्रिया चलती है उसका उदाहरण लें। वह कौन है जो कि अपने स्वयं के विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण करता है, उनमें से कुछ को अस्वीकार करता है, उसके पश्चात् पुनः सोचता है, एक नया संप्रत्यय निर्मित करता है, बाधा पार कर जाता है और स्वयं के लिये एक विशिष्ट परिणाम प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करता है? वह कौन है जो कि अपने भाषण की खूबियों और

खामियों का निर्धारण करता है तथा कहता है "मेरे पास अच्छा मस्तिष्क है, किन्तु मैं प्रतिभाशाली नहीं हूँ?" स्पष्ट है कि वह मस्तिष्क के तन्त्र से भिन्न एक **'आत्म-अभिज्ञ सत्ता'** (self-aware entity) है जो कि मस्तिष्क तन्त्र का उपयोग करती है। मस्तिष्क एक आत्म-अभिज्ञ सत्ता (self-aware entity) नहीं है। वस्तुत: पदार्थ से निर्मित कोई भी वस्तु आत्म-अभिज्ञ नहीं होती। पदार्थ को उत्कृष्ट या निकृष्ट कार्य निष्पादन से या सफलता अथवा असफलता से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है।

इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि "मेरा मन दुविधा में है" तो वस्तुत: वह यह कहता है कि संवेदी आधार-सामग्री (Sensory data) तथा संभवत: भण्डारित स्मृति भी उसे एक निष्कर्ष की ओर ले जाती है, किन्तु आत्म-सचेतन मन जिसके पास एक इच्छा या एक पसन्द है, एकीकृत संवेदी सूचना द्वारा प्रस्तुत किए गये विचार को स्वीकार नहीं करता। इससे स्पष्टत: यह साबित होता है कि तन्त्रिकीय साधित्र के अलावा एक अन्तर्विवेकशील आत्मा या मन है जो कि संवेदी सूचना की जाँच करता है और उससे सहमत हो सकता या सहमत नहीं हो सकता। यही वह है जो कि संवेदी आधार-सामग्री द्वारा जो अपेक्षित हो उसके परे कार्य करता है, उदाहरणार्थ, कोई ऐसा नया सत्य खोजने या कोई नियम ढूँढ़ निकालने की दिशा में कार्य करता है, जो कि हमें दिखाई देने वाली कतिपय प्रकार की घटनाओं के पीछे होता है। यह बात हमें इस बात पर विश्वास करने की आवश्यकता की ओर ले जाती है कि मस्तिष्क में चलने वाली सभी प्रक्रियाओं में केवल इन्द्रिय तन्त्र तथा तन्त्रिका-तन्त्र ही अन्तर्ग्रस्त नहीं होता, बल्कि इन सभी के अतिरिक्ति मस्तिष्क में एक ऐसी अन्तर्विवेकशील सत्ता स्थित है जो कि अनुसन्धान-कार्य आदि को संभव बनाती है। मस्तिष्क के स्तर तक प्रक्रियायें एक प्रकार से पूर्णत: या अंशत: यान्त्रिक होती है या स्वचालित होती है या आनुवंशिक अनुदेशों पर आधारित होती है, किन्तु उससे ऊपर जब हम संवेदी सन्देशों के कूटवाचन में गहन चिन्तन में खोज करने में, आविष्कार करने, समस्या का हल करने, पुनर्परीक्षण करने; आलोचनात्मक विवेचन करने, सिद्धान्त निर्मित करने आदि में संलग्न होते हैं वहाँ प्रक्रियाओं में 'आत्मा' (soul) या 'आत्म-

अभिज्ञ मन' (self-aware mindy) अन्तर्ग्रस्त होता है, जो कि मस्तिष्क और इन्द्रियों की सीमाओं के परे है और जिसके पास ये शक्तियाँ हैं।

मन या आत्मा द्वारा मस्तिष्क में परिवर्तन उत्पन्न किए जाते हैं

इसलिये आइये, हम इस निष्कर्ष को इस प्रकार कहें: नि:सन्देह आनुवंशिकी तथा एकीकृति तन्त्रिकीय प्रतिरूप अपनी स्वयं की भूमिका निभाते हैं, किन्तु यह पूरी कहानी नहीं है और वहाँ आसीन सचेतन सत्ता या व्यक्ति का महत्व स्पष्ट है। तन्त्रिकीय मशीनरी वहाँ इस अन्तर्विवेकशील स्वत्व के माध्यम के रूप में है। वस्तुत:, मस्तिष्क की तन्त्रिकीय मशीनरी इस 'अधि-भौतिक आत्म-सचेतन सत्ता' द्वारा चलाई जाती है। आप कह सकते हैं कि वहाँ एक पुनर्निवेश (Feed back) होता है। मन, 'स्व' या आत्मा द्वारा न केवल जटिल तन्त्रिकीय प्रकियाओं के ज़रिए एक स्पेशियों टेम्पोरल प्रतिरूप में संवेदी सन्देश उसके द्वारा पढ़ा जाने के लिये प्राप्त किया जाता है, बल्कि वह सम्पर्क क्षेत्रों में मस्तिष्क को कुछ देता भी है और इस प्रकार वह मस्तिष्क के कार्य में परिवर्तन उत्पन्न करता है; हमें यह कहना चाहिए कि वह मस्तिष्क के विकास में एक कारक है। मस्तिष्क या मन या आत्मा के द्विभाजन को स्वीकार किए बिना यह स्पष्ट करना असंभव है कि वह कौन है जो कि सभी सिद्वान्त निर्मित करता है, खोजें करता है, आविष्कार करता है।

तन्त्रिकीय एकता (neurological unity) के अतिरिक्त आनुभविक एकता (experiential unity) तथा संक्रियात्मक एकता (operational unity) 'आत्मा' के कारण होती है

आइये, अब हम संवेदी उद्दीपन, विचार, प्रत्यक्षण तथा इच्छा के प्रश्न पर एक अन्य परिप्रेक्ष्य (perspective) में विचार करें। प्रत्यक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में एक कदम नहीं बल्कि अनेक कदम अन्तर्विष्ट होते हैं। पहले, उद्दीपन होते हैं और फिर संवेदी सन्देश होते हैं। लाखों न्यूरॉनों के इस संवेदी आगत को तन्त्रिकीय मशीनरी द्वारा मस्तिष्क में एकीकृत किया जाता है। अब यह एकीकरण का एक

स्तर है। इसके परिणामस्वरूप, विभिन्न इन्द्रियों से प्राप्त संदेशों का संश्लेषण या एकीकरण होता है। यह एकता तन्त्रिकीय मशीनरी के कारण उत्पन्न होती है जो कि हमें समुचित एकीकृत अनुक्रिया करने योग्य बनाती है। किन्तु हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सम्पूर्ण जीव (Whole organism) की जैविकीय एकता तथा मस्तिष्क की तन्त्रिकीय एकता के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की एकता होती है जिसे कि आप 'प्रत्यक्षणात्मक एकता' (Perceptual unity) या 'आनुभाविक एकता' (Experiential unity) कह सकते हैं। यह एकता दो अन्य एकताओं से भिन्न है। यह अन्तिम एकता इसलिये है क्योंकि मस्तिष्क में एक अन्य एकल अन्तर्विवेकशील सत्ता है जो की एकीकृत संवेदी सन्देशों का अनुभव करती है, जिसके परिणामस्वरूप हम व्यक्ति की व्यवहारात्मक एकता या संक्रियात्मक एकता देखते हैं। आनुभाविक एकता 'आत्मा' से सम्बन्धित है, जो कि विषयनिष्ठ रूप में अतीत को वर्तमान से जोड़ती है तथा भविष्य के बारे में सोचती है। यह आनुभाविक एकता आत्मा की है, जिसके पास एक इच्छा और पसन्द होती है और वह घटनाओं का निर्वचन करती है तथा घटनाओं के प्रति अभिवृत्ति अपनाती है। मस्तिष्क में आने वाले विशाल संवेदी उद्दीपन में से आत्म-सचेतन मन किसी संवेदन को चुन सकता है तथा उसका अनुभव कर सकता है तथा अन्य संवेदनों की उपेक्षा कर सकता है या उन्हें अस्वीकृत कर सकता है।

कौन स्वयं के लिये सर्वनाम "मैं" का उपयोग करता है?

यही आत्मा — अन्तर्विवेकशील व्यक्ति जब कभी वह स्वयं का उल्लेख करता है तब हर बार स्वयं के लिये सर्वनाम "मैं" का उपयोग करता हैं। यह "मैं" सभी संप्रेक्षणों, संवेदनों, प्रत्यक्षणों तथा विचारों के केन्द्र में होता है। संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) द्वारा संवेदी मार्गों (Sensory pathways) से ले जाए जाने वाले सन्देश पहले मेरे पास (इस "मैं" के पास) आते हैं। हम हमेशा यह कहते हैं — "मैं यह जानता हूँ', "मैंने यह देखा है", "मैं" इसका अनुभव करता हूँ"। इसका निहितार्थ यह है कि "मैं"वह आत्म-अभिज्ञ व्यक्ति

या मन है, जिससे हमारे जीवन के सभी विचार तथा घटनाओं का सम्बन्ध होता है। निःसन्देह, मस्तिष्क के कतिपय क्षेत्र ऐसे हैं जिनके कुछ विनिर्दिष्ट कार्य हैं, उदाहरणार्थ लिंबिक (limbic) क्षेत्र संवेगों के साथ तथा स्मृति के साथ भी सम्बद्ध है, वेरनेक्स क्षेत्र तथा ब्रोका क्षेत्र (Wernicke's and Broca's areas) भाषा की समझ या अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हैं, किन्तु "मैं" ही इन सभी क्षेत्रों का उपयोग करता है। हमारे वर्तमान अवलोकन या अनुभव हमारे मस्तिष्क में हमारे स्मृति अभिलेखों के रूप में भण्डारित हो जाते हैं, किन्तु "मैं" के पास ही आनुभविक स्मृतियाँ होती हैं तथा वही तन्त्रिकीय रूप से भण्डारित या संचित स्मृति का उसी तरह उपयोग करता है जिस तरह कोई व्यक्ति, टेप रिकार्डों, वीडियो टेपों या फाइलों का उपयोग करता है। यही "मैं" उसका निर्वचन विभिन्न परिस्थितियों में करता है इसलिये यह "मैं" मेरे स्वयं के अनुभवों तथा निर्वचनों के केन्द्र में होता है। इस "मैं" को सम्पूर्ण क्रिया संवेदी अनुभव में तथा उस सूचना के सम्पूर्ण अन्तर्गामी भार में, जो कि इन्द्रिय-अंगों द्वारा उंडेली (pouring) जाती है तथा जिसका निर्वचन विगत अभिलेखबद्ध स्मृति के प्रकाश में किया जाना होता है, प्राथमिक होना होता है। यदि कतिपय प्रेक्षणों का मेरा पिछला निर्वचन गलत हो तो मैं नए, प्रेक्षण तथा अनुभवों के प्रकाश में "मैं" अपनी स्मृति को सचेतन रूप में उपान्तरित भी करता हूँ या ठीक भी करता हूँ। निःसन्देह, इन्द्रियाँ महत्वपूर्ण हैं, फिर भी यह "मैं" अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह प्रयोग करता है तथा ग़लती करता है और संवेदी आधार-सामग्री (Sensory data) को विगत स्मृतियों के साथ सुमेलित करता है। इसलिये सीखने के लिये इन्द्रियाँ प्राथमिक नहीं हैं बल्कि यह "मैं" अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि कोई वस्तु देखने के पश्चात् वह प्राक्कल्पना करता है और उसके पश्चात् अन्तर्गामी सूचना के साथ उसे सुमेलित (matching) करने की कोशिश करता है और यदि वह उपयुक्त हो, वह उसका चयन करता है, उसे सीखता है, या अन्यथा उपान्तरित करता है या अस्वीकृत कर देता है। इस प्रकार प्राक्कल्पना करने तथा उसे (नई सूचना के साथ) सुमेलित करने की यह प्रक्रिया चलती रहती है और उसी तरह मनुष्य "मैं" सीखता है। यदि यह "मैं" शरीर को छोड़ देता है तो शरीर में

संवेदी सूचना (Sensory information) का अनुभव करने या निर्वचन करने वाला कोई भी नहीं रह जाता और यदि शरीर में तन्त्र मस्तिष्क को उचित क्रियाशील रूप में रखने में असफल हो जाते हैं तो मन या आत्मा मस्तिष्क में स्थित अपने आसन को यह सोचकर छोड़ देती है कि तन्त्रिकीय तन्त्र अब किसी भी प्रयोजन के उपयुक्त नहीं है, या वह अतिमूर्च्छा (Coma) की अवस्था में कुछ अवधि के लिये मस्तिष्क में रह सकती है। यह वैसा ही है जैसा कि जब कोई चालक यह समझता है कि कोई कार बेकार हो गई है तो वह उसे छोड़ देता है या यदि वह यह सोचे कि कार को कार्य करने की स्थिति में फिर से लाया जा सकता है। यह "मैं", जब वह मस्तिष्क में उपस्थित होता है, इस समस्त संवेदी सूचना, स्मृति, अधिगम, पुनर्चिन्तन आदि को सुसंगत तथा सार्थक बनाता है। वह सम्पूर्ण कहानी में केन्द्रीय अभिनेता है तथा जीवन के सम्पूर्ण नाटक का नायक है।

वह कौन है जो कि उपभोग करता है तथा गुण विवेचन करता है?

एक अन्य दृष्टिकोण भी है, जिससे हमें संवेदी सूचना, मस्तिष्क के कार्य और इस केन्द्रीय व्यक्ति को देखना है। आइये, इसे एक उदाहरण के ज़रिए स्पष्ट करें। कोई व्यक्ति उत्तम संगीत तथा अद्भुत धुनों पर लयबद्ध नृत्य कर रहा है। अब हमारे दृश्य तथा श्रव्य तन्त्र क्रियाशील होते हैं। हमारी दृष्टि तन्त्रिका (Optic nerves) में स्थित लाखों दृष्टिकोशिकायें (Visual cells) तथा तन्त्रिका तन्तु (Nerve fibres) दृष्टि संवेदनों को दृष्टि मार्गों से मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्रों में ले जाने के लिये उद्दीप्त होते हैं। इन्हें तन्त्रिकीय संयोजिकाओं के आधार पर एक कुट्टिम (Mosaic) के रूप में एक साथ लाया जाता है। ऐसी ही प्रक्रियायें दाहिनी शंख पालि (Temporal lobe) में इन्द्रियों तथा श्रवण क्षेत्रों में स्थित मार्गों के ज़रिए चलती हैं। प्रदर्शन का सहस्वरता तथा स्वरानुक्रम समय — अनुक्रमों, लय तथा सभी का विश्लेषण तथा संश्लेषण होता है और अविश्वसनीय रूप से जटिल तन्त्रिकीय संक्रियायें चलती रहती हैं, और अतीत में सीखी गई हमारी योग्यतायें, जो कि मस्तिष्क के कतिपय क्षेत्रों में अभिलेखबद्ध होती हैं, इसके गुण-विवेचन में

क्रियाशील हो जाती हैं। मस्तिष्क के सभी सुसंगत भाग, या सम्पूर्ण मस्तिष्क जो कि एक विशिष्ट रीति से आनुवंशिक रूप से निर्मित होता है, उसका मूल्यांकन करने के लिये क्रियाशील कर दिया जाता है।

किन्तु प्रश्न यह है कि "वह कौन है जो कि इन तन्त्रिकीय आवेगों या घटनाओं का कूटवाचन करता है, उनका अर्थ निकालता है तथा उन्हें मिश्रित करता है जिसके कारण हम एक वास्तविक विश्वानुभव की अनुभूति करते हैं तथा इसके अतिरिक्त वह कौन है जो कि पुलकित का अनुभव करता है? कौन है जो उससे आनन्द प्राप्त करता है?"

एक सुन्दर गुलाब का अन्य उदाहरण दिया जा सकता है। हम न केवल हमारे दृष्टि-पटल पर उस गुलाब के फूल की छवि और हमारे मस्तिष्क के सुसंगत भागों में उसकी मधुर सुगन्ध का संवेदन पाते हैं, बल्कि उससे अभिकल्प, रंग, गंध, स्पर्श आदि के संवेदनों का मिश्रण भी पाते हैं। हम उसकी प्रशंसा करते हैं, उसका आनन्द उठाते हैं तथा उससे प्रेम करते हैं।

इसलिये, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे प्रत्यक्षण मात्र संवेदी आधार सामग्री का निर्वचन या अवबोध नहीं है, बल्कि इन सब का एक अन्य पहलू भी है। हमारे सौन्दर्य परक गुण विवेचन तथा उपभोग के लिये कतिपय संवेदी आधार सामग्री होती है और यह उन लाखों न्यूरॉनों के लिये नहीं होता जिनसे मस्तिष्क का गठन होता है, किन्तु किसी अन्य सत्ता के लिये होता है जो कि मस्तिष्क में आसीन है। पुनश्च, संवेदी आधार-सामग्री के प्रति हमारी प्रतिक्रिया हमेशा कौशलों को सीखने के रूप में या स्मृति-परिपथों में हमारे प्रत्यक्षणों को अभिलेखबद्ध करने के रूप में नही होती, बल्कि गुण-विवेचन और आनन्दोपभोग 'आत्मा' के आनन्दोपभोग (enjoyment) के रूप में भी होती है। इसलिये ये सभी तर्क तथा अनेक अन्य कारण हमें यह निष्कर्ष निकालने के लिये प्रेरित करते हैं कि मस्तिष्क में एक अधि-भौतिक सत्ता आसीन है, जो कि 'आत्मा' कहलाती है।

मस्तिष्क, स्मृति तथा आत्मा

"आत्मा ही मस्तिष्क के तन्त्र के ज़रिए स्मरण करती है। यदि किसी व्यक्ति की स्मृति अच्छी तथा सुखद घटनाओं से सम्बद्ध हो तो वह अच्छे और सुखी स्वभाव का बन जाता है और दूसरी ओर यदि कोई व्यक्ति उन घटनाओं का बारंबार स्मरण करता है जो कि बुराई या दुःख से सम्बद्ध हों तो वह व्यक्ति चिढ़ जाने वाला, शीघ्र क्रोधित हो जाने वाला तथा उदास हो जाने वाला स्वभाव का बन जाता है। इसलिये मनुष्य के पास ऐसी घटनाओं की केवल अल्पकालिक स्मृति होनी चाहिए और उसे उन स्मृतियों का अपने मस्तिष्क में धारण किए नहीं रहना चाहिए।"

— ***शिव भगवानुवाच***

स्मृति समस्त अधिगम की एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा है। यदि कोई व्यक्ति उसके द्वारा प्राप्त किसी सूचना को अपनी स्मृति में नहीं रख सकता तो वह सीख नहीं सकता। इसके अतिरिक्त, स्मृति मन की एक महत्वपूर्ण शक्ति है, जो कि उसे निरन्तरता तथा व्यक्तित्व की एकता प्रदान करती है। यदि मन के पास 'स्मृति' नहीं होती तो उसने प्रतिक्षण एक भिन्न व्यक्ति की तरह व्यवहार किया होता, क्योंकि वह अपने आसन्न अतीत से कट गया होता। किन्तु हम सभी लोग हमारे अनुभव तथा अवलोकन से यह जानते हैं कि मन हमेशा एक एकीकृत व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है, जो कि अपने अतीत से अभिज्ञ होता है तथा जिसके पास भविष्य के लिये आशायें तथा प्रत्याशायें होती हैं। इसलिये एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या मन, जो कि सीखता है और, जिसके पास प्रतिधारण या अवधान और स्मृति की शक्तियाँ हैं और 'स्व' की निरन्तरता तथा एकता है, मस्तिष्क से अभिन्न है या कि वह शरीर तथा मस्तिष्क से भिन्न एक अधि-भौतिक सत्ता है?

तन्त्रिका जीवविज्ञानी तथा मनोवैज्ञानिक 'स्मृति' को सामान्यतः तीन शीर्षों में विभाजित करते हैं :

(1) अल्पकालिक स्मृति (short-term memory) (2) दीर्घकालिक स्मृति (long-term memory) तथा (3) अव-चेतन स्मृति (sub-conscious memory) या अचेतन स्मृति (un-conscious memory) या विवक्षित स्मृति (implicit memory)। हम इन तीनों प्रकार की स्मृतियों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे और यह देखें कि क्या मात्र मनोवैज्ञानिक आधारों पर स्मृति की व्याख्या पर्याप्त है या कि सीखने, प्रतिधारण करने, स्मृति-भण्डारण या स्मृति-उद्धरण की प्रक्रिया इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि इन प्रक्रियाओं में एक अधि-भौतिक मन या आत्मा अन्तर्ग्रस्त है।

अल्पकालिक स्मृति

जो स्मृति कुछ सैकंडों तक या कुछ मिनटों तक रहती है उसे 'अल्पकालिक स्मृति' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, टेलिफोन डायरेक्टरी से कोई नम्बर ढूँढ़ निकालने के पश्चात् हम सामान्यत: उस नंबर को अपनी स्मृति में केवल कुछ देर तक धारण किए रहते हैं, क्योंकि उस नंबर का उपयोग हम बारंबार नहीं करेंगे।

तन्त्रिका विज्ञानी यह कहते हैं कि इस प्रकार की स्मृति टेलिफोन नंबर के 'पूर्वाभ्यास' के दौरान चल रही तन्त्रिकीय घटनाओं द्वारा उत्पन्न की जाती है। उदाहरणार्थ, वर्तमान मामले में, तन्त्रिकीय क्रिया उस टेलिफोन नंबर को डायरेक्टरी में देखने तथा डायल करने के समय के बीच हमारे ध्यान में धारण किए रहने के लिये एक परिपथ की तरह जारी रहती है। इसी प्रकार, मस्तिष्क में की तन्त्रिकीय क्रिया के परिपथ हमारे लिये थोड़े समय के लिये, उन कुछ व्यक्तियों के नामों तथा चेहरों को धारण किए रहने के लिये जारी रहते हैं।

यह स्पष्ट है कि इस व्याख्या के अनुसार स्मृति मस्तिष्क पर आधारित है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि सीखने या स्मृति भण्डारण की प्रक्रियाओं के दौरान तन्त्रिकीय क्रिया घटित होती है, किन्तु इस घटना के अन्य पहलू भी हैं, जिन्हें सामान्यत: नजर अन्दाज कर दिया जाता है।

उदाहरणार्थ, गहन चिन्तन इस तथ्य को हमारे ध्यान के केन्द्र बिन्दु में ला

देगा कि मन ही उस सूचना टुकड़े को कुछ देर तक धारण करना चाहता है तथा मस्तिष्क के तन्त्रिकीय तन्त्र को उतनी कालावधि के लिये अति सक्रिय कर देता है और फिर उस नंबर को वहाँ छोड़कर वह किसी अन्य वस्तु या किसी अन्य कार्य पर ध्यान देता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह मन ही है जिसने कि उस टेलिफोन नंबर को तन्त्रिकीय मशीनरी की सहायता से स्मृति में धारण किया था, जैसे कि कोई व्यक्ति किसी शब्दकोश को अपने हाथ की सहायता से अपनी आँखों के सामने पकड़े रखता है, और उसने उस स्मृति को तब तक धारण किए रखा जब तक कि उसे उस नंबर की आवश्यकता थी। इसलिये, जिस प्रकार मनुष्य के हाथ किसी भी क्रिया के उपकरण हैं उसी प्रकार, मस्तिष्क-कोशिकायें या न्यूरॉन भी वे उपकरण हैं जिनका उपयोग 'मन' द्वारा किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, हम यह देखते हैं कि यदि जब वह टेलिफोन नंबर हमें याद नहीं आता तो उस क्षण हमें ऐसा अनुभव होता है मानो कि हमारे मस्तिष्क (हमारी स्मृति) ने हमारा साथ छोड़ दिया है या कि हमारे मस्तिष्क की वह विशिष्ट योग्यता (अल्पकालिक स्मृति) कमज़ोर हो गई है। ऐसे अवसरों पर हमें वैसा ही अनुभव होता है जैसा कि जब हम किसी व्यक्ति से बोल रहे होते हैं और हमें टेलिफोन नंबर लिखने के लिये कोई बॉल पेन या पेन्सिल नहीं मिल जाती और हम किसी कागज़ पर वह टेलिफोन नंबर उस क्षण उपलब्ध किसी भी वस्तु की कुंद धार से लिख लेते हैं और बाद में उसे पढ़ने में हमें कठिनाई होती है, क्योंकि वह नंबर स्पष्टत: नहीं लिखा गया था। इस साम्यानुमान से यह तथ्य प्रकट होता है कि यद्यपि मस्तिष्क में ही, एक काग़ज़ की तरह, स्मृति-चिन्हों के रूप में सूचना के टुकड़े होते हैं, फिर भी जिस प्रकार जैसे-तैसे लिखा गया वह नंबर उस मनुष्य द्वारा पढ़ा जाता है जिसे उसकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार वह 'मन' ही है जो कि सूचना के उस खण्ड को आवश्यक होने पर पढ़ता है। वह मन ही है जो कि मस्तिष्क की तन्त्रिकीय मशीनरी को क्रिया करने के लिये कहता है, क्योंकि वह मन ही है जो कि सूचना के उस खण्ड में रुचि रखता

है, भले ही थोड़ी देर के लिये। इसलिये, निश्चय ही मन जो कि किसी बात को भले ही कुछ सैकण्डों या मिनटों के लिये स्मृति में धारण करने की इच्छा करता है और उसे उसके पश्चात् भूल जाने का और उससे मुक्त हो जाने का इरादा करता है, वह एक पृथक् सत्ता है। हम वस्तुत: अनुभव द्वारा यह जानते हैं कि जब वह नंबर डायल करने के पश्चात् मन रिसीवर को रख देता है और किसी अन्य कार्य की ओर ध्यान देने का निर्णय करता है तो मस्तिष्क का सुसंगत तन्त्रिकीय तन्त्र वह नंबर हमारे ध्यान में धारण किए रखने के प्रभार से मुक्त हो जाता है। इसलिये, हमारे ऐसे ही कार्य जो कि अल्पकालिक स्मृति की अपेक्षा करते हैं, हमें इस तथ्य का सूक्ष्म अनुभव देते हैं कि इच्छा करने, इरादा करने, पसन्द करने तथा निर्णय करने का कार्य 'मन' का है, जबकि मस्तिष्क का तन्त्रिकीय तन्त्र एक उपकरण की तरह कार्य करता है। यह मन आत्म-सचेतन है, वह यह अनुभव करता है, (यद्यपि सूक्ष्म रीति से) कि वह मस्तिष्क का उपयोग कर रहा है, जिसके पास या तो प्रतिधारण की अच्छी योग्यता है या किसी चोट के कारण, बीमारी के कारण, वृद्धावस्था के कारण या कतिपय भागों को सर्जरी द्वारा निकाल दिया जाने के कारण उसकी स्मरण-शक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई है। यह आत्म-सचेतन मन जो कि या तो मस्तिष्क की शक्तियों की प्रशंसा करता है या मस्तिष्क की शक्ति के लोप पर खेद प्रकट करता है — 'आत्मा' कहलाता है।

दीर्घकालिक स्मृति

जो स्मृति कई दिनों तक तथा कई वर्षों तक बनी रहती है वह 'दीर्घकालिक स्मृति' कहलाती है। स्मृति के प्रकारों के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। उनमें से मुख्य सिद्धान्त है : "विद्युत शरीर-क्रियात्मक सिद्धान्त" (The Electrophysiological Theory) या "साइनेप्टिक सिद्धान्त" (The Synaptic Theory) या "अधिगम की संवृद्धि का सिद्धान्त" (The Growth Theory of Learning)। दीर्घकालिक स्मृति एक अन्य सिद्धान्त है, जो कि यह कहता है कि स्मृतियाँ मस्तिष्क में, विशिष्टत: आर.एन.ए. (Rebonucleic Acid) में विशिष्ट

बृहदाणुओं (macromolecules) में [1] कूटबद्ध होती हैं। किन्तु विभिन्न कारणों से यह सिद्धान्त असफल हो गया है।[2] एक अन्य सिद्धान्त भी है, जो कि 'रासायनिक सिद्धान्त' कहलाता है। यह सिद्धान्त कहता है कि सूचना के सीखे गये अंश कतिपय ऐसे रसायनों का इन्जेक्शन देकर, जो कि पदार्थों के परिषण से सम्बन्धित हैं, एक प्राणी से दूसरे प्राणी में अन्तरित किए जा सकते हैं।[3] किन्तु अब सामान्यत: स्वीकृत सिद्धान्त है — 'साइनेप्टिक सिद्धान्त' (The Synaptic Theory) या 'अधिगम की संवृद्धि का सिद्धान्त (The Growth Theory of Learning) है।' अनेक मस्तिष्क विज्ञानियों [4] का यह कहना है की दीर्घकालिक स्मृतियाँ किसी तरह से मस्तिष्क की तन्त्रिकीय संयोजिकाओं में कूटबद्ध हो जाती हैं। जब सीखने या स्मृति भण्डारण की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो मस्तिष्क में की तन्त्रिका-कोशिकाओं की साइनेप्टिक संयोजिकाओं की सूक्ष्म वृद्धि भी होती है। होता यह है कि संवेदी उद्दीपन के परिणाम स्वरूप, सूचना, विद्युत तरंगों के रूप में संवेदी मार्गों के ज़रिए मस्तिष्क को जाती है जहाँ वह न्यूरॉनों के साइनेप्टिक सक्रियकरण में परिणत होती है। इससे सर्वप्रथम आर.एन.ए. का संश्लेषण

---

1. *Hyden H : 'Biochemical Changes Accompanying Learning', in Quarton, Melenchuk and Schmitt (ed.), 1967, p.765-771. According to this, each memory is associated with unique macromolecules.*
2. *Eccles J.C. : 'Facing Reality' : Philosophical Adventures of a Brain Scientist', Springer-Verlog, New York, 1970, p.210. Also Szentagothai J. : "Memory Functions and the Structural Organisation of the Brain', in Aam (ed.), 1971, p.21-25*
3. *Ungar George : "Molecular Coding of Information in the Nervous System". Stadler Symposium, University of Missouri, p.6. Also Hyden Holger : Changes in RNA content and base composition in cortical neurons of rats in learning experiment involving transfer of handedness". Proceedings of The National Academy of Science, 52, p.1030-35.*
4. *Lashley K.S. : "In search of the Engram", symposia of the Society for Expeimental Biology, 4, 1950, p.454-482. Also Adrian E.D. The physical Background of Perception, Clarendon Press, Oxford, p.95. Also Sherrington C.S. : Man on His Nature, Cambridge University Press, London, 1940, p.413. Also Szentagothai, J. : Memory Functions and the Structural Organisation of the Brain, 1971.*

होता है। एक विशेष प्रकार के उपापचय द्वारा आर.एन.ए. मस्तिष्क में प्रोटीनों तथा अन्य बृहदाणुओं का निर्माण करता है जो कि तन्त्रिका-कोशिकओं की साइनेप्टिक संयोजिकाओं की सूक्ष्म वृद्धि के लिये अपेक्षित होते हैं। इस प्रकार विद्यमान साइनेप्टिक संयोजिकायें अति सक्रिय और अधिक दक्ष हो जाती हैं, या नये साइनेप्सों की सूक्ष्म वृद्धि होती है। इन साइनेप्टिक संयोजिकाओं में स्मृति कूटबद्ध हो जाती है। इस प्रकार, संरचनात्मक तथा क्रियात्मक परिवर्तन होते हैं और यह अनुमान लगाया गया है कि साइनेप्टिक सूक्ष्म वृद्धि तथा स्मृति के कूटबद्धकरण की प्रक्रिया में 30 मिनट से लेकर 3 घंटों तक का समय लगता है।[5] साइनेप्टिक रचना में कूटबद्ध यह सूचना स्मृति के 'डेटा बैंक' (Data Bank) के रूप में कार्य करती है।

इस बात का उल्लेखनीय साक्ष्य है कि हिप्पोकैम्पस (Hippocampus) पूर्व ललाट पालि (Pre-frontal lobe) से हिप्पोकैम्पस तक तथा पुन: नव प्रान्तस्था (Neo-cortex) तक विद्युत परिपथों की संक्रिय के आधार पर स्मृति में समेकन के कार्य में भाग लेता है। यह पाया गया है कि हिप्पोकैम्पस स्मृति-चिह्नों का आसन नहीं है, बल्कि हिप्पोकैम्पस स्मृति चिह्न (Memory engram) या स्मृत्यंकन (Memory trace) अंकित करने का साधन मात्र है। जिन रोगियों के हिप्पोकैम्पी द्विपक्षीय रूप से हटा दिए गये वे व्यक्ति स्मृतियों की दुःखद हानि से पीड़ित हुये। स्मृति की तीव्र हानि के बावजूद [6] उनकी प्रज्ञा या उनके व्यक्तित्व में कोई भी स्पष्ट क्षीणता नहीं आई। वे या तो आसन्न (immediate) वर्तमान में या सर्जरी द्वारा हिप्पोकैम्पस के हटा दिए जाने के पूर्व के समय से स्मृत अनुभवों से जिये।

---

5. *Barnodes S.H. : "Multiple Steps in the Biology of Memory" in Schmitt (eds.), 1970, Vol-2, p.272-278*
6. *Milner B : 'Disorders of Learning and Memory after temporal lobe lesions in man', Clinical Neurosurgery. 19 (1972) p.421-446. Also his book : 'Amnesia Following Operation on the Temporal Lobes', in Whitty and Tangwill (eds) (1966), p,109-133. Also Kornhuber H.H., "Neural Control of Input into Long-term Memory : Limbic system and Amnestic Syndrome in man", in Zippel (eds), 1973, p.1-22.*

पेनफील्ड [7] के प्रयोग भी यह जानकारी देते हैं कि मस्तिष्क में "स्मृति बैंक" कहाँ अवस्थित है। पेनफील्ड ने अपस्मार (Epilepsy) के रोगियों के विसंज्ञित किए गये मस्तिष्कों की सतह पर सौम्य विद्युत उद्दीपन दिये। चुने गये क्षेत्र अधिकांशत: विशेषत: दाहिने गोलार्ध में शंख पालियाँ (Temporal lobe) थीं। उनके मस्तिष्कों के खुले हुए स्थलों के निरन्तर सौम्य उद्दीपन के परिणामस्वरूप रोगियों ने ऐसे अनुभव प्रतिवेदित किये जिन्हें कि वे बहुधा बहुत पहले विस्मृत कर दी गई स्मृतियों के प्रत्यास्मरण मानते थे। वे अनुभव — दृष्टि या श्रुति या दोनों से जुड़े हुए थे।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों ने भी यह सूचित किया कि उपान्तरणीय संग्रथन (Synapses) जो कि स्मृति के लिये उत्तरदायी कहे जा सकते हैं, उत्तेजक होते हैं और प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था, हिप्पोकैम्पस, हिप्पोकैम्पस की कण-कोशिकाओं तथा अनुमस्तिष्क की पर्काइन कोशिकाओं (Purkyne cells) में बहुत मात्रा में होते हैं। ये सीखने से सम्बन्ध रखते हैं। इस बात का भी साक्ष्य है कि अनुपयोग के दौरान ये अन्तर्ग्रथन (Synapses) प्रतीपादित होते हैं।[8]

क्या आत्मा स्मृति-प्रकिया में व्यस्त रहती है?

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि तन्त्रिका-जैविकी तथा तन्त्रिका-सर्जरी से प्राप्त साक्ष्य के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि अन्तर्ग्रथन संयोजिकायें किस प्रकार से डेटा बैंक की तरह कार्य करती हैं और स्मृति-भण्डारण के लिये मस्तिष्क के किन भागों का उपयोग किया जाता है, वह कौन-सा साक्ष्य (evidence) है जो कि हमें आत्मा या आत्म-सचेतन मन कहलाने वाली एक अधि-भौतिक सत्ता में विश्वास करने के लिये प्रेरित करता है?

स्मृति-उद्धरण प्रक्रिया (The process of memory-retrieval) पर विचार करने

---

7. *Penfield W. and Perot P. "The Brains" record of auditory and visual experience". Brain, 86, p.596-696.*
8. *Valverde F. : "Structural changes in the area striate of mouse after uncleation", Experimental Brain Research, 5 (1968) p.274-292.*

से इसका उत्तर पाया जा सकता है। यदि हम इस बात पर कुछ विचार करें कि हम माँग की जाने पर, अपने डेटा बैंक में भण्डारित किसी मनुष्य का नाम या कोई तथ्य कैसे मंगाते हैं, तो हम सत्य को खोज सकेंगे।

स्मृति-उद्धरण (Memory retrieval)

यह देखा जाएगा कि जब कभी हम डेटा बैंक से कोई सूचना चाहते हैं, तो एक प्रकार से हम खोजने लगते हैं। हम एक समानार्थक शब्द की तलाश करते हैं — एक ऐसे समुचित शब्द की तलाश करते हैं जो कि हमारे प्रत्यय को बेहतर ढंग से अभिव्यक्त कर सकता है, या किसी ऐसे व्यक्ति के नाम या टेलिफोन नंबर की तलाश करते हैं जिससे हम अनेक वर्षों पूर्व मिले थे। 'स्व' या मन मस्तिष्क में एक प्रकार की तलाश करता है ताकि वह इनमें से कोई ऐसी चीज़ ढूँढ़ सके जो कि वह चाहता है। वह मस्तिष्क से कहता है कि मस्तिष्क उसे स्मृति दे। मस्तिष्क पर जोर डालने और इच्छित वस्तु पाने में सफल रहने या असफल रहने की इस प्रक्रिया के दौरान हम हमेशा एक दृढ़ द्वैधता (dualism) को अन्तर्ग्रस्त पाते हैं; हम यह देखते हैं कि स्व या मन उस मस्तिष्क से भिन्न है जो कि एक पुस्तकालय, एक भण्डार गृह या एक कम्प्यूटर की तरह है, जहाँ से हम कोई भण्डारित सूचना पाने की कोशिश कर रहे हैं।

यह देखा जाएगा कि जब मन, उदाहरणार्थ शब्दों, मुहावरों, प्रत्ययों, घटनाओं, चित्रों, धुनों आदि की स्मृति वापस पाने की तलाश कर रहा होता है तो वह स्मृति भण्डार गृह की सक्रियतापूर्वक छानबीन कर रहा होता है। कभी-कभी किसी इच्छित सूचना को हमारी स्मृति में वापस लाना आसान हो सकता है या कठिन हो सकता है। इस प्रयत्न में मन वाञ्छित उत्तर की खोज में पीछे की ओर जाता है और आगे की ओर जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि खोज निकाली गई सूचना की अर्थात् किसी शब्द, किसी टेलिफोन नंबर, किसी व्यक्ति के नाम, किसी आकृति आदि की यह देखने के लिये आलोचनात्मक संवीक्षा की जाती है कि वह सही या उपयुक्त है या नहीं। जब मन को डेटा बैंक से इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है तो वह उसे त्रुटिपूर्ण मान भी सकता है — नाम या मुहावरे में कोई

छोटी सी ग़लती हो सकती है, या यह हो सकता है कि समानार्थक शब्द उपयुक्त न हो। इसलिये, स्व या मन दोबारा उद्धरण का प्रयास करता है। वह पुनः उद्धृत-स्मृति को दोषपूर्ण ठहरा सकता है, और इसलिये वह एक और प्रयत्न कर सकता है या वह प्रयत्न त्याग देने का निर्णय कर सकता है।

उद्धृत-स्मृति की संवीक्षा (Scrutinising) स्पष्टतः यह दर्शाती है कि वस्तुतः स्मृति दो प्रकार की है : (1) मस्तिष्क में, अन्तग्रर्थन संयोजिकाओं या बृहदाणुओं में भण्डारित स्मृति तथा (2) अभिज्ञान-स्मृति, जिसका प्रयोग मन या आत्मा द्वारा मस्तिष्क-भण्डार से उद्धृत स्मृतियों की संवीक्षा में किया जाता है। सचेतन 'स्व' जो कि उसे भण्डारित स्मृति से परिदत्त आधार-सामग्री को परखता है तथा आधार-सामग्री की शुद्धता तथा सुसंगतता का मूल्यांकन करता है वह अपनी अभिज्ञान-स्मृति के कारण मस्तिष्क की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योंकि वह एक न्यायाधीश, निर्धारक तथा अधिनिर्णायक की तरह कार्य करता है और भण्डारित स्मृति से प्राप्त आधार-सामग्री (data) को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है और उसे उपान्तरित कर सकता है या उसका उपयोग कर सकता है या उसे भण्डार में वापस रख सकता है।

हम स्मृति के इन दोनों प्रकारों को क्रियाशील रूप में देख सकते हैं। हम इसे स्पष्टतः तब देखते हैं जब कभी-कभी हमें ऐसा अनुभव होता है कि मन वाञ्छित स्मृति का प्रत्यास्मरण करने की एक चुनौती का सामना कर रहा है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहा जाए तो जब मन किसी सूचना खोज में रहा होता है तो वह मस्तिष्क के समुचित मॉड्यूलों या साइनैप्टिक संयोजिकाओं को खोजने की कोशिश कर रहा होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मन ही सूचना पाता है, जबकि मस्तिष्क में मन इच्छित सूचना की तलाश करता है।

मस्तिष्क से आधार-सामग्री का उद्धरण करने के लिये मन युक्तियाँ अपनाता है

दोनों के बीच का अन्तर तब स्पष्ट हो जाता है जब मन भण्डारित स्मृति से अपेक्षित जानकारी खोज निकालने के लिये कुछ रणनीतियाँ या युक्तियाँ अपनाता

है। मन स्वयं से कहता है — "उस व्यक्ति का कुछ-कुछ नाम कैस्टोफीन (Castophene) जैसा था।" फिर वह स्वयं से, कुछ सेकण्डों बाद ही यह कहता है — "हाँ, हाँ, अब मुझे याद आता है उसका नाम क्रिस्टोफर (Christopher) है।" वह साहचर्य के मनोवैज्ञानिक नियम तथा अन्य प्रणालियों का उपयोग करेगा, जिनमें से अनेक का वर्णन "आपकी स्मृति में सुधार कैसे करें?" सम्बन्धी लेखों में किया गया है। ऐसे अवसरों पर जब वह युक्तियाँ तथा रणनीतियाँ अपनाता है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि मस्तिष्क तथा आत्म-सचेतन मन — दो विभिन्न सत्तायें हैं। मस्तिष्क एक डेटा बैंक की तरह है और 'मन' उस डेटा बैंक का उपयोग इच्छा के अनुसार करता है।

मन के सन्तोष या मन की निराशा की अनुभूति

एक अन्य बात जो कि मन और मस्तिष्क के बीच के अन्तर का संकेत देती है वह यह है कि स्मृति के उद्धरण का प्रयास करने और परिदत्त सूचना को देखने के पश्चात् दोनों को ही ठीक उसी प्रकार से या तो सन्तोष या सुख का अनुभव होता है या आश्चर्य होता है जिस प्रकार किसी पुस्तक या डायरी या फाइल से कोई अपेक्षित जानकारी पाकर किसी व्यक्ति को अनुभव होता है।

इसके अतिरिक्त, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि साइनैप्टिक संयोजिकाओं या मॉड्यूलों (Modules) की निरन्तर सक्रियता, मन की निरन्तर रुचि या मन के प्रबलन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। जैसे ही 'स्व' या मन कोई अन्य भिन्न जानकारी की अपेक्षा करने वाले किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो जाता है वैसे ही आधार-सामग्री की पूर्वतर तलाश समाप्त हो जाती है और नई तलाश आरम्भ हो जाती है और मस्तिष्क में की तन्त्रिकीय संयोजिकाओं के किसी अन्य प्रति रूप की छानबीन की जाने लगती है। इससे स्पष्टत: यह प्रकट होता है कि मन या स्व ही किसी सूचना में रुचि होने के कारण, साइनैप्सों का सक्रियकरण आरम्भ कर देता है और वही तलाश करता है, तलाश जारी रखता है और जब चाहता है तब तलाश को रोक देता है। इस प्रकार, द्वैधता स्पष्ट है।

स्मृतिगत आधार-सामग्री का चयन करने तथा उसे अस्वीकृत करने का कार्य 'मन' का है

हमें यह जान लेना चाहिए कि मन ही यह निर्णय करता है कि कौन-सी सूचना भण्डारित की जानी चाहिए। हमारे मस्तिष्क पर उद्दीपनों की निरन्तर बमबारी होती रहती है और हमारे संवेदी मार्ग अधिकांश समय तक सूचना की एक सतत बाढ़ ले जाते रहते हैं। वह 'स्व' ही है जो कि किसी सूचना पर ध्यान देता है, किसी अन्य सूचना की उपेक्षा कर देता है और किसी आधार-सामग्री को भण्डारित करने में रुचि लेता है और शेष आधार-सामग्री को अस्वीकृत कर देता है या भूल जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम कुछ काग़ज़ों को रख लेते हैं और शेष काग़ज़ों को फेंक देते हैं। कुछ का चयन करने और शेष का अस्वीकृत कर देने का कार्य 'मन' या 'स्व' द्वारा किया जाता है।

मन न केवल आधार-सामग्री को प्राप्त करता है बल्कि उसमें सुधार भी करता है

इसके अतिरिक्त, जब यह पाया जाता है कि जब मस्तिष्क में भण्डारित स्मृति दोषपूर्ण हो तो मन ही उसे सुधारता है। उदाहरणार्थ, जब किसी कविता की कतिपय पंक्तियाँ ग़लत रूप में सीखी गई हों या जब मस्तिष्क में भण्डारित किसी शब्द के वर्ण-विन्यास को दोषपूर्ण पाया जाये तो मन शब्दकोश देखने के पश्चात्, भण्डारित सूचना को सुधारने का निर्णय करता है।

पेनफील्ड (Penfield) के प्रयोगों से यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि मन और मस्तिष्क दो भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं।

पेनफ़ील्ड के प्रयोग यह दर्शाते हैं कि मन एक प्रेक्षक है

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पेनफील्ड ने 53 रोगियों पर प्रयोग किए।[9] उन्होंने इन रोगियों को एनैस्थेसिया देकर उनके प्रमस्तिष्कीय गोलार्धों

9. *Penfield W. and Perot P. "The brain's record of auditory and visual experience" Brain, 86 (1963), p.596-696.*

को उद्दीप्त किया। मस्तिष्क के इन खुले हुए भागों के सौम्य विद्युत् उद्दीपन के दौरान रोगियों ने ऐसे अनुभव बतायें जिन्हें कि उन्होंने दीर्घकालिक विस्मृत स्मृतियों के प्रत्यास्मरण कहा। पेनफील्ड ने इन रोगियों की आनुभविक अनुक्रियाओं को रिकार्ड किया। पेनफील्ड ने टिप्पणी की है कि इन भागों में विद्युत् उद्दीपन के दौरान स्मृतियों की विगत धारा फिर से उमड़ पड़ी हो। कुछ रोगियों को विद्युत् उद्दीपन के (electrical stimulation) कारण अकस्मात् वह पूरा गीत याद हो आया जो कि उन्होंने बहुत पहले सुना था। यह उल्लेखनीय है कि इन अन्वेषणों का समाहार करते हुए पेनफील्ड ने यह कहा कि रोगी एक प्रेक्षक है, न कि सहभागी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'स्व' या मन मस्तिष्क से या शंख-पालियों से भिन्न सत्ता है।

इस अध्याय को विश्व विख्यात न्यूरोबायोलॉजिस्ट (neurobiologist) तथा न्यूरोसर्जन (neurosurgeon) पेनफील्ड के एक उद्धरण (quote) के साथ समाप्त करना उचित होगा।

"मन का भौतिक आधार प्रत्येक व्यक्ति में मस्तिष्कीय क्रिया है; वह उसकी आत्मा की क्रिया की अनुसंगी होती है, किन्तु आत्मा मुक्त है, वह कतिपय मात्र में उपक्रम करने में सक्षम होती है।" वे आगे कहते हैं — "आत्मा वह है जिसे मनुष्य जानता है। उसमें निद्रा तथा अतिमूर्च्छा की अवधियों के दौरान निरन्तरता होनी चाहिए। इसलिये मेरी यह धारणा है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा को किसी-न-किसी तरह से जीवित रहना चाहिए। मैं इस बात पर सन्देह नहीं कर सकता कि अनेक लोग ईश्वर से सम्पर्क करते हैं तथा उस परम-आत्मा से मार्गप्रदर्शन प्राप्त करते हैं। किन्तु ये व्यक्तिगत विश्वास है जिन्हें कि प्रत्येक मनुष्य को स्वयं के लिये अपनाना होगा। यदि मनुष्य के पास केवल एक मस्तिष्क होता और एक मन न होता तो यह कठिनतम निर्णय उसका न होता।"[10]

---

10. Penfield Wilder : "Science, the arts and the spirit". Trans. The Royal Society of Canada. 7 (1969) p.73-83.

आत्मा, अव-चेतन तथा अस्पष्ट स्मृति

हम अल्पकालिक स्मृति तथा दीर्घकालिक स्मृति पर पहले ही चर्चा कर चुके हैं। आइये, अब हम अव-चेतन (Sub-conscious), अचेतन (Un-conscious) तथा (Implicit memory) अस्पष्ट स्मृति पर चर्चा करें। 'अव-चेतन' या 'अचेतन' स्मृतियाँ क्या हैं?

अतीत में असंख्य छोटी तथा बड़ी घटनायें हुई होती हैं जिन्होंने हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव डाला होता है तथा हमारे चरित्र को ढाला होता है, किन्तु जिन्हें हम बहुधा सचेतन रूप से अभिज्ञात नहीं करते। उनके प्रभाव प्रच्छन्न या सुप्त रूप में होते हैं। ये हमारे जीवन का एक भाग हैं। हमारी वर्तमान प्रवृत्तियाँ, हमारे विश्वास, हमारे भय, हमारे पूर्वाग्रह तथा वे सभी बातें, जो कि हमें चेतन या अचेतन व्यवहार का एक प्रतिरूप देती हैं, इनसे निर्मित होती हैं। हमारी मनोग्रस्तियाँ, हमारी मनोवृत्ति तथा हमारी जीवन-शैली भी इन्हीं के कारण होती है। इनमें से कुछ स्मृतियों को विशेष स्थितियों के अन्तर्गत या सम्मोहन या औषधियों की सहायता से उद्धृत किया जा सकता है। ये अस्पष्ट या प्रच्छन्न स्मृतियाँ, अंशतः, जो कुछ भी हम करते हैं, उसे अवधारित करती हैं और ये हमें सभी समय प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार की स्मृति को फ्रायड (Freud) ने और उनकी विचारधारा के मनश्चिकित्सकों ने बहुत अधिक महत्व दिया था। उसकी तुलना एक हिमनद (Glacier) से करने पर जिसका 5/7 द्रव्यमान जल के नीचे रहता है, ये अचेतन स्मृतियाँ हमारे व्यक्तित्व में एक बड़े भाग का निर्माण करती हैं और उसके व्यवहार को प्रभावित करने वाली एक शक्तिशाली कारक हैं। इनका व्यक्ति के स्व से बहुत सम्बन्ध होता है। सभी मस्तिष्क-विज्ञानी, मनश्चिकित्सक तथा मनोवैज्ञानिक इस बारे में सहमत हैं कि यही व्यक्ति के व्यक्तित्व को निरन्तरता देती हैं। यह अचेतन स्मृति ही मनुष्य के जागरण की सामान्य अवस्था में उसे क्षण-प्रति-क्षण एक एकीकृत चरित्र या व्यक्तित्व देती हैं।

स्पष्ट है कि मस्तिष्क के अतिरिक्त एक 'स्व' है जो कि इन प्रभावों को ले

जाता है या वहन करता है, क्योंकि साइनैप्टिक संयोजिकायें अचेतन या अवचेतन प्रभावों की व्याख्या नहीं कर सकतीं। नये बृहदाणुओं का प्रोटीन-संश्लेषण और साइनौसों की संवृद्धि तथा कुछ मस्तिष्कीय कोशिकाओं की मृत्यु — मस्तिष्क को एक निरन्तरता नहीं देती, जो कि वस्तुत: 'स्व' का एक अनुभव है। 'स्व' ही इन अचेतन या 'अस्पष्ट स्मृतियों' के कारण अतीत की स्मृतियों को फिर से जीना चाहता है। संस्कृत भाषा में इन 'स्व वृत्तियों' या 'अचेतन स्मृतियों' को, जो कि पूर्व कर्मों के परिणाम होते हैं, 'संस्कार' कहा जाता है। यही संस्कार 'स्व' की एकता देते हैं। 'स्व' वह है जो कि मस्तिष्क के विभिन्न भागों में विभिन्न इन्द्रियों से प्राप्त सूचना को समन्वित करता है और उसे एक आनुभविक एकता देता है, जिसके बिना कूटबद्ध स्मृति निरर्थक होगी। इसलिये, निश्चय ही, विभिन्न प्रकार की स्मृतियों पर विचार करने से 'आत्मा' का जो कि मस्तिष्क के तन्त्र का उपयोग करती है, अस्तित्व साबित होता है।

आत्मा तथा स्मृति-लोप के मामलें

"कतिपय प्रकार के स्मृति-लोप के कारण, जिसका एक कारण माया है, आत्मा ने अपनी सही पहचान को भुला दिया है और आत्मा के उस धाम को भी भुला दिया है जहाँ से वह आई है। उस स्मृति को अब पुनः जागृत किया जा रहा है। अब, अपने 'स्व' को जानो तथा 'स्व' की, सर्वोच्च पिता परमात्मा की एवं प्रिय घर (Sweet Home) की नई स्मृतियाँ पाओ।"

— शिव भगवानुवाच

'स्मृति-लोप' के मामलों द्वारा या हिप्पोकैम्पी (Hippocampi) को सर्जरी द्वारा हटा दिए जाने या दुबारा टुकड़े किये जाने के मामलों द्वारा या मस्तिष्क के बायें तथा दाहिने गोलार्धों को सर्जरी द्वारा पृथक् कर दिये जाने के कमिसुरोटॉमी (Commissurotomy) के मामलों द्वारा यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि मन तथा मस्तिष्क दो विभिन्न सत्तायें हैं। एक न्यूरो सर्जन स्कोविले (Scoville) ने निरन्तर द्विपक्षीय अपरस्मार (Epilepsy) से पीड़ित एक रोगी का उपचार करते समय, जिसे औषधियों द्वारा नियन्त्रित नहीं किया जा सकता था, दोनों पार्श्वों पर शंख-पालि के एक छोटे क्षेत्र के साथ-साथ हिप्पोकैम्पस को निकाल दिया। अब सभी अनुभवों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में उस रोगी का लगभग पूर्ण स्मृति-लोप हो गया। मिल्नर (Milner) ने [1] यह अभिलिखित किया है कि उनका रोगी उन घटनाओं की जो कि ऑपरेशन के पूर्व घटित हुई थीं, कुछ सेकण्ड़ों की अल्पकालिक स्मृतियों के साथ जी रहा था। मिल्नर ने इस रोगी के स्मृति-लोप का एक स्पष्ट वृत्तान्त इस प्रकार दिया :

"उसकी माता यह देखती है कि वह वही जिगसा पज़ल (Jigsaw puzzles)

---

1. *Milner B. "America Following Operation on the Temporal lobes" in Whitty and Zangwall (eds), p.109-133.*

दिन-प्रति-दिन कोई व्यवहार प्रभाव दर्शाये बिना करता रहता है और उन्हीं-उन्हीं पत्रिकाओं को उनमें लिखी हुई बातों को पहले पढ़ा हुआ न समझकर बार-बार पढ़ता है। ऑपरेशन के बाद वह रोगी उन पड़ोसियों को भी नहीं पहचान पाता है जो कि पिछले छह वर्षों तक उस रोगी के घर नियमित रूप से आया करते थे। उस रोगी ने उनके नाम भी नहीं सीखे हैं तथा जब वे लोग सड़क पर उससे मिलते हैं तो वह उनमें से किसी को भी नहीं पहचानता।''

''उसकी प्रारंभिक भावात्मक प्रतिक्रिया तीव्र हो सकती है, किन्तु वह अल्पकालिक होगी, क्योंकि उसे प्रोत्तेजित करने वाली घटना को वह शीघ्र भूल जाता है। इस प्रकार जब उस रोगी को उसके चाचा की मृत्यु की सूचना दी गई, जिसे की रोगी बहुत चाहता था, तो वह बहुत उत्तेजित हो उठा, किन्तु फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने पूरी बात भुला दी है, और समय-समय पर चाचा की मृत्यु का समाचार सुनकर वह वहीं तीव्र आश्चर्य दर्शाता था जिससे अभ्यस्तता का कोई भी चिह्न नहीं होता था।''

मिल्नर ने रोगी की स्वयं की टिप्पणियाँ दोहराई हैं जो कि रोगी ने हाल ही के एक परीक्षण के दौरान अन्तरालों में दोहराई थीं। मिल्नर कहते हैं कि ''परीक्षणों के बीच वह (रोगी) अकस्मात् ऊपर देखता था और उद्विग्न होकर कहता था।

''ठीक अब मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या मैंने कोई ग़लत काम किया है या कोई ग़लत बात कही है? देखिए, इस क्षण मुझे हर वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है, किन्तु ठीक इसके पहले क्या हुआ? यही बात मुझे परेशान करती है। यह किसी स्वप्न से जागने जैसा है; मुझे याद ही नहीं आता।''

ऊपर हमने 'स्मृति-लोप' का एक मामला दिया है जो सर्जरी द्वारा हिप्पोकैम्पस के निकाल दिए जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है, किन्तु स्मृति-लोप अभिघात (Trauma), मस्तिष्काघात (Concussion) अर्थात् अचेतनता देने वाली यान्त्रिक क्षति से या विद्युत आघात-चिकित्सा से उत्पन्न होने वाली ऐंठनों से उत्पन्न होती है। अभिघात से पीड़ित व्यक्ति अभिघात से पहले हुई घटनाओं की स्मृति पूरी तरह से खो देता है किन्तु उसका पश्चगतिक स्मृति-लोप (Retrograde amnesia) पूर्वतर तथा और भी पूर्वतर घटनाओं के लिए प्रगामी रूप से कम तीव्र

हो जाता है। अभिघात की तीव्रता के अनुसार मनुष्य का स्मृति-लोप मिनटों, घंटो, दिनों या माहों की अवधियों का हो सकता है।

स्मृति-लोप के इन सभी मामलों में देखी जाने वाली एक बात यह है कि स्मृति की हानि किसी व्यक्ति के भण्डार के किसी भाग की हानि या नोट-बुक और डायरियों या रिकार्डिंग के कैसेट जैसे उपकरणों की हानि जैसी होती है। स्वयं रोगी द्वारा की गई ऊपर उल्लेखित टिप्पणियाँ स्पष्टत: इस सत्य को स्थापित करती है कि एक सचेतन 'स्व' है जो कि यह कहता है : "मुझे आश्चर्य हो रहा है", "मुझे हर वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है", "मुझे याद ही नहीं आता"। यह सचेतन 'स्व' उस मस्तिष्क से भिन्न है जिसका एक भाग (हिप्पोकैम्पस) निकाल दिया है और इसलिए स्मृति के कूटबद्धकरण का उपकरण खो गया है। जो सत्ता 'आश्चर्य करती है' वह अपनी अवस्था का अनुभव वैसा ही करती है जैसा कि कोई व्यक्ति स्वप्न से जागने के पश्चात् की अवस्था का अनुभव करता है और यह भी महसूस करता है कि "मुझे याद नहीं है", वह सत्ता मस्तिष्क नहीं है बल्कि मस्तिष्क से भिन्न है और अन्तर्विवेकशील 'स्व' है, जिसने पूर्वतर किसी स्वप्न के पश्चात् की अवस्था का अनुभव किया था और जिसे यह अनुभूति होती है कि किसी समय उसमें स्मरण करने की योग्यता थी, किन्तु अब वह भण्डार और उपकरण खो गया है। स्मृति के कतिपय अंशों की हानि अनुपयोग के कारण भी होती है। यदि मनुष्य किन्ही कूटबद्ध स्मृतियों का प्रत्यास्मरण बहुत लंबे समय तक नहीं करता तो साइनैप्टिक संयोजिकायें क्षीण या नि:शेषित हो जाती है और मनुष्य उनसे वह आधार-सामग्री का प्रत्यास्मरण नहीं करवा सकता जो कि उसने कभी भण्डारित की थी। किन्तु यह स्पष्ट है कि 'मन' जो कि यह जानता है कि लंबे समय तक उक्त संयोजिकाओं के अनुपयोग के कारण अब वह प्रत्यास्मरण नहीं कर सकता, साइनैप्सों (Synapses) से भिन्न है । उस अन्तर्विवेकशील सत्ता की शक्तियों को तो अभिव्यक्ति मिलती है, किन्तु भौतिक अधोस्तर या अभिव्यक्ति के माध्यम की हानि हो जाने के कारण कुछ शक्तियों को अभिव्यक्ति नहीं मिलती।

स्थायी स्मृति आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करती है

"आत्मा के पास ही अन्तर्विवेकशील स्मृति होती है, जो कि संवेगों से भी सम्बद्ध है। प्रत्येक प्रत्यास्मरण अपने साथ कुछ संवेगों तथा कुछ अनुभव को जगाता है या लाता है। इसलिए मनुष्य को परमपिता तथा उसके दिव्य कार्यों की तथा स्वर्ग की स्थिर स्मृति होनी चाहिए, क्योंकि ये उसे शुद्धता, शान्ति तथा सुख की अवस्था प्रदान करेंगे।"

— ***शिव भगवानुवाच***

पूर्वगामी अध्यायों में जिस स्मृति की व्याख्या 'अल्पकालिक स्मृति' तथा 'दीर्घकालिक स्मृति' के रूप में की गई है उससे हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि मस्तिष्क स्मृति-चिह्नों के एक भौतिक रिकार्ड की तरह कार्य करता है तथा यह कि आत्मा में एक स्थायी स्मृति है जिसके सहारे आत्मा मस्तिष्क में भण्डारित स्मृति के निर्णायक या निर्धारक के रूप में कार्य करती है और या तो उसे सही के रूप में स्वीकार करती है या उसके सहीपन पर सन्देह करती है और उसकी पुष्टि के लिए किसी अन्य स्त्रोत को आजमाती है या उसे सही मानकर स्वीकार करती है या उसे ग़लत मानकर अस्वीकार कर देती है या नये तथ्यों के प्रकाश में उसे उपान्तरित भी करती है। पूर्वगामी अध्याय में अचेतन स्मृति, अवचेतन स्मृति तथा अस्पष्ट स्मृति की जो व्याख्या की गई है उससे भी इस सत्य की पुष्टि होती है कि आत्मा को घटनाओं के स्थायी संस्कार प्राप्त होते हैं। पुनर्जन्म तथा मृत्योत्तर अनुभवों के मामले इस बात की और भी पुष्टि करते हैं कि आत्मा के पास अन्तर्विवेकशील स्मृति होती है और यह कि मस्तिष्क में भण्डारित स्मृति वैसी ही है जैसी कि मनुष्य के लिए, जो कि विचारक है, फिल्में या डायरियाँ या कैसेटें होती हैं। अब हम उसकी स्मृति की शक्ति पर आगे विचार करेंगे।

स्मृति चेतना की एक अद्भुत योग्यता या क्रिया है। अमीबा से लेकर मनुष्य तक प्रत्येक अन्तर्विवेकशील सत्ता के पास 'स्मृति' होती है। पिल्सबरी [1] (Pillsbury) जैसे अनेक मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि 'स्मृति' चेतना की निरन्तरता की व्याख्या करती है, क्योंकि यदि मैं आज किसी ऐसी घटना का स्मरण करता हूँ जो कि उदाहरणार्थ, तीस वर्षों पूर्व घटित हुई थी, तो इसका यह अर्थ है कि मैं वही अन्तर्विवेकशील सत्ता हूँ जो कि तीस वर्षों पूर्व भी विद्यमान थी। दर्शन शास्त्र का यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि किसी मनुष्य का अनुभव ठीक वैसा ही नहीं हो सकता जैसा कि किसी दूसरे मनुष्य का हो। मेरा अनुभव ठीक वैसा ही नहीं हो सकता जैसा कि आपका अनुभव हो। इसलिए, "मैं", जो कि तीस वर्षों के अनुभव का स्मरण या प्रत्यास्मरण करता है, तब भी अस्तित्व में रहा होगा, क्योंकि वह 'मेरा' अनुभव था, न कि किसी अन्य का अनुभव, इसलिए मैं कहता हूँ कि मैंने *स्वयं* उसका अनुभव किया।

कोई भी बात पूर्णतः या हमेशा के लिए भुलाई नहीं जाती

अब, स्मृति के बारे में एक महत्वपूर्ण प्रेक्षण यह है कि वह स्थायी है। वस्तुतः, मन कभी नहीं भूलता, यद्यपि लोग सामान्यतः यह सोचते हैं कि हम घटनाओं को भूल जाते हैं। ऐसे लोगों से हमारा सामना हो जाता है जो किन्हीं घटनाओं को भूल गये थे, किन्तु वे अकस्मात् उन घटनाओं का स्पष्टतः स्मरण करने लगते हैं। डॉ. विनस्लो (Dr. Winslow) ने अपनी पुस्तक [2] में ऐसे लोगों के उदाहरण दिये हैं 'जिन्हें' अकस्मात् विगत घटनाओं का स्मरण हो आया था, जबकि पूर्वतर ऐसा प्रतीत होता था कि वे उन्हें बिल्कुल भुला बैठे थे। यहाँ हम उनकी पुस्तक से दो उद्धरण देते हैं :

1. एक व्यक्ति शिकार करते समय अपने घोड़े पर से गिर गया था। उसे अचेतन अवस्था में खेत से पड़ोस की एक झोपड़ी में लाया गया और उसके पश्चात्

---

1. *W.B. Pillsbury, "The Essentials of Psychology", New York, The Mac Millan Co. p.437.*
2. *Winslow: "Diseases of the Brain and Mind."*

उसे उसके घर ले जाया गया। एक सप्ताह तक उसके जीवन को आसन्न (imminent) संकट में पाया गया। जब वह इतना स्वस्थ हो गया कि बोलने लायक हो गया तो वह जर्मन भाषा बोलने लगा, जबकि जर्मन भाषा उसने आरंभिक जीवन में सीखी थी, किन्तु वह उस भाषा में लगभग 25 वर्षों तक नहीं बोला था।

2. एक व्यक्ति गंभीर रूप से बीमार हो गया था। जब जाँच की गई तो यह पाया गया कि वह हाल ही की परिस्थितियों की सभी स्मृति खो बैठा था, किन्तु उसे उसके जीवन की आरंभिक अवधि में घटी घटनाओं की स्पष्ट स्मृति थी। वस्तुत: जो प्रभाव बहुत पहले भुला दिए गये थे वे पुनर्जीवित (revived) हो गये थे। जब इस रोगी का शारीरिक स्वास्थ्य सुधर गया तब उसकी स्मृति में केवल एक परिवर्तन देखा गया। उसे हाल ही की घटनायें पुन: याद आने लगी, किन्तु वह अतीत की सभी घटनाओं को पूर्णत: भूल गया।

अब इससे यह प्रकट होता है कि विगत स्मृतियाँ कतिपय कारकों द्वारा पुनर्जीवित की जा सकती हैं या पुनर्जीवित हो जाती हैं। इसलिए स्मृति के पूर्ण लोप के अर्थ में विस्मृति एक तथ्य नहीं है। जिसे 'विस्मृत' कहा जाता है वह वस्तुत: नष्ट नहीं होता; वह केवल 'अवचेतन मन' या 'अचेतन मन' में डूब जाता है, जैसा कि मनोविश्लेषक कहते हैं। आंशिक या लगभग पूर्ण विस्मृति के तथा पश्चात्वर्ती स्मृति-पुन: प्रवर्तन या स्मृति-उद्धरण के अनेक मामले अभिलेखबद्ध किये गये हैं। ऊपर दिए गये दूसरे उदाहरण में, उस व्यक्ति को अकस्मात् आरंभिक जीवन की वे घटनायें याद आने लगी थीं जो समझा जाता था कि जिन्हें विस्मृत कर दिया गया। उसके पश्चात् उसे हाल ही की घटनायें याद आने लगीं और उसने आरंभिक जीवन की वे घटनायें पूरी तरह से भुला दी जो कि उसे बीमारी के दौरान याद थीं। इससे यह प्रकट होता है कि पहले की और हाल की घटनायें नष्ट नहीं हुई थीं, भौतिकी की भाषा में यह कहा जाता है कि वे प्रसुप्त (dormant) तथा प्रच्छन्न (latent) हो गई थीं। पातञ्जलि के योग भाष्य में भी यह कहा गया है कि विगत घटनायें स्थायी रूप से अपनी छाप छोड़ जाती हैं और उनके पुनर्जागरण

को 'स्मृति' कहा जाता है।[3] विख्यात संन्यासी तथा विद्वान श्री आदि शंकराचार्य ने यह कहा है कि अधिगम या स्मृति संस्कारों के रूप में प्रतिधारित होती है। श्री शंकराचार्य ने अपने 'भामती' नामक सुप्रसिद्ध भाष्य में कहा है कि स्मृति संस्कारों से जागा हुआ ज्ञान है।[4]

एक सुप्रसिद्ध मस्तिष्क-सर्जन पेनफील्ड ने जब स्थानीय संवेदनहरण (Local anaesthesia) के अन्तर्गत कतिपय रोगियों को आपरेशन कर उन रोगियों के मस्तिष्क की ललाट पालि को उद्दीप्त किया था तो उन्होंने यह देखा था कि उनमें विस्मृत स्मृतियाँ पुनः प्रवर्तित हो गई थीं।[5]

एनी बेसेन्ट (Annie Besant) ने भी हैड्डॉक तथा डी.यू.प्रल्स (Haddock and D.U. Prels) [6] की पुस्तक से मरते हुए व्यक्तियों के अनेक मामले दिये हैं, जो कि यह दर्शाते हैं कि मरने के ठीक पहले स्मृति कैसे पुनः प्रवर्तित तथा पुनर्गठित होती है। यहाँ हम दो उदाहरण और देते हैं।

1. एडमिरल ब्यूफोर्ट (Admiral Beaufort) पानी में गिर गये थे तथा अपनी चेतना खो बैठे थे। इस दशा में "विचार के पश्चात् विचार ऐसे द्रुत अनुक्रम में उठे जो अनुक्रम न केवल अवर्णनीय है बल्कि एक अकल्पनीय परिस्थिति है।" सबसे पहले उनमें यह विचार जागा कि उसकी मृत्यु से उसके परिवार के सदस्यों पर कौन-से तात्कालिक परिणाम हुये, उसके पश्चात् वे अतीत में लौट गये; उन्होंने अपनी अन्तिम समुद्री यात्रा दोहराई जिसमें उनका जहाज डूब गया था, फिर वे अपने शालेय दिनों की ओर लौटे और उन्होंने स्मरण किया कि उन्होंने कितनी प्रगति की थी, कितना समय बर्बाद किया था और यहाँ तक कि उन्हें उनकी बचकानी यात्रा तथा बचपन के साहसपूर्ण

3. *पातंजली योग फिलासॉफी 1-11*
   अनुभूत विषयासंप्रमोषाः स्मृति।
4. *संस्कार मात्रं हि विज्ञानं स्मृति।*
5 *Penfield W. and Perot P., "The Brains rcord of auditory and visual experiences", Brain, 86 (1963), p.596-696.*
6. *Haddock, Samnolism and Psychism, p.213, as quoted by Annie Besant in her book 'Psychology', p.238.*

कार्यों का भी स्मरण हुआ। एडमिरल ब्यूफोर्ट कहते हैं — "इस प्रकार पीछे की ओर यात्रा करते हुए मुझे मेरे विगत जीवन की प्रत्येक घटना का पश्चगामी अनुक्रम में, तथापि जैसा कि यहाँ बताया गया है, न केवल स्थूल रूप में बल्कि प्रत्येक सूक्ष्म तथा सांपार्श्विक आकृति के साथ स्मरण हो आया; संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मेरे अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि एक प्रकार के विशालदर्शी पुनर्विलोकन में मेरे सामने प्रस्तुत हो गयी थी, और प्रत्येक कार्य सही तथा ग़लत की चेतना और उसके कारणों तथा परिणाम के साथ दिखाई दिया। वस्तुतः, अनेक तुच्छ घटनायें, जिन्हें मैंने बहुत पहले भुला दिया था, मेरी कल्पना के परिचितता के स्वरूप के साथ घूमड़ने (crowded) लगीं।" इससे ब्यूयोफोर्ट को पानी के बाहर निकालने तक सिर्फ दो मिनट का समय लगा।

2. एक अन्य उदाहरण एक महिला का है। फैच्नर (Fechner) ने इस मामले का वर्णन किया है। वह गहरे पानी में गिर गई तथा लगभग डूब गई। उसकी समस्त शारीरिक गति के बन्द हो जाने के समय से लेकर उसे पानी में से बाहर निकालने के बीच लगभग दो मिनटों का समय बीता, जिसके दौरान, जैसा कि उसने बाद में बताया, वह अपने सम्पूर्ण अतीत के माध्यम से फिर से जीने लगी, जिसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्योरे उसकी कल्पना में चित्रित होने लगे।[7]

अनेक अन्य लोगों ने मृत्योत्तर जीवन या मृत्यु के ठीक पहले के क्षणों के जीवन के ऐसे ही अनुभवों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ, अर्नाल्ड टॉयनबी (Arnold Toynbee) तथा आर्थर कोएस्लर (Arthur Koeslter)[8] थॉमस मूडी (Thomas Moody), रोज़ालिन्ड हेवुड (Rosalind Heywood),[9] आदि ने ऐसे लोगों

7. *From D.U. Prel's Philosophy of Mysticism, quoted by Annie Besant in her book, 'Psychology', p.237-238.*
8. *Arnold Toynbee, Arthur Koestler and others, "Life After Death", Weidenfeld and Nicolson, London, January 1977. Second impression p.194-195.*
9. *Stanislav Groff Joan Halifax, Elisabeth Kubler Ross etc.*

के मामलों का वर्णन किया है जो कि मौत का सामना कर रहे थे और अपनी इस अवस्था में उन्हें उनके कार्यों का स्मरण अकल्पनीय द्रुततापूर्वक हो रहा था, जो कि उनके सामने उनके विगत घटनाओं के दृश्य एक स्पष्ट फिल्म की तरह उभर रहे थे और उनमें इस बात की अनुभूति या बोध जगा रही थी कि उन्होंने जो कार्य किये वे सही थे या ग़लत थे।

इस विषय पर कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ ये हैं : मार्टिन एबन (Martin Ebon) द्वारा लिखित 'दि एविडेन्स फॉर लाइफ आफ्टर डेथ' (The Evidence for Life After Death), कार्लिस आसिस तथा एर्लेन्डर हैराल्डसन (Karlis Osis and Erlendur Haraldsson) द्वारा लिखित 'एट दि अवर ऑफ डेथ' (At the hour of death); फ्रैन्क स्माइथ तथा रॉय स्टेमेन (Frank Smyth and Roy Stemmen) द्वारा लिखित 'मिस्टरीज़ ऑफ दि आफ्टर लाइफ (Mysteries of the After Life) रेमंड ए. मूडी, जूनियर (Raymond A. Moody, Jr.) द्वारा लिखित 'लाइफ आफ्टर लाइफ' (Life After Life) तथा स्विजरलैन्ड में जन्मी मनोविज्ञानी डॉ. एलिझाबेथ क्युबर-रॉस (Dr. Elisabeth Kubler-Ross) द्वारा लिखित एक पुस्तक।

'विस्मृत' घटनाओं की स्मृति सम्मोहन द्वारा भी पुनर्जागृत की जाती है, जिससे यह प्रकट होता है कि जिसे हम विस्मृत समझते हैं वह वस्तुतः हमेशा के लिए नहीं खो जाती, क्योंकि इस विश्व में कोई भी वस्तु वस्तुतः खो नहीं जाती, वह एक मात्र अवचेतन या अचेतन में डूब जाती है। वस्तुतः वह हर वस्तु जो कि हमारी चेतना से टकराती है वह उस पर एक अमिट चिह्न छोड़ जाती है। केवल कुछ संस्कार चेतना की सीमा के ऊपर होते हैं और इसलिए उनका आसानी से प्रत्यास्मरण किया जा सकता है, जबकि दूसरे संस्कार चेतना की सीमा के नीचे होते हैं और उन्हें 'विस्मृत' कहा जाता है, यद्यपि उन्हें फिर से प्राप्त किया जा सकता है। भौतिकी की भाषा में वे गतिज रूप (Kinetic form) में रहने के बजाय विभव रूप (Potential form) में चले जाते हैं, किन्तु वे निश्चित रूप से अस्तित्व में होते हैं।

हमने पुनर्जन्म के मामले देखे हैं।बच्चों द्वारा उनके गत जीवन की घटनाओं का वर्णन भी यह सिद्ध करता है कि कुछ भी नष्ट नहीं हो जाता, बल्कि वह

विस्मृत में चला जाता है। जो कुछ भी हमारे मन के पर्दे पर और हमारी अभिज्ञता के फोकस में होता है उसे 'स्मृति' (remembrance) कहा जाता है और जो कुछ भी हमारी अभिज्ञता के फोकस से हट जाता है, वह 'विस्मृत' (forgotten) कहलाता है।

स्मृति — आत्मा की एक शक्ति है, न कि मस्तिष्क की

कतिपय बच्चों ने पूर्वजन्म की जो कहानियाँ बताई हैं उनसे न केवल यह प्रकट होता है कि स्मृति नष्ट नहीं होती तथा घटनायें पूर्णत: तथा हमेशा के लिए विस्मृत नहीं हो जाती, बल्कि उनसे यह भी प्रकट होता है कि मनुष्य द्वारा स्मृति अधोसीमा स्तर या अवसीमा स्तर पर प्रतिधारित की जाती है, और वह चेतना की एक योग्यता है और वह मस्तिष्क-ऊतक (brain-tissue) की एक शक्ति नहीं है, क्योंकि पूर्ववर्ती देह तथा मस्तिष्क का दहन हो जाने के पश्चात् व्यक्ति अब, एक नये मस्तिष्क के माध्यम से, जो कि अभी पूर्णत: विकसित भी नहीं हुआ होता है, पूर्व जन्म की घटनाओं का वर्णन संवेग, भावनाओं और सम्बन्ध के संज्ञान के साथ उसी प्रकार से कर सकता है जिस प्रकार से वह उस जीवन में कर सकता था। गत जीवन की घटनाओं के प्रत्यास्मरण को सम्मोहन के ज़रिए भी संभव बनाया गया है। इस प्रकार, स्मृति एक ऐसी अधि-भौतिक सत्ता की शक्ति है जो कि मृत्यु के पश्चात् भी उत्तरजीवी रहती है, और किसी पूर्वतर जन्म की घटनाओं का स्मरण कर सकती है। इसका एक सुदृढ़ सबूत यह है कि अमीबा और एक कोशिय जीवित प्राणियों में भी जिनके पास मस्तिष्क नहीं होता, स्मृति की शक्ति होती है, भले ही वह कितनी ही धुंधली अवस्था में हो, और अपनी स्मृति की शक्ति के कारण ही वे पुनरावृत्ति द्वारा कतिपय प्रकार के व्यवहार सीख सकते हैं और उन्हें अपने अस्तित्व के लिए हानिकारक परिस्थितियों को टालने का स्मरण रहता है।

इसके अतिरिक्त, मरते हुए लोगों के अनुभवों के उदाहरण, जिनमें से दो इसके पूर्व दिए गये हैं, इस बात के सुदृढ़ सबूत हैं कि 'स्मृति' भौतिकी तथा रसायन शास्त्र के नियमों द्वारा नियन्त्रित किसी भौतिक सत्ता का कार्य नहीं है,

क्योंकि किसी जीवन-काल की घटनाओं की स्मृति इतनी द्रुततापूर्वक (rapidly) प्रकट होती है मानो कि वह काल से मुक्त हो गई हो। भौतिक अस्तित्व के, उदाहरणार्थ, 50 वर्षों के जीवन की सभी घटनाओं का पुनरावलोकन दो मिनटों में या उससे भी कम समय में कर लेना, न केवल यह दर्शाता है कि स्मृति अमिट रूप से स्थायी होती है, बल्कि यह कि वह एक अधि-भौतिक कार्य है, क्योंकि वह न केवल चेतना से सम्बद्ध है, बल्कि अकल्पनीय रूप से द्रुत होता है। और इस बात की अभिज्ञा का सांपार्श्विक (colateral) होता है कि जो कुछ किया गया वह नैतिक दृष्टि से सही था या ग़लत था। अभिज्ञा, विवेचन और नैतिक विचार किसी भौतिक सत्ता के गुण या कार्य नहीं हो सकते, बल्कि एक आध्यात्मिक व्यक्ति के गुण तथा कार्य है जिसके पास अस्तित्व सततता (continuity) थी और वह जो कुछ भी करता रहा हो, उसका साक्षी रहा है और एक सचेतन ऊर्जा है, जो कि न केवल नष्ट नहीं हो सकती, जबकि ऊर्जाओं के अन्य सभी रूप नष्ट हो सकते हैं, बल्कि अरूपान्तरणीय भी है, और इस प्रकार ऊर्जा के ताप, प्रकाश आदि जैसे अन्य रूपों के विपरीत, जिन्हें कि एक प्रकार से दूसरे प्रकार में रूपान्तरित किया जा सकता है, अरूपान्तरणीय भी है। एक ऐसी ऊर्जा होने के कारण जो कि सचेतन है तथा अरूपान्तरणीय है और जिसके पास नैतिक बोध भी होता है, वह मस्तिष्क की अनुघटना नहीं हो सकती, क्योंकि इन दोनों का स्वभाव भिन्न भिन्न है। जब ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व आदि को एक प्रकार से दूसरे प्रकार में रूपान्तरित किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप वे अभिज्ञा, अवबोध, निर्णय, इच्छा आदि की योग्यतायें या शक्तियाँ अर्जित नहीं कर लेते। इसलिए यह कहना अतर्क संगत तथा दुराग्रहपूर्ण होगा कि स्थायी स्मृति एक मस्तिष्कीय कार्य है, जबकि यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता कि उदाहरणार्थ अमीबा के पास मस्तिष्क न होते हुए भी स्मृति क्यों होती है?

मस्तिष्क मर जाता है, किन्तु आत्मा जीवित रहती है

अनेक जीव-विज्ञानी यह कहते हैं कि यदि रोग या दुर्घटना के कारण देह की कोशिकायें नष्ट हो जाती हैं तो उनमें से अधिकांश प्रतिस्थापित या पुनर्जीवित हो

जाती हैं। किन्तु मस्तिष्क की कोशिकाओं के मामले में ऐसा नहीं होता। जब मस्तिष्क-कोशिका एक बार खो जाती है तो हमेशा के लिए खो जाती है। इसलिए हम यह जानकर आशंकित हो जाते हैं कि जब हम 30 वर्षों की आयु के हो जाते हैं तो हमारे मस्तिष्क की कोशिकायें प्रतिदिन लगभग 100,000 की दर पर मरती हैं। सौभाग्यवश, हम 100,000,000,000 मस्तिष्कीय कोशिकाओं के साथ आरम्भ करते हैं। इसलिए, आपूर्ति समाप्त हो जाने का कोई भी खतरा नहीं है, यद्यपि मस्तिष्क के कार्य की दक्षता प्रभावित होती है।

अब जो लोग यह कहते हैं कि चेतना मस्तिष्क का एक उत्पाद है, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि जब मस्तिष्कीय कोशिकायें मरती जाती हैं तो चेतना कैसे बनी रहती है? यदि मस्तिष्क में कोई शाश्वत आत्मा स्थित न हो तो मनुष्य अपने अतीत की स्थायी स्मृति कैसे प्रतिधारित कर सकता है?

मस्तिष्क के बिना 'स्मृति' सम्भव है

जोसेफ (Joseph) ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु लॉजिक' (Introduction to Logic) में कहा है : "कुछ भी किसी ऐसी घटना का कारण नहीं है जिसकी अनुपस्थिति में भी वह घटना घटती है। उन्होंने आगे यह कहा है, "कुछ भी किसी ऐसी घटना का कारण नहीं है जिसकी उपस्थिति में वह घटना घटित नहीं हो सकती।"[10] अब चूँकि मस्तिष्क की अनुपस्थिति में अमीबा के पास स्मृति होती है और चूँकि मनुष्य मस्तिष्क की उपस्थिति में कतिपय बातों को भूल जाता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि मस्तिष्क के बिना भी स्मृति विद्यमान होती है और इसलिए वह मस्तिष्क ऊतक की एक शक्ति नहीं है। यदि मैं किसी माइक्रोफोन (microphone) या किसी पब्लिक एड्रेस सिस्टम (public address system) का उपयोग करते हुए बोलता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं है कि माइक्रोफोन बोलता है। यह तथ्य कि माइक्रोफोन के अभाव में भी बोल सकता हूँ, इस तथ्य का पर्याप्त सबूत है कि मैं ही बोलता हूँ, यद्यपि माइक्रोफोन मेरी आवाज़ को तीव्र

10. H.W.B. Joseph, 'Introduction to Logic'. Oxford Clarendon Press, p.403.

करता है और प्रसारित करता है।

यदि आत्मा विद्यमान न हो तो अव-चेतन मन क्या है?

यदि 'स्मृति' मस्तिष्क की एक शक्ति है तो हम यह पूछना चाहेंगे : 'अव-चेतन' या 'अचेतन मन का क्या अर्थ है? स्मृति का मस्तिष्क-सिद्धान्त (The Brain Theory of Memory) स्मृति के इन पहलुओं की व्याख्या नहीं कर सकता। यदि हम स्मृति को आत्मा की एक शक्ति और क्रिया समझें तो हम यह कह सकते हैं कि जब सचेतन व्यक्तित्व के पास अधोसीमा तथा अवसीमा स्तर पर स्मृति होती है तो हम उसे 'अवचेतन' या 'अचेतन' मन कह सकते हैं।

स्मृति या स्मृति-उद्धरण (memory-retrieval) की क्रिया में मस्तिष्क की भूमिका

जो लोग यह विश्वास करते हैं कि 'स्मृति' मस्तिष्क की एक अनुघटना है, वे लोग अपने दृष्टिकोण की व्याख्या देहक्रिया विज्ञान तथा तन्त्रिका-विज्ञान के आधार पर करते हैं। वे यह कहते हैं कि सबसे पहले यह होता है कि उद्दीपन किसी इन्द्रिय-अंग उदाहरणार्थ, आँख या कान से होकर एक कंपन उत्पन्न करता है। यह कंपन, जो कि तन्त्रिका-आवेग या 'न्यूरोकाइम' (Neurokyme) कहलाता है, संवेदी तन्त्रिकाओं से होकर, कोशिका से कोशिका तक अर्थात् दृष्टि या श्रवण के आरोही मार्गों तथा जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र (RNA) से होते हुए यात्रा करता है, उसके पश्चात् आवेग अवरोही जालाकार सक्रिय कारक तन्त्र में प्रवेश करता है तथा वह मस्तिष्क के केन्द्रीय भाग की ओर या मस्तिष्क के 'समुचित' क्षेत्र की ओर जाता है। वे यह कहते हैं कि आवेग एक विशिष्ट रीति से प्रान्तस्थीय केन्द्रों को जागृत करता है और स्वयं को वहाँ 'अंकित' करता है और इस प्रकार उसमें भविष्य में उसी रीति से कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। तकनीकी शब्दों में वे इस प्रवृत्ति को 'परिरक्षण प्रवृत्ति' (Preservation Tendency) कहते हैं, जो कि पुनरावृत्ति द्वारा दृढ़तर होती जाती है और एक अवस्था ऐसी आ जाती है कि बाह्य उद्दीपन की अनुपस्थिति में भी वह आवर्तित

हो सकती है। अब वह एक 'स्मृति पथ' (memory-track) या एक 'स्मृति बिंब' (memory-groove) या एक 'स्मृति खांचा' (memory-image) बन गई होती है। वे यह कहते हैं कि जब कभी यह विशिष्ट प्रान्तस्थीय केन्द्र उद्दीप्त होकर कंपित होता है, जैसा कि वह मूल उद्दीपन के अन्तर्गत कंपित हुआ था, तब-तब स्मृति पुनर्प्रवर्तित हो जाती है। इसलिए, उनके मतानुसार स्मृति— "प्रान्तस्थीय संरचनाओं का, जो कि मूलत: सक्रिय होती हैं, पुनर्जागरण (re-arousal) है।[11]

किन्तु गहनतापूर्वक प्रश्न पूछने पर यह दृष्टिकोण टिक नहीं सकता, क्योंकि यह पाया गया है कि जब मस्तिष्क के कतिपय भागों को निकाल दिया जाता है, जो कि स्मृति जैसे विनिर्दिष्ट कार्यों से सम्बन्धित हैं, तो वे कार्य कुछ अवधि पश्चात्, मस्तिष्क में सामान्य भागों के अभाव में, तन्त्रिका विज्ञानियों के मतानुसार, प्रणालियों की आशु रचना द्वारा पुन: किये जा सकते हैं। अमेरिका के कार्ल लैशले (Karl Lashley) ने पशुओं पर अनेक ऐसे प्रयोग कर इस तथ्य का प्रमाण दिया है।

डी.यू. प्रेल (D.U. Prel) ने अपनी पुस्तक में अन्य तर्क देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि मस्तिष्क का सचेतन सत्ता होना तथा स्मृति की शक्ति से सम्पन्न होना असम्भव है। हम उनका कथन उद्धृत करते हैं :

"इस प्राक्कल्पना पर (उन लोगों की जो कि यह विश्वास करते हैं कि मस्तिष्क के पास स्मृति की शक्ति है) स्मृति संस्कारों द्वारा छोड़े गये मस्तिष्क-चिह्नों पर निर्भर होगी। स्मृति के कार्य द्वारा ऐसे चिह्न निरन्तर नवीकृत होते हैं जिससे कि ऐसे मार्ग बन जाते हैं कि उन पर स्मृति की गाड़ी विशेष सुविधा के साथ चल सकती है।"

इस दृष्टिकोण से पिछली शताब्दी के भौतिकवादियों द्वारा निष्कर्ष निकाले जा चुके थे। हुक तथा अन्य लोगों (Hook and others) ने यह मान्य किया कि चूँकि एक सेकण्ड का एक तिहाई भाग एक संस्कार उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए 100 वर्षों में एक मनुष्य ने अपने मस्तिष्क में संस्कारों के

11. W.B. Pillsbury, 'Essentials of Psychology', p.158.

9,467, 280,000 चिह्न संग्रहित कर लिए होंगे, या निद्रा की अवधि के लिए एक-तिहाई घटा देने पर संस्कारों के 3,155,760,000 चिह्न संगृहीत कर लिए होंगे; इस प्रकार 50 वर्षों में किसी मनुष्य ने संस्कारों के 1,577,880,000 चिह्न संग्रहीत कर लिए होंगे; आगे यह कि मस्तिष्क के लिए 4 पौंड भार की गुंजाइश रखकर तथा रक्त और रक्त-वाहिकाओं का एक पौंड का भार तथा बाहरी त्वचा का एक पौंड का भार घटाने के बाद मस्तिष्क-पदार्थ के एक कण में 205,542 चिह्न अन्तर्विष्ट होने चाहिए।

इसके अतिरिक्त, हमारा बौद्धिक जीवन मात्र संस्कारों से निर्मित नहीं होता; ये हमारे स्वनिर्णय के उपादान होते हैं। किन्तु ये मस्तिष्क-अणु उनके जादुई गुणों के बावजूद स्वनिर्णय में हमारी सहायता नहीं करते, इसलिए हमें यह मानना चाहिए कि जब कभी हम कोई आदेश या वाक्यांश निर्माण करते हैं तब-तब संस्कार कम्पोजीटर के बॉक्स के अक्षरों की तरह संयुक्त हो जाते हैं; तथापि ये मस्तिष्क-अणु एक साथ कम्पोजीटर भी होते हैं और बॉक्स भी होते हैं।[12]

अब, उपर्युक्त कथन या टिप्पणी के आधार पर, यदि हम 'मस्तिष्क' को स्मृति की शक्ति से सम्पन्न एक सत्ता समझें तो इसका यह अर्थ होगा कि मस्तिष्क के प्रत्येक कण में 20,5542 स्पष्ट चित्र होते हैं। अब भौतिक या रसायन शास्त्र द्वारा इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती और वह एक अस्वीकार्य तथा ग़लत प्रत्यय है। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ है कि 'स्मृति' मस्तिष्क की शक्ति नहीं है, बल्कि एक अधि-भौतिक सत्ता की शक्ति है, जिसे कि 'आत्मा' कहा जाता है, क्योंकि यदि स्मृति-बिबों को अधि-भौतिक समझा जाये तभी उन बिंबों के अपरिमित संख्या में या इतनी विशाल संख्या में होने और वह भी अमिट रूप में अस्तित्व में होने का स्पष्टीकरण किया जा सकता है और उस पर विश्वास किया जा सकता है।

निःसन्देह, यह सत्य है कि मस्तिष्क के कतिपय भाग स्मृति से सम्बद्ध हैं। प्रयोग किये गये हैं तथा यह पाया गया है कि जब इन भागों को विद्युत द्वारा उद्दीप्त

12. *D.U. Prel, 'Philosophy of Mysticism'.*

किया जाता है तो कतिपय घटनाओं की स्मृति जाग उठती है। कुछ साइकेडेलिक औषधियों (Psychedelic drugs) के कारण भी कतिपय स्मृतियाँ पुनर्जागृत हो जाती हैं। जब मस्तिष्क के कतिपय क्षेत्रों को विद्युत आघात दिए जाते हैं तो उनसे स्मृति जाग उठती है या अस्थायी विस्मृति की अवस्था भी उत्पन्न हो सकती है। किन्तु इससे यह प्रकट नहीं होता कि स्मृति मस्तिष्क की एक शक्ति है। आइये, इसे हम एक अन्य साम्यानुमान द्वारा स्पष्ट करें।

किसी आर्केस्ट्रा के संचालक के सामने संगीतकार की कूटभाषा (Code language) में वह गीत लिखा होता है जिस पर आर्केस्ट्रा को धुन बजानी होती है। उसे गीत तथा धुन का स्मरण रहता है, किन्तु मात्र अपने कार्य को सुगम बनाने तथा धुन की परिशुद्धता सुनिश्चित करने के लिए वह उसके सामने रखी हुई कूटभाषा में लिखित धुन की सहायता लेता है। जब वह धुन नहीं बजा रहा होता है तब भी यदि कूट भाषा में लिखित धुन उसके सामने रखी हुई हो तो उस धुन से उसकी स्मृति पुनर्जागृत हो जाती है, किन्तु उसके बिना भी वह उसका स्मरण तथा प्रत्यास्मरण कर सकता है। इसी प्रकार, मस्तिष्क के चिह्न घटनाओं द्वारा छोड़े गये 'संस्कार' होते हैं। ये मस्तिष्क-चिह्न कूटबद्ध धुनों जैसे होते हैं जो कि आत्मा की सहायता के लिए होते हैं तथा उसके कार्य को सुगम बना देते हैं; ये किसी एक पर्यटक के उपयोग में आने वाले किसी नक्शे की तरह होते हैं, जो कि उस नक्शे में दर्शाये गये मार्गों से पहले ही यात्रा कर चुका होता है या ये चिह्न किसी परीक्षा की तैयारी कर रहे किसी छात्र के उपयोग में आने वाले टिप्पणियों (Notes) की तरह होते हैं, या वे चिह्न जीवन की घटनाओं की डायरी की तरह, किसी बैठक की कार्यवाहियों के कार्यवृत्त की फाइल की तरह उपयोगी होते हैं, किन्तु वे चिह्न व्यक्ति नहीं होते, अर्थात् आर्केस्ट्रा का संचालक या डायरी लिखने वाला व्यक्ति या बैठक का सचिव नहीं होते। यह 'स्मृति-चिह्न' या 'स्मृति पथ' 'स्मृत्यंकन', एक्सन (Axons) या वृक्षिकायें (Dendrites) जिस सचेतन व्यक्ति के प्रयोजन में साधन होते हैं, वह सचेतन व्यक्ति 'आत्मा' है। इस प्रकार, आत्मा का अस्तित्व एक सुस्थापित तथ्य है।

आनुवंशिक तन्त्र तथा आत्मा का पुनर्जन्म

"किसी आत्मा को किसी विशिष्ट परिवार में, विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और प्राकृतिक पर्यावरण में कोई विशिष्ट देह उसके कर्मों तथा संस्कारों के आधार पर प्राप्त होता है। वह नये प्रयास द्वारा नये लक्षण प्राप्त कर सकती है तथा पुराने संस्कारों को बदल सकती है। यदि तुम ईश्वरीय शिक्षा के आधार पर ये प्रयत्न करोगे तो तुम स्वयं को फ़रिश्तेपन की अवस्था (Angelic state) *तक ऊंचा उठा सकते हो।"*

— शिव भगवानुवाच

पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने पुनर्जन्म के उदाहरण दिए हैं। जीव-विज्ञानी मानव देह के जन्म की व्याख्या पुरुष तथा स्त्री की जनन-कोशिकाओं (Germ cells) के समेल और आनुवंशिकता के आधार पर करते हैं। किन्तु यह देखा जायेगा कि ये नियम तथा आनुवंशिक कूटों (Genetic code) का ज्ञान यह स्पष्ट करने के लिए अपर्याप्त है कि लाखों संभव मिलनों में से कोई विशिष्ट समेल ही फलदायक क्यों होता है? इसकी व्याख्या कर्म के नियमों तथा आत्मा के अस्तित्व के नियम के अनुसार उसके पुनर्जन्म के आधार पर अधिक अच्छी तरह से की जा सकती है। हम जीन (Gene) के संश्लेषण तथा आनुवंशिक कूट पर पहले ही संक्षेप में चर्चा कर चुके हैं, किन्तु अब हम उस पर कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

प्रत्येक शिशु एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक गठन के साथ जन्म लेता है, जो कि दूसरे शिशुओं से भिन्न होता है। हम यह देखते हैं कि एक ही माता-पिता से जन्में शिशुओं में से एक शिशु को पढ़ाई-लिखाई के बजाय खेल-कूद में अधिक रुचि होती है, जबकि दूसरे शिशु को खेल-कूद के बजाय जानने और सीखने तथा पुस्तकें पढ़ने में अधिक रुचि होती है, जबकि तीसरे शिशु को किसी कौशल या शिल्प में अधिक रुचि होती है। यह प्रश्न उठता है कि "जिन छोटे शिशुओं ने किसी विशेष विद्या-शाखा में कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त न किया हो उनकी

अभिवृत्तियों, योग्यताओं और विशेषताओं में अन्तर कैसे होता है? आइये, हम पहले यह देखें कि मनोवैज्ञानिक तथा जीवविज्ञानी इन अन्तरों की व्याख्या किस प्रकार से करते हैं।

वैज्ञानिक इन अन्तरों की व्याख्या किस प्रकार से करने का प्रयत्न करते हैं?

आधुनिक जीव-विज्ञानी यह कहते हैं कि व्यक्तियों के बीच शारीरिक गठन और मानसिक योग्यताओं में जो अन्तर होता है वह दो कारकों से होता है। इनमें से एक कारक हैं 'आनुवंशिकता' तथा दूसरा कारक है 'पर्यावरण'। उनके अनुसन्धान कार्य ने उन्हें यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया है कि कुछ योग्यतायें तथा विशेषतायें प्रशिक्षण के ज़रिए या पर्यावरण से अर्जित की जाती है। ये वैज्ञानिक इस बात पर विचार करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते कि एक शाश्वत आत्मा ही इस अन्तर की व्याख्या कर सकती है। आत्मा और संस्कारों के अस्तित्व और कर्म के सिद्धान्त के आधार पर कोई भारतीय वैज्ञानिक इन अन्तरों की जो व्याख्या करना चाहेगा वह अधिकांश जीव-वैज्ञानियों को स्वीकार्य नहीं होगी। जीव-विज्ञानी यह कहते हैं कि इस मामले में संस्कार तथा कर्म का नियम तथा कर्म के नियम के आधार पर आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त लागू नहीं होता, बल्कि 'जीन' (Gene) ही इन अन्तरों के लिए उत्तरदायी हैं।

स्पष्ट है कि ये दो दृष्टिकोण पूर्णत: भिन्न हैं। यदि हम जीव-विज्ञानियों की व्याख्या को स्वीकार करते हैं जो कि आनुवंशिकी पर आधारित है, तो हमें आत्मा और संस्कारों के अस्तित्व तथा पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त को अस्वीकार कर देना होगा और यदि हम दूसरी ओर, कर्म के सिद्धान्त को तथा आत्मा के संस्कारों या पूर्व कर्मों के आधार पर आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते हैं तो हमें यह बताना होगा कि 'आनुवंशिकता के सिद्धान्त' में कौन-से दोष हैं, या कौन-सी कमियाँ हैं, कौन-से अन्तर्विरोध हैं या कौन-सी अपर्याप्तायें हैं? या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमें यह सिद्ध करना होगा कि इन दो दृष्टिकोणों में से कौन-सा दृष्टिकोण इस समस्या का बेहतर समाधान दे सकता

है।

क्या आनुवंशिकता अथवा पर्यावरण आधारभूत कारक है?

इसके पूर्व कि हम जीव-विज्ञान के ऊपर-उल्लिखित निष्कर्ष की मान्यता पर विचार करें, हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि आनुवंशिकता (heredity) या (environment) पर्यावरण में से कौन-सा कारक आधारभूत कारक है?

इस सिलसिले में, हम यह कहना चाहेंगे कि यद्यपि किसी व्यक्ति का कुल विकास उसकी जन्मजात सम्भाव्यताओं तथा पर्यावरणात्मक स्थितियों की परस्पर क्रिया का शुद्ध परिणाम हैं, तथापि उसका जन्मजात तथा सहज स्वभाव तथा उसकी अन्तर्निहित शक्तियाँ अभिभावी शक्तियाँ हैं। पर्यावरण नि:सन्देह एक महत्वपूर्ण कारक है, किन्तु वह आधारभूत कारक नहीं है। पर्यावरणात्मक स्थितियाँ मनुष्य की वृद्धि की प्रक्रिया में केवल सहायक हो सकती हैं या बाधक हो सकती हैं। अधिकांश वैज्ञानिक अब इस बारे में सहमत हैं कि इन दो अवधारक कारकों में से आनुवंशिकता आधारभूत कारक है। इस सन्दर्भ में हम ई.जी. कोंक्लीन (E.G. Conklin) का विचार उद्धृत करते हैं —

"नि:सन्देह, विकास के कारक या कारण केवल जनन-कोशिकाओं (Germ) में ही नहीं पाये जाते, बल्कि पर्यावरण में भी पाये जाते हैं; न केवल भीतरी शक्तियों में बल्कि बाहरी शक्तियों में भी पाए जाते है; किन्तु यह बात भी उतनी ही निश्चित है कि विकास के निर्देशी कारक तथा मार्गदर्शी कारक मुख्यत: आन्तरिक होते हैं और जनन कोशिकाओं (Germ cells) के संगठन में उपस्थित होते हैं, जबकि पर्यावरणात्मक कारक विकास पर मुख्यत: एक उद्दीपक, अवरोधक या उपान्तरकारी प्रभाव डालते हैं।"[1]

निम्लिखित बातों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है :

(क) मनुष्य अपने पर्यावरण का चयन कर सकता है, किन्तु उसका सहज स्वभाव वही होता है जो कि पहले से है। इसके अतिरिक्त बहुधा मनुष्य

1. *Edwin Grant Conklin: Hereditary and Environment in the Development of Men. Princeton University Press, Princeton, p.59-60.*

अपने पर्यावरण का चयन अपनी सहज प्रवृत्तियों के अनुसार करता है।

(ख) भले ही वह अपनी पसन्द के अनुरूप अपने पर्यावरण का चयन न कर सके फिर भी वह उसमें बहुत परिवर्तन कर सकता है। वह पर्यावरणात्मक स्थितियों को उपान्तरित कर सकता है।

(ग) यदि वह पर्यावरण की कतिपय स्थितियों को उपान्तरित न कर सका तो वह उनसे अपनी रक्षा कर सकता है या उनका उपयोग अपने सर्वोत्तम लाभ के लिए कर सकता है।

(घ) वह अपनी मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं को इतना अधिक विकसित कर सकता है कि वह पर्यावरणात्मक स्थितियों से ऊपर उठ सकता है या उन्हें अपने अधीन रख सकता है। उदाहरणार्थ कोई योगी अपने भीतर की मानसिक योग्यताओं तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को इस तरह विकसित करता है कि वे उसे पर्यावरणात्मक स्थितियों से अप्रभावित रहने में सहायता पहुँचाती है। श्रीमद् भगवद्गीता में, अनेक श्लोकों द्वारा योगी की विकसित अवस्था का वर्णन किया गया है। नीचे उद्धृत श्लोंको के अर्थों से इस दृष्टिकोण की परिपुष्टि होती है :

"जो मनुष्य न तो हर्षित होता है और न ही द्वेष करता है, न तो शोक करता है और न ही आकांक्षा करता है, जो शुभ और अशुभ दोनों का ही परित्याग करता है और मेरी भक्ति करता है वह मुझे प्रिय होता है।"[2]

इसके अतिरिक्त, "जो मनुष्य मित्र और शत्रु को, मान और अपमान को, सर्दी और गर्मी को तथा सुख और दु:ख को समान समझता है, अनासक्त होता है तथा स्तुति और निन्दा को समान समझता है और अयाचित जो भी मिल जाता है उसी से सन्तुष्ट रहता है और स्थिर मति से मेरी भक्ति करता है वह मुझे प्रिय होता है।"[3]

इसलिए, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मानव के विकास का अवधारण

---

2. *गीता, अध्याय 12, श्लोक 17*
3. *गीता, अध्याय 12, श्लोक 18-19।*

करने वाले कारकों में से 'आनुवंशिकता' एक आधारभूत कारक है। इसलिए अब हम आनुवंशिकता के जनन सिद्धान्त पर विचार करेंगे तथा यह देखेंगे कि क्या वह हमारी समस्या की व्याख्या आध्यात्मिक सिद्धान्त की अपेक्षा बेहतर ढंग से करता है?

आनुवंशिकता का जनन-सिद्धान्त

इसके पहले कि हम इस बात का परीक्षण करें कि क्या 'आनुवंशिकता का जनन-सिद्धान्त' (The Genetic Theory of Inheritance) विभिन्न व्यक्तियों की अभिवृत्तियों तथा योग्यताओं के बीच पाई जाने वाली भिन्नता के प्रश्न की समुचित व्याख्या करता है या नहीं? आइये, हम इस सिद्धान्त को संक्षेप में दोहरायें। वह सिद्धान्त निम्नानुसार है :

जैसा कि अब सर्व विदित है, आधुनिक जीव-विज्ञान के अनुसार, अन्य बहुकोशिकीय जीवित वस्तुओं की तरह मानव-देह असंख्य सूक्ष्म कोशिकाओं से गठित है तथा प्रत्येक कोशिका एक लघु जीव (Organism) है जिसे कि जीवन की एक मूलभूत इकाई समझा जाता है। नई कोशिकायें पुराने विद्यमान कोशिकाओं के विभाजन से अस्तित्व में आती हैं और इसी प्रकार से नवजात शिशु बढ़कर किशोर बन जाता है और किशोर से बढ़कर वयस्क व्यक्ति हो जाता है।

साधारण देह-कोशिकायें होती हैं जिनमें जनन की योग्यता होती है तथा वे जनन की क्रिया करती हैं। पुरुष के देह में जो जनन-कोशिका होती है वह शुक्राणु (Sperm) कहलाती है और स्त्री के देह में जो जनन-कोशिका होती है वह अण्डाणु (Ovum) कहलाती है। दोनों कोशिकाओं का सामान्य नाम युग्म (Gamete) है। प्रत्येक जनन-कोशिका में अर्थात् युग्मक में धागे की आकृति वाली सत्तायें होती हैं जो कि गुणसूत्र (Chromosomes) कहलाती हैं। मानव प्रजाति की प्रत्येक जनन-कोशिका या युग्मक में गुणसूत्रों के 23 युगल होते हैं। इन गुणसूत्रों पर 'जीन' कहलाने वाली उपादान इकाइयाँ (Material units) स्थित हैं। जीव-विज्ञानियों के मतानुसार इनमें से प्रत्येक जीन बालों तथा आँखों के रंग

जैसी कतिपय विशेषतायें प्रेषित करने के लिए उत्तरदायी हैं जो कि शुक्राणु तथा अण्डाणु के मेल से जन्मे नये व्यक्ति को वंशागत रूप में प्राप्त होती हैं। जीव-विज्ञानी यह कहते हैं कि रंग, आकृति, आकार आदि जैसे गुण या लक्षण जीनों या जनन-कोशिकाओं में उपस्थित नहीं होते, बल्कि एक आयोजना जैसी कोई वस्तु उनमें 'कूटबद्ध' होती है, जो कि उन्हें नये, आने वाले व्यक्ति में उत्पन्न करने में सक्षम होती है। इसे 'आनुवंशिक कूट' (Genetic code) कहा जाता है।

जीव-विज्ञानी आगे यह व्याख्या करते हैं कि जब कोई पुरुष तथा कोई स्त्री जनन के लिए शारीरिक रूप से एक हो जाते हैं तो पुरुष स्त्री में लाखों शुक्राणु निक्षेपित करता है। संयोगवश एक शुक्राणु एक अण्डाणु से मिलता है और शुक्राणु अण्डाणु से मिलकर एक नई कोशिका का निर्माण करता है जो कि संसेचित अण्डा (Zygote) कहलाती है। यथा समय यह व्यक्ति के देह के रूप में विकसित होता है। इस प्रकार, पुरुष की जनन-कोशिका तथा स्त्री की जनन-कोशिका के नाभिकों के मिलन से उत्पन्न 'संसेचित' (Zygote) किसी व्यक्ति के जैव-भौतिक अस्तित्व का आरम्भ-बिन्दु होता है। यह एकल कोशिका सूक्ष्म होती है, किन्तु संभाव्य जैव-भौतिक इकाई होती है। वह इतनी सूक्ष्म होती है कि उसे माइक्रोस्कोप के सहारे ही देखा जा सकता है। उसकी शक्ति अद्भुत होती है।

अब शुक्राणु तथा अण्डाणु के मेल से निर्मित इस संसेचित अंडे में पिता से आये 23 गुणसूत्र तथा माता से आये 23 गुणसूत्र अन्तर्विष्ट होते हैं। जीन (Gene) जो कि माता पिता दोनों की ही आनुवंशिक इकाइयाँ हैं, उनके भीतर स्थित होते हैं।

वस्तुत:, शिशु तथा उसके माता-पिता या पूर्वजों के बीच की एकमात्र कड़ी यह आनुवंशिक सामग्री है। 'प्रिन्सीपल्स ऑफ जेनेटिक्स' (Principles of Genetics) से उद्धृत निम्नलिखित पैराग्राफ इस बात की पुष्टि करते हैं।

''जो एकमात्र भौतिक वस्तुयें कोई व्यक्ति अपने माता-पिता से वंशागत रूप में पाता है वे 'जीन' (Gene) हैं, जो कि अण्डाणु तथा शुक्राणु कोशिकाओं

में रहते हैं जिनसे इस देह की उत्पत्ति होती है।[4]

वस्तुतः, अण्डाणु तथा शुक्राणु के नाभिक जनन पदार्थ के छोटे-छोटे पैकेट, जिनमें इतना कुछ भरा हुआ होता है और जिनमें से इतना कुछ निर्गमित होता है— विद्यमान जीवित पदार्थ के अत्यन्त उल्लेखनीय खण्ड है।

इसलिए, आधुनिक जीव-विज्ञान के अनुसार, माता-पिता के शारीरिक तथा मानसिक लक्षण जनन-आनुवंशिकता की प्रक्रिया के ज़रिए सन्तान को प्रेषित किये जाते हैं।[5] किन्तु क्या यह निष्कर्ष सही है?

अब, यहाँ इस समय समझ लिया जाना चाहिए कि आध्यात्मिक दर्शन मानव-जनन की प्रक्रिया की जीव विज्ञानीय व्याख्या का वहाँ तक खंडन नहीं करती जहाँ तक कि संतान के स्थूल भौतिक देह का सम्बन्ध है, किन्तु उसका मुख्य तर्क यह है कि आनुवंशिकता का सिद्धान्त किन्हीं भी दो व्यक्तियों की प्रवृत्तियों आदि में पाई जाने वाली भिन्नताओं की व्याख्या नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति केवल या मुख्यतः एक देह होता तो जनन-कोशिकाओं के ज़रिए माता-पिता के भौतिक कणों का अन्तरण उसकी उत्पत्ति की कोई सन्तोषजनक व्याख्या दे सकता था। किन्तु, निःसन्देह, देह से अधिक महत्वपूर्ण है — व्यक्ति का 'मन' या 'स्व'। जैसा कि पूर्ववर्ती अध्यायों से स्पष्ट हो जाना चाहिए, मन या 'स्व' कोई वंशागत भौतिक सम्पत्ति नहीं है, किन्तु उसका स्वयं का अपना अस्तित्व होता है। यहाँ हम कुछ तर्क देंगे।

1. साधारण बुद्धि वाले माता-पिता का शिशु विलक्षण प्रतिभाशाली कैसे हो सकता है?

कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। वैज्ञानिक भी 'कार्य और कारण' (Cause and Effect) के नियम को मान्य (valid) करते हैं। अब, इस नियम को दृष्टिगत रखते हुए जीव-विज्ञानी

4. *Edmund W. Sinnot, L.G. dunn, Theodosius Dobzhansky, Principles of Genetics, 5th Edition, McGraw Hill Book Co. Inc. NewYork, 1958, p.7.*
5. *Ibid, p.17.*

साधारण बुद्धि वाले माता-पिता के वंश में विलक्षण प्रतिभा वाले शिशु के जन्म की घटना की व्याख्या आनुवंशिकता के आधार पर कैसे करेंगे? कभी-कभी सामान्य माता-पिता के शिशु 'जड़ बुद्धि वाले' या 'क्षीण बुद्धि वाले' कैसे होते हैं? या 'साधु' स्वभाव के माता-पिता के शिशु 'दुष्ट' क्यों होते हैं? कोई जीव-विज्ञानी स्वस्थ-चित्त माता-पिता के शिशुओं के विक्षिप्त होने या विक्षिप्त माता-पिता के शिशुओं के स्वस्थ-चित्त होने की घटना की व्याख्या कैसे करेगा?

अब, आनुवंशिकता के जैविकीय नियम के अनुसार, "जैसे माता-पिता हों वैसे ही शिशु होंगे"। इसलिए साधारण बुद्धि वाले माता-पिता को साधारण बुद्धि वाले शिशुओं को जन्म देना चाहिए। यह कैसे होता है कि किन्ही साधारण बुद्धि वाले माता-पिता का शिशु विलक्षण प्रतिभावान होता या साधु स्वभाव वाले माता-पिता का शिशु दुष्ट स्वभाव का होता है। हम यहाँ नीचे आनुवंशिकता का सिद्धान्त उद्धृत कर रहे हैं जो कि यह कहता है कि प्रत्येक पीढ़ी के शिशुओं को उनके माता-पिता जैसा होना चाहिए।

"जीव की प्रत्येक नयी पीढ़ी की सन्तान उसके माता-पिता जैसी होती है। दो बिल्ले-बिल्ली के मैथुन से बिल्ले-बिल्ली ही पैदा होते हैं और दो सयामी बिल्ले-बिल्ली के मैथुन से दो सयामी बिल्ले -बिल्ली ही पैदा होते हैं। किसी विशिष्ट वंश-वृक्ष की आनुक्रमिक पीढ़ियों में बहुधा कतिपय सुभिन्न विशेषतायें प्रकट होती हैं। मनुष्य अनेक शताब्दियों से यह जानता है कि जैसे माता-पिता हों वैसे ही शिशु होते हैं और यह कि नये प्रकार के पशु तथा पौधे तब उत्पन्न हो सकते हैं जब असमान रूपों का संकरण किया जाता है। अपने पूर्वजों के सदृश्य होने की व्यक्तियों की प्रवृत्ति 'आनुवंशिकता' कहलाती है।"[6]

स्पष्ट है, कि आनुवंशिकता के सिद्धान्त के आधार पर कोई भी जीव-विज्ञानी वैज्ञानिक दृष्टि से तथा समाधान कारक रूप में इस बात की व्याख्या नहीं कर सकता कि साधारण बुद्धि वाले माता-पिता किसी विलक्षण प्रतिभाशाली

6. *Claude A. Villee: Biology, Forth Edition, W.B., Saunders Co., Philadelphia, 1962, p.452.*

शिशु को जन्म कैसे देते हैं? जीव-विज्ञानी यह कहते हैं कि साधारण बुद्धि वाले माता-पिता के शिशु का प्रतिभाशाली होना *एक संयोग है।* यहाँ हम ज्यूलियन हक्सले (Julian Huxely) को उद्धृत करते हैं :

"अण्डाणु तथा शुक्राणु पीढ़ियों की नियति के लिए हुए होते हैं। अण्डाणु अनन्त संभावनाओं में से संयोजन का एक आकार पाता है, और शुक्राणुओं के लाखों जोड़ों के साथ उसका सामना होता है जिनमें से प्रत्येक का संयोजन भिन्न-भिन्न होता है। उसके बाद नाटक में अण्डाणु तथा शुक्राणु के मिलन का अन्तिम क्षण आता है, जो कि एक विशाल व्यक्ति के आरम्भ को उत्पन्न करता है। यहाँ भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक संयोग की बात है कि सभी लाखों संभव मेलों में से कौन-सा विशिष्ट मेल फलदायक होगा ! किसी मेल से कोई प्रतिभाशाली शिशु पैदा हो सकता था और किसी अन्य मेल से किसी मन्द बुद्धि वाला शिशु पैदा हो सकता था। इसका जो निहितार्थ है उसका अहसास करते हुए हम मानव विचार से अनेक भयों तथा अन्धविश्वासों को दूर कर सकते हैं।[7]

एक अन्य वैज्ञानिक दोब्जान्सकी (Dobzhansky) कहते हैं : किसी शिशु को अपने पिता के जीनों में से आधे जीन तथा अपनी माता के जीनों में से आधे जीन प्राप्त होते हैं, यह एक संयोग की बात है कि किसी विशिष्ट शिशु को कौन-से विशिष्ट मातृक या पैतृक जीन संप्रेषित होते हैं। यह भी संयोग की बात है कि कौन-से उत्परिवर्तन (Mutations) होते हैं और कब होते हैं और कहाँ होते हैं।[8]

स्पष्टत: प्रतिभाशाली शिशु या मन्दमति शिशु या साधारण शिशु का जन्म एक संयोग है : यह एक प्रकार से ऐसा ही कहना है कि 'मुझे सच्चाई या वास्तविकता मालूम नहीं है'। दूसरी ओर वैज्ञानिक कहते हैं कि इसका नियन्त्रण 'कारण और कार्य' के नियम अनुसार होता है। प्रकृति पर आधारित जन्म के साथ वे यह 'संयोग वश जन्म' का भी बहाना देते हैं।

---

7. *Julian Huxley: What dare I think (This is quoted in Re-incarnation: An East and West Anthology) compiled and edited by Joseph Head and S.L. Cranston. The Julian Press Inc. New York 1961, p.292-93.*
8. *The Biology of Ultimate concern, by Theodosius Dobzhansky, The American Library, Inc. New York 1967, p.126.*

अब, हम 'कारण और कार्य' के नियम को त्याग नहीं देते। दूसरी ओर वे इस नियम को यहाँ भी लागू करते हैं। 'कारण और कार्य' का नियम मानवीय स्तर पर एक नैतिक नियम के रूप में लागू होता है जो कि 'कर्म का सिद्धान्त' कहलाता है। 'पुनर्जन्म का सिद्धान्त', जो कि किसी व्यक्ति के पुनर्जन्म का विनियमन करता है, कर्म के सिद्धान्त पर आधारित है। आध्यात्मिक-विज्ञान यह कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ अपने मन को लाता है तथा आनुवंशिकता का सिद्धान्त केवल किसी व्यक्ति के जैव-भौतिक गठन पर ही लागू होता है।

आध्यात्मिक-विज्ञान यह बताता है कि किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति की असाधारण योग्यतायें युग्मक (Gemetes) के सांयोगिक मिलन के कारण और आनुवंशिकता के कारण नहीं होती, बल्कि 'स्व' के पूर्वतर जन्मों में अर्जित तथा संवर्धित की गई होती हैं। आध्यात्मिक विज्ञान यह कहता है कि 'स्व' देह से भिन्न है और जब देह मर जाता है तो 'स्व' नहीं मरता। आध्यात्मिक- विज्ञान मन या स्व (आत्मा) के पृथक् अस्तित्व में विश्वास करने के कारणों को स्पष्ट करता है।

2. मन या आत्मा एक पृथक् सत्ता है और वह माता-पिता से प्राप्त नहीं होती

आध्यात्मिक-विज्ञान यह कहता है कि 'स्व' या मन, जो कि अभिवृत्तियों रुचियों तथा मानसिक योग्यताओं का आधान या वाहन है, जैव-भौतिक सत्ता से भिन्न है और वह गैमीटों (gametes) या अण्डाणु और शुक्राणु के मिलन के पहले भी अस्तित्व में रहा है, और इसलिए वह माता-पिता से वंशागत रूप में प्राप्त नहीं होता। नीचे आध्यात्मिक विज्ञान के कुछ तर्क दिये जा रहे हैं जो कि वर्तमान सन्दर्भ में सुसंगत हैं :

(क) मन या आत्मा की एक सुभिन्न विशेषता यह है कि वह 'आत्म-सचेतन' होती है तथा वह अपनी चेतना को संप्रेषित या अभिव्यक्त कर सकती है। चेतना का गुण देह या उसके अंगों का आन्तरिक गुण नहीं है। आत्म-

अनभिज्ञ मन या आत्मा ही देह के सभी विभिन्न भागों को अपनी चेतना संप्रेषित या विकसित करती है। देह के विभिन्न अंग मन या आत्मा को केवल सन्देश भेजते हैं; किन्तु वे चेतना को विकसित नहीं करते, वे मन को अभिज्ञता संप्रेषित नहीं करते। इस तथ्य का एक सबूत यह है कि जब मन जैव-भौतिक देह से व्यवर्तित हो जाता है तो देह कोई भी सचेतन या स्वैच्छिक क्रिया नहीं कर सकता; उसके पास इच्छा नहीं हो सकती या संकल्प, प्रयोजन या लक्ष्य नहीं हो सकता। दूसरी ओर जब देह क्रियाशील न हो बल्कि अक्रिय पड़ा हुआ हो तब भी मन सोच सकता है, अनुभव कर सकता है, कल्पना कर सकता है या देख सकता है।

(ख) मन देह के किसी भी भाग पर पड़ने वाले किसी प्रभाव के प्रति सचेतन हो सकता है, किन्तु देह का एक भी भाग यह नहीं जानता कि दूसरा भाग क्या कर रहा है या कि उस भाग को कैसा अनुभव हो रहा है या किसी तीसरे भाग पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है, क्योंकि उनमें चेतना का अन्तर्निहित गुण नहीं है।

(ग) जैव-भौतिक इकाई हमेशा परिवर्तित होती रहती है। आत्म-अभिज्ञ मन (self-aware mind) या आत्मा ही इसे संज्ञात (cognise) करती है। वह एक अपरिवर्ती (unvarying) सिद्धान्त है जो कि सभी परिवर्तनों का साक्षी होता है।

(घ) मन या आत्मा ही देह के विभिन्न भागों द्वारा उसे भेजे गये विभिन्न सन्देशों का एकीकरण करती है तथा उन्हें एक अर्थ देने के लिए और क्रिया के लिए एक प्रादर्श निर्मित करने के लिए उन्हें एक सुसंगत साकल्य का रूप देती है।

(ङ) आत्म-अभिज्ञ मन या आत्मा ही सम्पूर्ण जैव-भौतिक सत्ता को एक इकाई के रूप में कोई विशिष्ट साध्य या प्रयोजन प्राप्त करने के लिए निर्देश देती है। इस बारे में एडमन्ड सिन्नोट (Edmond Sinnout) कहते हैं— "कौन-सी चीज़ किसी पशु के पृथक् बिन्दुओं तथा प्रक्रियाओं

को एक साथ लाती है और उन्हें एक जीव (Organism) के रूप में बुनती है और कौन-सी चीज़ इस जीव को किसी विकासात्मक लक्ष्य की ओर खींचती है, ये वे समस्यायें हैं जहाँ जीव-विज्ञान ने बहुत कम प्रगति की है।[9]

किन्तु आध्यात्मिक विज्ञान कहता है कि आत्म-अभिज्ञ सत्ता देह से भिन्न है। इसलिये कि —

(च) मन का रासायनिक विश्लेषण संभव नहीं है।

(छ) जिस प्रकार पदार्थ को खंडित तथा विघटित किया जा सकता है उसी प्रकार मन को खंडित तथा विघटित नहीं किया जा सकता।

(ज) मन तत्काल कहीं भी जा सकता है, किन्तु देह के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते।

(झ) मन स्वप्न की अवस्था में भी क्रियाशील होता है, जबकि देह विश्राम कर रहा होता है।

(त) देह के किसी भाग के काट दिये जाने के परिणामस्वरूप मन खंडित नहीं हो जाता।

इसी प्रकार, यह दर्शाने के लिए अनेक तर्क दिये जा सकते हैं कि मन देह से भिन्न एक सत्ता है। इनमें से कुछ तर्क पूर्ववर्ती अध्यायों में दिए जा चुके हैं।

इसलिए यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि युग्मक के ज़रिए आनुवंशिक संप्रेषण संभव नहीं है, क्योंकि अधि-भौतिक मन दिया नहीं जा सकता और न ही माता-पिता का मन खंडनीय है। शिशु का मन उसके पिता और माता के मन का एक खण्ड नहीं है और न ही वह माता या पिता के देह से उद्भूत होता है, क्योंकि स्पष्टत: वह दोनों से भिन्न है। यह सोचना असंगत है कि शिशु का 'स्व', पिता के 'स्व' या माता के 'स्व' से जो कि अविभाज्य है तथा अनुत्परिवर्तनीय है, उद्भूत होता है। शिशु ने माता-पिता से जो कुछ प्राप्त किया हो वे भौतिक देह

9. *Edmund W. Sinnot: The Bridge of Life from matter to spirit, Simon and Schuster, New York, 1966, p.128.*

के संघटक या मूलांग होते हैं। वे शिशु के माता-पिता की केवल भौतिक विशेषताओं के वाहक होते हैं, क्योंकि आनुवंशिकता के सिद्धान्त के अनुसार कोई जीवित वस्तु उसी प्रजाति की किसी अन्य जीवित वस्तु से उद्भुत होती है, वह निर्जीव पदार्थ से उद्भुत नहीं होती। यह सिद्धान्त जीवित वस्तु को अजीवित पदार्थ से विभेदित करता है। यहाँ हम जीव-विज्ञानियों द्वारा दी गई आनुवंशिकता की परिभाषा उद्धृत कर रहे हैं।

"आनुवंशिकता आत्म-प्रजनन है, समस्त जीवन का सामान्य गुणधर्म है, और वह गुणधर्म है जो कि जीवित को अजीवित पदार्थ से विभेदित करता है।"

इसलिए यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि मानसिक [10] लक्षण जो कि एक व्यक्ति और किसी अन्य व्यक्ति के बीच में आधारभूत अन्तर के कारण होते हैं, माता-पिता से प्राप्त नहीं होते। इसी कारण से शिशुओं के मानसिक लक्षण उनके माता-पिता के लक्षणों से भिन्न होते हैं। यहाँ तक कि जुड़वा शिशु भी, जहाँ तक उनके मानसिक लक्षणों का सम्बन्ध है, एक-दूसरे से और माता-पिता से भिन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि पुनर्जन्म के अनुसार यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की भौतिक विशेषतायें आनुवंशिक होती है, तथापि वह अपना स्वयं का मन अपने साथ लाता है। यहाँ तक कि भौतिक विशेषतायें भी पूर्णत: माता-पिता से व्युत्पन्न नहीं होतीं। वस्तुत: उनके मूल उनके पूर्व जन्मों में खोजे जा सकते हैं। लाखों शुक्राणुओं में से कौन-सा शुक्राणु अण्डाणु को संसेचित करेगा— यह बात इस कारक पर निर्भर होती है। कौन-से जीन अन्तत: एकत्रित होकर निर्माण कारकों के रूप में कार्य करेंगे — यह बात व्यक्ति के पूर्व कर्मों पर निर्भर होती है। इसलिए यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि मानव-प्राणी का जन्म शुक्राणुओं तथा अण्डाणुओं के रूप में भौतिक संघटकों के सांयोगिक मिलन से होता है। यहाँ तक कि जिन भौतिक लक्षणों को वह अपने माता-पिता से पाता है, वे उन असंख्य संभावनाओं में से होते हैं जो कि उसके कर्म के परिणामस्वरूप

10. यहाँ शब्द 'मानसिक' का उपयोग प्रमस्तिष्कीय के अर्थ में नहीं किया गया है बल्कि मस्तिष्क से भिन्न 'मन' से सम्बन्धित के अर्थ में किया गया है।

उसे प्राप्त होती हैं। इस अन्तर्विवेकशील सत्ता अर्थात् आत्मा को लाये बिना व्यक्तिगत भिन्नता की व्याख्या नहीं की जा सकती। नि:सन्देह, भौतिक विकास की एक आयोजना भ्रूण में अन्तर्निहित होती है, किन्तु इस विशिष्ट मामले में कौन-सी आयोजना निष्पादित की जाती है यह बात उस व्यक्ति (आत्मा) के पूर्व कर्म पर निर्भर करती होती है जिसके लिए देह अभिप्रेत होता है। उसका अस्तित्व देह के अस्तित्व का पूर्ववर्ती होता है। अन्तर्विवेकशील सत्ता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति स्वत: यह जानता है कि वह है अर्थात् वह अपने अस्तित्व के प्रति अभिज्ञ होता है। उसका अस्तित्व स्वत: स्पष्ट है, क्योंकि यही सत्ता देह के अस्तित्व को भी जानती है। परन्तु, उसका अस्तित्व इन्द्रियों की सीमा के परे होता है इसलिए कुछ लोग उसमें विश्वास नहीं करते। किन्तु यह वस्तुत: व्यक्तियों के मानसिक लक्षणों में पाई जाने वाली विभिन्नता का वास्तविक कारण है तथा इस बात का भी वास्तविक कारण है कि क्यों कोई विशिष्ट शुक्राणु किसी अण्डाणु से मिलकर एक विशिष्ट प्रकार के देह का निर्माण करता है। इसलिए यह कहना ग़लत है कि ऐसा संयोगवश होता है।

खण्ड-तीन

तुम एक आत्मा हो जो कि शान्ति तथा आनन्द का अनुभव कर सकती है

''आत्मा ही शान्ति तथा आनन्द का अनुभव करती है और आत्मा के ही पास क्रोध और चिन्ता के संवेग होते हैं। मस्तिष्क तथा देह संवेगों के बाह्यकरण या जागरण के तन्त्र मात्र हैं। तुम एक आत्मा हो, जो कि अपने संवेगों के उदात्तीकरण (sublimation) तथा पुनर्निदेशन द्वारा ऊंची उठ सकती है।''

— शिव भगवानुवाच

'संवेग' (Emotions) हमारी चेतना के महत्वपूर्ण पहलू हैं और इसलिए इस बात का अन्वेषण करना उपयोगी होगा कि क्या कोई आत्मा है जो कि संवेगों का अनुभव करती है तथा उनकी अभिव्यक्ति करती है और यह भी कि मस्तिष्क का कौन-सा भाग संवेगों के जागरण तथा उनकी अभिव्यक्ति में अन्तर्ग्रस्त होता है, क्योंकि इस अन्वेषण से हमें स्वयं चेतना या मन की अवस्थिति का संकेत मिलेगा। संवेग किसी मनुष्य के व्यक्तित्व तथा व्यवहार का प्रधान भाग है और मनुष्य के व्यक्तित्व तथा व्यवहार का स्त्रोत मन के संज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा प्रभावी पार्श्वों में है, और इसलिए यदि हम संवेगात्मक बाह्यकरण में अन्तर्ग्रस्त मस्तिष्क के भागों का अध्ययन करें तो हमें मन या आत्मा के आसन को खोजने में सहायता मिलेगी।

इस सम्बन्ध में अब वह सर्वविदित है, दमनकारी पट्टियों (Supressor Bands) तथा एक्साइटोमोटर (Excitomotor) क्षेत्रों के मनोविज्ञान को समझने के लिए इलेक्ट्रो-कॉर्टिको ग्राम (ECG) की सहायता से जो प्रयोग किये गये हैं उनसे यह प्रकट होता है कि प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था चेतक के साथ एकीकृत है तथा यह कि वे एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। अब यह भी सर्वविदित है कि क्षेत्रों के कारण, चाहे वे चेतक में या अधश्चेतक के कतिपय भागों में या मस्तिष्क-वृन्त

के मध्य रेखा क्षेत्र के अभिपृष्ठ भाग में स्थित हों, संवेगात्मक अभिव्यक्ति का लोप या संवेगात्मक संस्तम्भ (Emotional palsy) हो जाता है, जिससे यह प्रकट होता है कि ये तीनों संवेगात्मक बाह्यकरण में अन्तर्ग्रस्त होते हैं। किन्तु हमारा वर्तमान प्रयास संवेगों की अभिव्यक्ति के नाटक के इन सभी अभिनेताओं में से प्रधान अभिनेता को ढूँढ़ने के लिए उद्दिष्ट है। हम इस बात का अन्वेषण करना चाहते हैं कि इन क्षेत्रों में से कौन-सा क्षेत्र संवेगात्मक जागरण का मुख्य क्षेत्र तथा संवेगों के बाह्यकरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण तन्त्र है और क्या कोई 'आत्मा' है जो उसमें भूमिका निभाती है।

इसे समझने के लिए हमें संवेगों के भौतिक पक्ष का अध्ययन करना होगा। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि संवेगों के भौतिक पक्ष में आन्तरांग तथा कंकाल पेशियों में होने वाले परिवर्तन अन्तर्विष्ट हैं, उनमें स्वायत्त तथा कायिक तन्त्रिका तन्त्रों की समन्वित क्रिया अन्तर्ग्रस्त होती है। अनुकंपी तथा परानुकंपी तन्त्रिका तन्त्र उनके बाह्यकरण से उद्दीप्त होते हैं। जैसा कि इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि अधश्चेतक के नाभिक ही स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के दोनों भागों — अनुकंपी तथा परानुकंपी को — नियन्त्रित करते हैं और निम्न प्रेरक न्यूरानों को भी प्रभावित करते हैं जो कि कंकाल पेशियों की आपूर्ति करते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि **अधश्चेतक संवेगों के बाह्यकरण को नियन्त्रित करने वाले अपवाही पार्श्व तन्त्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र है।**

देह-क्रियात्मक परिवर्तन इस बात को सिद्ध करते हैं

यदि आप देह क्रियात्मक परिवर्तनों के सम्बन्ध में कतिपय संवेगों की अभिव्यक्ति पर विचार करें तो अधश्चेतक का महत्व अधिक स्पष्ट हो जायेगा। उदाहरणार्थ, भय के बाह्यकरण को लीजिये। भय में हृदय तेज़ी से धड़कता है, त्वचा पीली पड़ जाती है क्योंकि वसोमोटर केन्द्र (Vasomotor centre) ऐसी रीति से प्रभावित होता है कि त्वचा की छोटी धमनियाँ (Arteries) आकुंचित हो जाती हैं। त्वचा के रोम खड़े हो जाते हैं तथा कुछ पेशियाँ कांपने लगती हैं। श्वसन तेज़ हो जाता है। लार ग्रंथियाँ अच्छी तरह से कार्य नहीं करती और परिणामस्वरूप

मुँह सूख जाता है। स्वर भारी या अस्पष्ट हो जाता है। भीषण भय की दशा में नेत्र-गोलक आगे को निकल आते हैं और आतंक के विषय पर केन्द्रित हो जाते हैं। आँख के तारे बहुत फैल जाते हैं। स्पष्ट है कि इनमें से अधिकांश मनोवैज्ञानिक परिवर्तन अनुकंपी तन्त्रिका तन्त्र के उद्दीपन के कारण घटित होते हैं तथा अधश्चेतक के नाभिक इनका नियन्त्रण करते हैं, जैसा कि सुसंगत डायग्रामों से प्रकट होता है।[1]

इसी प्रकार, परानुकंपी अति-सक्रियता अनेक अ़न्य संवेगों पर प्रभावी होती है, उदाहरणार्थ उदर का वैगल (vagal) तन्त्रिकोत्तेजन दुश्चिन्ता तथा क्रोध की दशाओं में उद्दीप्त होता है, जिसके कारण अमाशय रस का स्राव आदि अधिक हो जाता है।

आगे दुःख का मामला लीजिये। दुःख का मुख्य लक्षण है — स्वैच्छिक गति पर उसका प्रभाव। मनुष्य में व्याकुलता की भावना पैदा हो जाती है। मनुष्य की गति-विधियाँ धीमी होती हैं। मनुष्य का स्वर कमज़ोर होता है और उसमें अनुनाद नहीं होता। वह निश्चल बैठा रहता है, अपने आप में खोया रहता है तथा कुछ भी नहीं बोलता, या वह रो पड़ता है। पेशियों की स्फूर्ति कम हो जाती है। उसकी गर्दन झुक जाती है तथा उसका सिर लटका जाता है। सम्पूर्ण ऐच्छिक प्रेरक साधित्र की यह कमज़ोरी दुःख के मनोविज्ञान का केवल एक पक्ष है। दूसरा पक्ष अनैच्छिक पेशियों से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, बाहिका पेशियाँ (Vascular muscles) दृढ़तापूर्वक आकुंचित हो जाती है जिससे कि देह के ऊतक तथा अंगों में रक्त की कमी हो जाती है और वे पीले पड़ जाते हैं। इस मामले में मुँह सूख जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संवेगात्मक दशाओं में स्वायत्त तन्त्र-अनुकंपी और साथ ही परानुकंपी के समुचित भाग कायिक तन्त्रिका तन्त्र के साथ समन्वय में संलग्न हो जाते हैं और लाक्षणिक आन्तरांग प्रतिक्रियायें उत्पन्न करते हैं और जैसा कि हम पूर्ववर्ती अध्याय में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, अनुकंपी तथा

1. *See figures 10 and 11*

परानुकंपी क्रियाओं का अधश्चेतक में उनका आन्तरिक तन्त्र होता है। पिछले पचास वर्षों के दौरान किये गये अनेक प्रयोगों से जो कि पहले कारप्लस तथा केरिडी (Karplus and Keridi) द्वारा आरंभ किये गये थे, यह प्रकट हुआ है कि अधश्चेतक में स्थित बिन्दुओं में से किसी भी बिन्दु के उद्दीपन द्वारा अनुकंपी प्रतिक्रियायें प्राप्त की जा सकती हैं। पार्श्विक अधश्चेतक क्षेत्र — वह क्षेत्र प्रतीत होता है जहाँ से अनुकंपी प्रस्राव बहुत सहजता से अभिप्राप्त किये जा सकते हैं।[2]

तन्त्रिका विज्ञानियों ने अधश्चेतक का तथा मस्तिष्क-वृन्त के निकटवर्ती क्षेत्रों का समन्वेषण छोटे-छोटे उद्दीपक इलेक्ट्रोडों के ज़रिए, जिन्हें मस्तिष्क के किसी भी वाञ्छित भाग में प्रविष्ट किया जा सकता है, विस्तारपूर्वक किया है। इस प्रकार के अन्वेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि बहुत स्थानीयकृत अधश्चेतकीय उद्दीपन लगभग वह प्रत्येक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जिसमें परिधिस्थ तन्तु मध्यस्थता करते हें। निष्कर्षात्मक रूप से यह भी पाया गया है कि अधश्चेतक में परानुकंपी तन्त्र का एक निश्चित प्रतिनिधित्व है।

इसके अतिरिक्त, अब यह तथ्य सर्वविदित हो चुका है कि संवेगात्मक अवस्थायें वाहिनी विहीन ग्रंथियों को भी प्रभावित करती हैं। वे पश्च पियूष ग्रंथि अधिवृक्कीय तथा मूत्रलतावरोधी हार्मोनों के स्राव को प्रभावित करते हैं तथा अग्र पियूष ग्रंथि के हार्मोनों के प्रस्राव को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार से संवेगात्मक अवस्थायें गलग्रंथि (Thyroid) तथा अधिवृक्क प्रान्तस्था की क्रिया को तथा अण्डाशय (Ovary) तथा अण्डग्रथि (Testis) के स्राव को प्रभावित करते हैं। किन्तु अब यह तथ्य सुस्थापित हो चुका है कि पियूष ग्रंथि का पश्च

2. *The Sympathetic discharges cannot be obtained by excitation of the fibres of the medial forebrain bundle origination rostral to the Hypothalamus, for, stimulation of the preoptic area, through which most of these fibres pass, does not produce sympathetic reactions. Ranson and Magoun, after many experiments, point out that, since Thalamus, the Fornix and the striatal complex, do not yield the, the sympathetic effect of hypothalamic stimulation are not due to the stimulation of the pathways which descend through or are close to the Hypothalamus.*

भाग — न्यूरोहाइफोफाईसिस (Neurohypophysis) — अधश्चेतक के नियन्त्रण में होता है। अधश्चेतकीय मूल के लगभग 1,00,000 तन्तु हापोफिसीय वृन्त (hypophysial stalk) में प्रवेश करते हैं। नियन्त्रण तन्त्र अध्यक्षी केन्द्रकों (Supraoptic nuclei) तथा परा-निलय केन्द्रकों (Paraventricular nuclei) से भी तथा पीयूष-वृन्त के निकट के क्षेत्रों से उद्भूत होता है और हाइपोथेल्मिको-हाइपोफिसियल में समाप्त हो जाता है। वस्तुत: यह संरचना तृतीय निलय के तल की एक भ्रूण विज्ञानीय व्युत्पत्ति है और उनके सम्बन्ध को घनिष्ठत: ग्रथित मानने के देहक्रिया-विज्ञानीय तथा आकृति-विज्ञानीय कारण (Physiological and morphological reasons) हैं। इसलिए पियूष ग्रंथी को प्रभावित करने में अधश्चेतक का जो महत्व है वह स्पष्ट हो जाता है तथा संवेग के जागरण तथा उसके बाह्य करण में अधश्चेतक का जो समग्र महत्व है वह भी स्पष्ट हो जाता है।

प्रायोगिक साक्ष्य इस तथ्य का समर्थन करता है कि अधश्चेतक संवेग-जागरण का आसन है

इसके अतिरिक्त, कुत्तों और बिल्लियों जैसे जानवरों की प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था को निकालकर जो अध्ययन किये गये थे उनसे निष्कर्षात्मक रूप से यह प्रकट होता है कि क्रोध प्रकट करने की क्षमता केन्द्रीय तन्त्रों पर निर्भर होती है जो कि विशेषत: अधश्चेतक के क्षेत्र में, प्रान्तस्था के नीचे स्थित हैं। बार्ड (Bard), मैसरमैन (Masserman), माउन्टीस्टल्स (Mounteastles), रैनसन (Ranson) तथा अनेक अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि अधश्चेतक ओजपूर्ण (vigorous) अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है। इन प्रयोगों में संवेदनाहरण न की गई बिल्लियों के अधश्चेतक को इलेक्ट्रोडों के ज़रिए उद्दीप्त किया गया था, जिन्हे ईथर (Ether) के अन्तर्गत रखा गया था। अधश्चेतक के उद्दीपन के और विशेषत: पार्श्विक या पुच्छीय अधश्चेतकीय क्षेत्र के उद्दीपन से एक ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई जो कि बिल्कुल क्रोध के समान थी। बिल्लियों ने ऐसा व्यवहार किया जैसा कि उन्हें किसी भौंकने वाले कुत्ते ने डराया हो। अनुक्रिया चेतक, आन्तरिक संपुट (internalcapsule), सेप्टर्न (septum) या कीपाकार वृन्त

(Infundibular stalk) से अभिप्राप्त नहीं की जा सकती थी। यदि कुछ अनुसन्धानों के चेतक को उद्दीप्त कर 'झूठे क्रोध' की अनुक्रियायें पाई भी गई तो भी अगला अन्वेषण करने पर यह पाया गया कि ऐसा इसलिए नहीं हुआ क्योंकि चेतक में ऐसा कोई तन्त्र है बल्कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उपयोग में लाई गई विद्युत धारायें इतनी शक्ति की थी कि वे अधश्चेतक तक फैल गईं।

हेस (Hess), ब्रुगर (Brugger), केली (Kelley), बीटन (Beaton) तथा अन्य लोगों द्वारा किये गये प्रयोग यह दर्शाते हैं कि यदि एक या अधिक विशिष्ट मस्तिष्क-वृन्त तन्त्रों को इस प्रकार से सक्रिय किया जाता है कि कायिक तथा स्वायत्त क्रिया-कलाप मिश्रित हो जाते हैं तब हम यह पाते हैं कि आक्रामक या भयपूर्ण या प्रतिरक्षात्मक व्यवहार का एक प्रतिरूप उत्पन्न होता है । किन्तु देहक्रिया-विज्ञान का प्रत्येक छात्र यह जानता है कि अधश्चेतक से मस्तिष्क वृन्त तक भी अपवाही मार्ग हैं। अधश्चेतक में ऐसे केन्द्रक हैं जो कि मस्तिष्क-

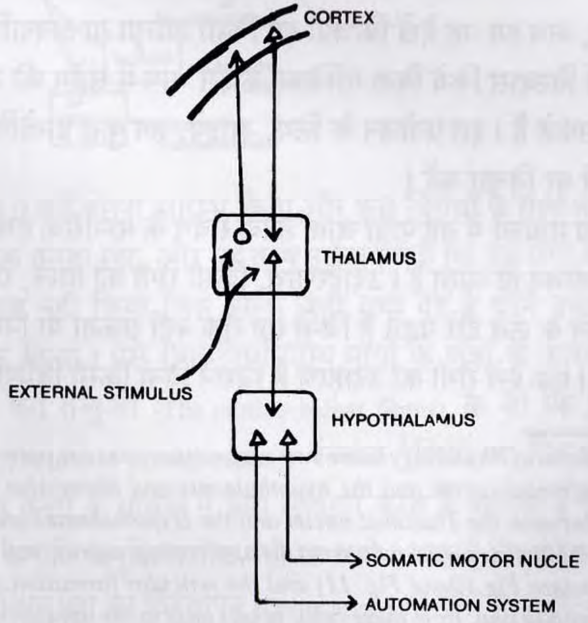

आकृति 10

वृन्त से जुड़े हुए हैं और जालाकार सक्रियकारक तन्त्र (RAS) से भी जुड़े हुए हैं। इसलिए निष्कर्ष यह है कि संवेगात्मक अभिव्यक्ति का केन्द्रीय तन्त्र या स्थान अधश्चेतक है, जिसका मस्तिष्क के सभी भागों से सम्बन्ध है।

पूर्वगामी पृष्ठों में हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि यद्यपि अग्र-मस्तिष्क, चेतक, अधश्चेतक तथा मस्तिष्क-वृन्त संवेद की अभिव्यक्ति में अन्तर्ग्रस्त होते हैं, तथापि अधश्चेतक की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।[3] यदि इसके बावजूद कोई व्यक्ति यह कहता है कि ये सभी भाग समान महत्व के हैं तो हम यह कहेंगे : ''ठीक है, आइये, कम-से-कम हम इस बात पर सहमत हो जायें कि यह एक तन्त्र है तथा यह कि यदि अधश्चेतक की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है तो भी उसकी एक विशेष भूमिका है।

भावनाओं से शारीरिक भागों का वियोजन (dissociation) भी आत्मा की उपस्थिति दर्शाता है

आइये, अब हम यह देखें कि क्या हम किसी आत्मा या अपदार्थिक मन के अस्तित्व में विश्वास किये बिना मस्तिष्क के इस भाग में संवेग की अभिव्यक्ति को समझ सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए, आइये, हम कुछ प्रायोगिक मामलों के परिणामों पर विचार करें।

कतिपय मामलों में यह पाया जाता है कि संवेग के मानसिक तथा शारीरिक पक्ष का वियोजन हो जाता है। उदाहरणार्थ, किसी रोगी को हंसने, रोने, चीखने या बौखलाने के लंबे दौरे पड़ते हैं जिन्हें वह रोक नहीं सकता या नियन्त्रित नहीं कर सकता। एक ऐसे रोगी का उदाहरण है जिसने बिना किसी विशिष्ट कारण के

3. *As students of Physiology know, two-way connections are present between the prefrontal cortex and the hypothalamus and fibres also pass both-ways between the Thalamic nuclei and the Hypothalamus and, from the Hypo-thalamus new relays pass to the appropriate supraspinal autonomic centres (see Fig.10and Fig. 11) and the reticular formation of the pons and medulla and, from these cells, relays pass to the appropriate cranial and spinal lower motor neurons. So, one can easily notice the importance and central position of the Hypothalamus.*

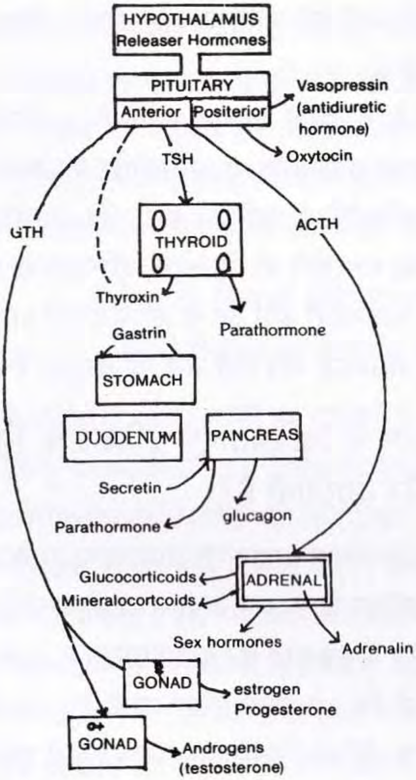

आकृति 11

सुबह के 10 बजे हंसना आरम्भ किया और कुछ विरामों के साथ वह आधी रात के बाद तक हंसता रहा, और यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उस रोगी ने उस भावना का अनुभव नहीं किया जिसे उसके चेहरे तथा देह ने इतने नाटकीय ढंग से अभिव्यक्त किया। ऐसे रोगी पिरामिडीय मार्गों के क्षेत्रों के कारण, विशेषत: प्रान्तस्था कंद तन्तुओं (The cortico-bulbar fibres) के जो कि प्रेरक कपाल केन्द्रकों (The motor cranial nuclei), कंकाल पेशियों का नियन्त्रण करते हैं, द्विपार्श्वीय तन्तों के मामले में ऐसा व्यवहार करते हैं क्योंकि वे तन्तु ऐच्छिक नियन्त्रण के प्रति अनुक्रियाशील नहीं रह जाते। स्पष्ट है कि संवेग के शारीरिक तथा मानसिक पक्ष का विस्थापन (Dislocation) हो गया था। बल्कि इस मामले में मानसिक पक्ष अनुपस्थित था। ऐसे व्यवहार को ऐसे संवेग की अभिव्यक्ति

कहा जाता है जिसकी अनुभूति नहीं की जाती अर्थात् उसको **मिथ्या संवेग** (pseudo-emotion) कहा जाता है।

अब हम इस मिथ्या संवेग के सन्दर्भ में यह पूछ सकते हैं— "क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि देह केवल बाह्यकरण या अभिव्यक्ति का तन्त्र है, जब कि एक अन्य सत्ता — एक अधिभौतिक व्यक्तित्व संवेग की अनुभूति करता है?" यदि वे मस्तिष्क के कतिपय भाग होते जो कि क्रोध, दुश्चिन्ता या शोक के संवेग का अनुभव करते तो उन भावनाओं और देह के ज़रिए उनकी अभिव्यक्ति को एक साथ होना चाहिए, वे असम्बद्ध नहीं होते जैसे कि वस्तुत: हैं।

1. संवेगात्मक बाह्यकरण के विविधतापूर्ण प्रतिरूप के लिए कौन उत्तरदायी है?

पुन:, हम यह पाते हैं कि संवेगात्मक बाह्यकरण सामान्यत: उसके प्रतिरूप में इतना विविध होता है तथा उद्दीपन के स्वरूप के साथ इतनी अच्छी तरह से समायोजित होता है कि वह स्वयं में इस बात का पर्याप्त प्रमाण है, एक अधि-भौतिक या मानसिक सत्ता है जो कि उसे समायोजित करती है। उदाहरणार्थ, एक ऐसी परिस्थिति का उदाहरण लीजिये जिसमें एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को गाली दे रहा है। गाली खाने वाले एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया यह होती है कि वह भी गुस्से के संवेग में गालियों में जवाब देता है। उसी परिस्थिति में किसी दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया यह होती है कि उसे गाली देने वाले व्यक्ति की प्रवृत्ति पर आश्चर्य होता है और वह गन्दी भाषा में उत्तर नहीं देता बल्कि चुप रहता है किन्तु उसे बुरा लगता है। उसी परिस्थिति में तीसरा व्यक्ति चुप नहीं रहता बल्कि बहुत जोरदार जवाब देता है किन्तु सभ्यतापूर्वक तथा सुसंस्कृत ढंग से और व्यंग-विनोद के साथ। यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति एक ही उद्दीपन के प्रति विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न ढंग से प्रतिक्रिया करता है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति हमेशा दूसरे लोगों को लड़ने के लिए ललकारता है। किन्तु जब वह यह देखता है कि उसका मुकाबला अधिक शक्तिशाली व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से है तो वह उसे या उन्हें नहीं ललकारता। इसलिए, जबकि पूर्वोल्लिखित वैज्ञानिक

तथा चिकित्सा विज्ञानीय साक्ष्य से चेतक, अधश्चेतक तथा मस्तिष्क-वृन्त, विशेषत: अधश्चेतक के क्षेत्र की भूमिका स्पष्ट हो गई है, तथापि संवेगों के लिये देहक्रिया-विज्ञान से हमें ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता जिससे इस बारे में हमारा युक्तियुक्त समाधान हो सके कि ''कौन उद्दीपनों की अनुक्रिया या उनके संवेगात्मक बाह्यकरण को समायोजित करता है?''

2. आत्मा के सिवाय संवेगात्मक बाह्यकरण को कौन रोकता या अवरुद्ध करता है?

इसके अतिरिक्त, कभी-कभी हम यह पाते हैं कि परिस्थिति अत्यन्त उत्तेजक होती है किन्तु जो व्यक्ति उस परिस्थिति का सामना कर रहा होता है वह व्यक्ति अपनी संवेगात्मक अभिव्यक्ति को इस प्रकार से समायोजित करता है कि परिस्थिति बदतर से बदतरीन नहीं हो पाती। इसके सन्दर्भ में कोई भौतिकवादी व्यक्ति यह कह सकता है कि उसे प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था ही रोकती है, नियन्त्रित करती है तथा समायोजित करती है। किन्तु आगे विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधि-भौतिक मन या इन्द्रियातीत 'आत्मा' ही समायोजन का कार्य करता है और संवेगात्मक अभिव्यक्ति के प्रतिरूप में अधिक विविधता लाता है।

जैसा कि हमने पहले कहा है, यह तथ्य निर्विवाद है कि चिकित्सा-विज्ञानी यह निष्कर्ष दर्शाते हैं कि संवेगात्मक अभिव्यक्ति एक ऐच्छिक कार्य है, जिसमें उप-प्रान्तस्थीय स्तरों द्वारा मध्यस्थता की जा सकती है, किन्तु आगे यह तर्क भी दिया जाता है कि सामान्यत: उसे प्रान्तस्थीय प्रभावों द्वारा उपान्तरित और अवरोधित किया जाता है। हम इसे मान लेते हैं। **किन्तु प्रश्न यह है कि जब चेतक तथा अधश्चेतक क्रोध-प्रतिक्रिया या दुश्चिन्ता या शोक उद्दीपन से उत्तेजित होता है तो संवेगात्मक अभिव्यक्ति को दबाने, कम करने या अवरोधित करने के लिए प्रान्तस्थीय तन्त्र का उपयोग करता है?** ऐसी कोई सत्ता होनी चाहिए जो कि किसी विशिष्ट परिस्थितियों में संवेगात्मक विस्फोटों के परिणामों को समझती है और फिर संवेगात्मक अभिव्यक्ति को रोकने या दबाने या अवरोधित करने की

इच्छा करती है और निर्णय करती है और ऐसी जिस सत्ता के पास परिणामों के संज्ञान तथा पूर्व संज्ञान की शक्ति होती है और जिसके पास संकल्प भी होता है या इच्छा भी होती है और भाव भी होता है (क्योंकि वह स्वयं क्रोध से उत्तेजित या शोक की दुश्चिन्ता के संवेग से आवेशित प्रतीत होती है) जिसके कारण वह संवेग की बाह्य अभिव्यक्ति को अवरोधित करती है, उसे हम 'आत्म-सचेतन मन' या 'आत्मा' कहते हैं।

3. संवेग का अनुभव कौन करता है— अधश्चेतक या आत्मा?

इसके अतिरिक्त, प्रायोगिक साक्ष्य हमें यह बताता है कि अविकल, अविसंज्ञित बिल्ली में समुचित अधश्चेतकीय उद्दीपन क्रोध या भय की अभिव्यक्ति उत्पन्न करता है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या बिल्ली मात्र उद्दीपन के एक परिणाम के रूप में क्रोध अभिव्यक्त करती है या कि उसने वस्तुत: क्रोध या भय का अनुभव भी किया? यद्यपि हम बिल्ली से इस प्रश्न का उत्तर नहीं पूछ सकते तथापि अधश्चेतकीय उद्दीपन के प्रति बिल्ली की प्रतिक्रिया से सत्य का पता लगा सकते हैं। प्रयोग करने पर यह पाया गया है कि (1) अधश्चेतकीय उद्दीपन के दौरान प्रकट आक्रामक क्रिया बिल्ली के पर्यावरण की विशिष्ट वस्तुओं के प्रति तब भी दिशानिर्दिष्ट नहीं होती जब ये वस्तुयें कारणात्मक रूप से संवेग से सम्बन्धित प्रतीत होती है। बिल्ली मात्र पिंजड़े के पार्श्वों को बारबार धक्का देती है किन्तु भाग निकलने के आसान रास्ते की उपेक्षा कर देती है। (2) इसके अतिरिक्त, सभी मिथ्या भावात्मक शारीरिक प्रतिक्रियायें अर्थात् भय आदि के संवेग उद्दीपन के अन्त में अचानक समाप्त हो जाते हैं तथा कोई भी अवशिष्ट प्रतिक्रिया शेष नहीं रह जाती। (म्याँव-म्याँव करना, काँपना, छिपना आदि) जबकि ये बातें 'वास्तविक' (वस्तुत: अनुभूत) संवेग के पश्चात् देखी जाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अधश्चेतकीय उद्दीपन द्वारा प्रेरित क्रिया संवेगात्मक महत्व का किसी प्रेरक तन्त्रिका द्वारा प्रेरित पेशी के आकुंचन से अधिक प्रतीत नहीं होता। **दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बिल्ली उस संवेग का अनुभव नहीं कर रही थी जिसे कि वह ग्राफ के रूप में दर्शा रही थी।**

पुन:, यदि अधश्चेतक को तब उद्दीप्त किया जाता है जब पशु सामान्य होता है तो उसकी क्रियायें तब तक लगभग बिना बदले चलती रहती है तब तक कि यान्त्रिक रूप से हस्तक्षेपन किया जाये। उदाहरणार्थ, अधश्चेतकीय उद्दीपन के दौरान "मिथ्या क्रोध" के प्रारूपिक परिवर्तनों के आभास के बावजूद, बिल्ली जितनी अच्छी तरह से हो सके उतनी अच्छी तरह से दूध पीती रहेगी या पुचकारने की अनुक्रिया करती रहेगी। इससे यह प्रकट होता है कि अधश्चेतक के उद्दीपन द्वारा अभिप्राप्त क्रोध-जागरण (अर्थात् मिथ्या क्रोध) और स्वाभाविक क्रोध (अनुभूत क्रोध) के बीच बहुत वैषम्य है। **इससे यह तथ्य स्पष्टत: प्रकट होता है कि अधश्चेतक, चेतक, अग्र ललाट पालि (Prefrontal lobes), एमिग्डला (Amygdala) तथा मस्तिष्क- वृन्त संवेग के बाह्यकरण या अवरोध के तन्त्र मात्र है किन्तु संवेग का अनुभव मन या आत्मा द्वारा किया जाता है।**

अन्त में हम एक बार पुन: पाठक का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करते हैं कि चिकित्सा-विज्ञानीय साक्ष्य यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि किसी संवेग के मानसिक तथा देह-क्रियात्मक पक्ष 'पूर्णत:' वियोजित किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, संवेगात्मक संस्तंभ से ग्रस्त रोगी गहराई से **अनुभव** करता है किन्तु वह कोई भी शारीरिक परिवर्तन **प्रदर्शित** नहीं करता और पिरामिडीय मार्गक्षत से पीड़ित रोगी अन्तरांग-कायिक परिवर्तन प्रदर्शित करता है जो कि साधारणत: संवेगों के सहचारी होते हैं, किन्तु इस मामले में **अनुभूति अनुपस्थित** है। यह वैसा ही है जैसे कोई अभिनेता क्रोधित होने का या भयभीत होने का अनुभव करता है और वह भावना वस्तुत: उसके मन में नहीं होती। इससे स्पष्टत: यह सत्य प्रकट होता है कि देह में एक मानसिक सत्ता है जो कि 'मन' या 'आत्मा' कहलाती है जो कि संवेग का **अनुभव** करती है तथा देह या मस्तिष्क के विभिन्न भाग तथा तन्त्रिका तन्त्र वह **तन्त्र** (Mechanism) है जिसके ज़रिए वह संवेग को अभिव्यक्त या प्रकट करता है।

दो प्रकार के तन्त्र —सुविधाकारक तथा अवरोधक— यह दर्शाते हैं कि आत्मा है जो कि यह निर्णय करती है कि किसका उपयोग किया जाये

पुनः, आइये, अब हम संवेग के बाह्यकरण के तन्त्र की तुलना एक बाइसिकल (bicycle) या मोटर-कार से करते हुए सम्पूर्ण तन्त्र (Mechanism) पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार करें। बाह्यकरण का तन्त्र दो प्रकार का है (1) सुविधाकारक (facilitatory) तथा (2) अवरोधक (inhibitory)। सुविधाकारक तन्त्र — क्रोध, भय, दुश्चिन्ता आदि में अभिव्यक्ति को सुविधाजनक बनाता है और अवरोधक तन्त्र उसे अवरोधित करता है या रोकता है। सुविधाकारक तन्त्र की तुलना बाइसिकल में पैडलों (pedals), फ्लाई व्हील (flywheel), चेन (chain) आदि से की जा सकती है तथा अवरोधक तन्त्र की तुलना बाइसिकल में ब्रेकों (brakes) से की जा सकती है। आइये, अब एक-एक ऐसी परिस्थिति पर विचार करें जिसमें किसी चलती हुई बाइसिकल का सवार स्पष्ट पाता है कि उसके सामने कुछ ही फुट की दूरी पर कोई व्यक्ति सड़क को पार कर रहा है। वह तुरन्त ब्रेकों का उपयोग करता है, और बाइसिकल को रोक देता है। इससे पूर्व पैडल, फ्लाई व्हील आदि गतिशीलता की अवस्था में थे और उन्हें उस अवस्था में रखा जा रहा था। सीट पर बैठे व्यक्ति ने खतरे को भाँप लिया और उसने उनकी गति को रोकने का निर्णय किया और इसलिए ब्रेकों के तन्त्र का उपयोग किया। यदि वह व्यक्ति ऐसा न करता तो ब्रेक अपने आप क्रियाशील होकर बाइसिकल की गति को न रोक देते। यही बात मोटर-कार के बारे में भी कही जा सकती है जिसमें एक स्टार्टर (starter), एक स्टीयरिंग-व्हील (steering wheel) तथा गियर (gear) होता है। जब कभी चालक को आवश्यकता महसूस होती है तब वह उनका उपयोग करता है। इसी प्रकार दो प्रकार के तन्त्रों अर्थात् सुविधाःकारक तन्त्र तथा अवरोधक तन्त्र का अस्तित्व हमें यह विश्वास करने के लिए प्रेरित करता है कि वहाँ कोई सत्ता होती है जो कि यह निर्णय करती है कि किस तन्त्र का उपयोग किया जाये और वह सत्ता स्वयं तन्त्र से भिन्न है, जैसाकि बाइसिकल के मामले

में सवार तथा कार के मामले में चालक होता है। इसके अतिरिक्त साइकल या कार किसी गन्तव्य स्थान की ओर ले जाने के लिये होती है, और उसी प्रकार देह तथा उसका तन्त्र उस सत्ता के, जिसे 'मन' या 'आत्मा' कहा जाता है, किसी प्रयोजन के लिए अभिप्रेत है। गन्तव्य स्थान या प्रयोजित सवार या चालक की इच्छा पर निर्भर होता है, जो कि स्वयं तन्त्र से भिन्न होता है। इसलिए इस साम्यानुमान से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मस्तिष्क में एक अधि-भौतिक मन या आत्मा है जो कि किसी प्रयोजन के लिए देह तथा उसके विभिन्न भागों के सुविधाकारक या अवरोधक तन्त्र का उपयोग करता है।

इसके प्रकाश में यह स्पष्ट जो जाना चाहिए कि 'आत्मा' ही उसके नकारात्मक तथा पीड़ादायक संवेगों के कारण भ्रष्ट या पतित होती है और आत्मा का ही शुद्धिकरण तथा उन्नयन होता है तथा आत्मा ही शान्ति तथा आनन्द का अनुभव करती है।

अमर आत्मा, ईश्वर और तीन लोकों का रूप

"आत्मा —अन्तर्विवेकशील तथा अभौतिक पदार्थ का— एक शाश्वत तथा अनन्त सूक्ष्म बिन्दु है। उसके चारों ओर एक सूक्ष्म प्रभामण्डल या एक अण्डाकार वृत्त होता है। वह सूक्ष्मतम दीर्घवृत्तीय "प्रकाश पिंड" जैसा होता है, जो कि उसके उप-परमाणविक स्तर पर भी पदार्थ से भी सूक्ष्म होता है। जब उसे दिव्य दृष्टि में देखा जाता है तो वह वैसा ही दिखाई देता है जैसा कि एक कोई तारा दिखाई देता है। आत्मा अमर है। उसकी ऊर्जा असीम है। आप अपने को एक अमर आत्मा के रूप में जानो।"

— शिव भगवानुवाच

दो

भारतीय भौतिकीविदों ने एक ऐसे सम्भाव्य माध्यम का सिद्धान्त खोजा है, जिस माध्यम में प्रकाश को माध्यम छोड़े बिना दीर्घ वृत्तीय कक्षाओं में गोल-गोल वृत्ताकार में घुमाया जा सकता है। यह खोज भुवनेश्वर में स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ फिजीक्स के डॉ. पी.के. जेना तथा डॉ. टी. प्रधान ने की है तथा किसी माध्यम में प्रकाश का संसीमित का सिद्धान्त (Theory of Confinement of light in a medium) इंडियन एकेडेमी ऑफ साइन्सेस द्वारा प्रकाशित भौतिकी विषयक प्रमुख पत्रिका 'प्रमाण' के दिसम्बर 1981 के अंक में प्रतिवेदित किया गया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार 'चयनित आवृत्तियों के प्रकाश को ऐसे पदार्थ के भीतर संसीमित (Confine) किया जा सकता है जिसका विद्युदपार्य स्थिरांक (Dielectric constant) गोलीय रूप में व्यवस्थित होता है किन्तु बाहर की ओर अरीय रूप में कम हो जाता है और कतिपय त्रिज्या के पश्चात् अभावात्मक हो जाता है। संभवत: इसी कारण से छोटे-छोटे कण प्रोट्रॉनों तथा न्यूट्रॉनों तक

संसीमित रहते हैं। **दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हम गोलाभ या दीर्घवृत्तीय 'प्रकाश पिंड' (lightballs) पा सकते हैं, जो कि शाश्वत (eternal) होते हैं।** इसलिए एक प्रकार से जो बात भौतिकी में सत्य है उसकी समतुल्य तत्वमीमांसा (metaphysics) में भी है या कि पदार्थ में चरम रूप के बारे में विज्ञान में एक तथ्य है वह धर्म में, आत्मा या ईश्वर— परमात्मा में चरम ज्यामितीय रूप के बारे में भी एक तथ्य है।

इन वैज्ञानिकों ने आगे यह भी कहा है कि प्रकृति में ऐसे गुणधर्म वाली कोई भी सामग्री ज्ञात नहीं है, तथापि प्रयोगशाला में, ऋणात्मक विद्युदपार्य स्थिरांक वाली सामग्री का निर्माण करना संभव है। अन्य शब्दों में इसका यह अर्थ है कि प्रयोगशाला में इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया जा सकता है।

सम्पूर्ण मण्डल अथवा तीन लोकों का रूप

डॉ. जेना तथा डॉ. प्रधान ने आगे यह कहा है कि पृथ्वी की सतह को घेरने वाले अवकाश में प्रकाश-संसीमित की अपेक्षित विशेषतायें हैं। वातावरणीय विद्युदपार्य स्थिरांक गोलीय रूप में व्यवस्थित होता है और अरीय (Radial) रूप में घटता जाता है। इसलिए सम्पूर्ण मण्डल तथा परलोक का रूप जो कि गोलाभ (Spheroid) या दीर्घवृत्तीय (Elliptical) दर्शाया गया है।

आत्मा तथा ईश्वर प्रकाश के शाश्वत बिन्दु हैं

किन्तु मैं जो बात विशिष्टतः कहना चाहता था वह यह है कि यदि हम भौतिकी के निष्कर्षों को अधि-भौतिकी की सत्ताओं पर लागू करें तो आत्मा तथा ईश्वर ऐसा प्रकाश हो सकता है जो कि अपने-अपने अण्डाकार रूप में "संसीमित" (confined) हैं। निश्चय ही यह प्रकाश दिव्य तथा अन्तर्विवेकशील है। इसके अतिरिक्त यह प्रकाश इस रूप में शाश्वत न केवल इसलिए हो सकता है क्योंकि वह माध्यम को कभी भी न छोड़ते हुए अनन्त सूक्ष्म आकार की दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में गोल-गोल घूमता है, जिसमें नीचे उल्लिखित चार उदाहरण देकर उसका स्पष्टीकरण करने की कोशिश करूँगा।

1. 'डांसिंग वु लि मास्टर्स' (Dancing Wu Li Masters) नामक पुस्तक में कहा गया है— "यदि विश्व में कोई चरम पदार्थ है तो वह परिशुद्ध ऊर्जा है क्योंकि उप-परमाणविक कण (Sub-atomic particles) ऊर्जा से नहीं बने हैं, वे स्वयं ही ऊर्जा हैं। 1905 में आइन्स्टाइटन ने यही सिद्धान्त निकाला था। इसलिए उप-परमाणविक अन्त:क्रियायें ऊर्जा के साथ-साथ ऊर्जा की अन्त:क्रियायें हैं। उप-परमाणविक स्तर पर इस बात में कोई स्पष्ट विभेद नहीं रह जाता कि *क्या* है और अभिनेता तथा अभिनय-क्रिया के बीच *क्या होता है।* यह सत्य स्पष्ट कर सकता है कि क्यों ऊर्जा खर्च करने के बावजूद आत्मा की ऊर्जा नि:शेष नहीं होती। उससे यह भी स्पष्ट हो सकता है कि 'संस्कार' आत्मा में, जो कि कर्त्ता भी है और अनुभव कर्त्ता भी है, निवास कैसे करती है।"
2. भौतिकीविदों ने यह पाया है कि यदि दो कणों को टकराया जाता है तो वे नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर दो नये कणों का निर्माण होता है। ये दोनों ही कण स्वत: दो अतिरिक्त कणों में अवक्षयित हो जाते हैं। इन चार कणों में से दो वे कण हैं जिन्हें लेकर प्रयोग आरम्भ किया गया था। एक विख्यात भौतिकीविद् फिन्केल्स्टाइन (Finkelstein) ने इस सत्य को इस प्रकार कहा है— "यह ऐसा है जैसे की हम दो घड़ियों को एक साथ उछालते हैं, वे बिखर जाती है और उनमें उड़ते हुए गियर और स्प्रिंग नहीं आते बल्कि अनेक घड़ियाँ उड़ती हुई आती हैं, जिनमें से कुछ तो मूल घड़ियों जितनी बड़ी होती हैं।" इससे यह प्रकट होता है कि ऊर्जा स्तर पर पदार्थ अविनाशशील होता है और ऊर्जा उसके स्तर पर नि:शोषित न होती हुई बल्कि केवल रूप बदलती हुई तथा 'बहुगुणित' होती हुई कार्य कर सकती है।

इससे हमें यह संकेत मिलता है कि कैसे ऊर्जा का व्यय होने के बावजूद आत्मा की सचेतन ऊर्जा अविकल बनी रहती है। यदि दो उप-परमाणु कण आपस में टकराने पर नष्ट होने के बजाय, दो अन्य कणों को जन्म देते हैं, तो

आत्मा भी जो कि उप-परमाणु कणों से भी सूक्ष्म होती है, नष्ट नहीं होती। **वह अमर है, क्योंकि वह स्वयं रक्षणशील है। उसकी ऊर्जा खर्च का पुनर्जनन करता है, यद्यपि उसके गुणों या विशेषताओं में परिवर्तन आ जाता। इसलिए आत्मा को 'शाश्वत' अथवा 'अमर' कहा जाता है।**

3. **इसके अतिरिक्त, आइन्स्टाइन के अनुसार पदार्थ या द्रव्यमान अवकाश काल का एक वक्रता (Curvature) निर्मित करता है। इस प्रकार अधि-भौतिकी में इस सचेतन ऊर्जा का जिसे 'आत्मा' कहा जाता है, एक वक्र रूप हो सकता है।**

4. पुन: डॉ. राजा रामन्ना, निदेशक, भाभा इन्स्टीट्यूट ऑफ एटॉमिक एनर्जी, ने 21 जनवरी 1982 की नेशनल फिजिकल लेबारेटरी में डॉ. के.एस. कृष्णन् स्मारक भाषण देते हुए यह कहा— "यदि वर्तमान उच्च ऊर्जा परमाणु शोध से मिलने वाले संकेत कोई मार्गदर्शन देते हैं तो वैज्ञानिक परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए विखंडन (Fission) या समेकन (Fusion) की अपेक्षा कहीं अधिक दक्ष प्रक्रिया खोजने की दहलीज पर हैं।" उन्होंने अपने इस भाषण में यह बताया कि कैसे विज्ञान शोधकर्त्ताओं ने परमाणु से ऊर्जा पाने की सम्भावनायें बढ़ा दी है। इस प्रकार एक छोटे-से अणु में विशाल ऊर्जा हो सकती है। *इसका अर्थ यह है कि अधि-भौतिकी के तन्त्र में यद्यपि 'आत्मा' बहुत सूक्ष्म है तथापि उसमें हमारी कल्पना के परे विशाल सचेतन ऊर्जा हो सकती है।*

5. इसके अतिरिक्त, भौतिकी के नवीनतम निष्कर्षों से यह प्रकट हुआ है कि यद्यपि आबद्ध न्यूट्रॉन (किसी भारी एटम के केन्द्रक में स्थित न्यूट्रॉन) विघटित होते हैं तथापि उनके क्षय का समय 10^{31} वर्ष है जो कि विकासवादी वैज्ञानिकों द्वारा यथा परिकल्पित विश्व की आयु का 1000 बिलियन गुना है। **इस प्रकार न्यूट्रॉन लगभग शाश्वत है। इसलिए, यदि पदार्थ के बारे में अन्तिम सत्य ऐसा है तो इस बात पर विश्वास करना भी कठिन नहीं होना चाहिए कि 'आत्मा अमर तथा शाश्वत है'। इसके अतिरिक्त यह विज्ञान का एक तथ्य है कि न्यूट्रॉन का द्रव्यमान शून्य होता है या कि वे लगभग द्रव्यमान**

रहित हैं। इन्हीं परिपाटियों पर यह समझा जा सकता है कि आत्मा का द्रव्यमान भी 'शून्य' है।

विज्ञान के इन तथ्यों को जोड़ने पर इस सत्य को सम्मझना कठिन नहीं होना चाहिए कि आत्मायें 'द्रव्यमान रहित' हैं, 'शाश्वत' हैं तथा 'अन्तर्विवेकशील सत्तायें' हैं, जिनका एक दीर्घवृत्तीय रूप है। आत्मा का यह अनन्त सूक्ष्म रूप दिव्य तथा अखण्डनीय है और उसे तृतीय नेत्र या दिव्य दृष्टि के ज़रिए देखा जा सकता है।

आत्मायें— आत्माओं के लोक से आती हैं जो सूर्य और सितारों से भी परे है

"सूर्य और सितारों से भी दूर फ़रिश्तों का एक सूक्ष्मलोक है। उससे भी दूर एक अन्य लोक है, जहाँ आत्मायें अदेही, क्रियारहित, विचाररहित तथा शान्त अवस्था में निवास करती हैं। वह लोक आत्मा का लोक है। सभी आत्मायें पृथ्वी पर उस लोक से आती हैं। वह लोक आत्मा का प्यारा घर है। यह पृथ्वी एक रंगमंच है जहाँ आत्मायें देह को एक वस्त्र के रूप में ग्रहण कर अपनी-अपनी भूमिकायें निभाती हैं।"

— शिव भगवानुवाच

20

जुलाई, 1975 से मंगल की भूमि पर वाइकिंग लैन्डर-वन (Viking Lander-I) का निर्दोष उतराई मानव मन तथा तान्त्रिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण विजय थी। मनुष्य रहित तीन पैरों वाले वाइकिंग लैन्डर को ग्रहीय अवकाश से होते हुए अण्डाकार मार्स (Mars) तक जिसे भारतीय ज्योतिष में मंगल ग्रह या भूमिपुत्र कहा जाता है, पहुँचने के लिए 7000 लाख किलोमीटर दूरी तय करने में 11 माह लग गये। यह उत्तेजक महानाटक वैज्ञानिकों, वैमानिकीय (Aeronautical) इंजीनियरों, जीव-विज्ञानियों, रसायनज्ञों, भौतिकीविदों, खगोल विज्ञानियों तथा अन्य लोगों के अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक उपलब्धि होगी। वाइकिंग-वन का कार्य करना तथा उसकी प्रयोगशाला विज्ञानियों की योग्यताओं का मुखर (eloquent) प्रमाण है।

विज्ञान का अद्भुत चमत्कार

वाइकिंग मिशन को एक अभूतपूर्व प्रकार के जटिल समन्वेषण के लिए कार्यक्रमित किया गया था। इस प्रयोजन के लिए उसे एक लघु प्रयोगशाला से

सज्जित किया गया था, जो कि एक पार्श्व में 30 सेन्टीमीटर का एक क्युबिक बॉक्स (Cubic box) था। इसमें 3 लघुकृत जीव-रासायनिक प्रयोगशालायें थीं, जिन में एक कम्प्यूटर, भट्टी, सनलैम्प तथा एक गैस क्रोमोटोग्राफ (chromotograph) रखा हुआ था। उसमें गैस तथा पोषक तत्वों के प्रवाह के नियन्त्रण के लिए 43 लघु वाल्व थे, 40 तापमान नियन्त्रण साधन थे, 22,000 ट्रांजिस्टर थे तथा 10,000 अन्य इलेक्ट्रॉनिक पुर्जे थे। सम्पूर्ण तन्त्र को मंगल की भूमि सम्बन्धी अनेक प्रयोग संचालित करने के लिए तथा श्वसन प्रकाश संश्लेषण तथा उपापचय के उत्पादों में खोजने के लिए कार्यक्रमित किया गया था। वाइकिंग को मंगल के भूकम्पों (Quakes) को भी सुनना था। इसके लिए उसमें मौसम सम्बन्धी आधार सामग्री लेने के लिए एक मौसम विज्ञानीय पैकेज भी था। कार्बन परमाणुओं को ढूँढ़ने के लिए उसमें एक रासायनिक प्रयोगशाला भी थी, भले ही कार्बन परमाणु प्रति दस लाख पर एक भाग थे। उसमें मंगल के भूदृश्य के त्रिआयामीय (3-Dimensional) रंगीन, श्याम-श्वेत (black & white) तथा इन्फ्रा रेड (infra-red) चित्र भेजने के लिए कैमरे भी थे। सामान्य मनुष्य के लिए यह सब विज्ञान का चमत्कार ही तो है!

इन मशीनों या इन उपकरणों की विचारशक्ति तथा बुद्धि और मानव की विदग्धता तथा प्रयोग के पीछे की संगठन तथा समन्वय योग्यता को उन प्रयोगों की जटिलता तथा स्वरूप और सूक्ष्मता पर विचार करने पर परखा जा सकता है। उसके कैमरों द्वारा मंगल की शैलमय भूमि के स्पष्ट चित्रों का रिले मंगल से 2140 लाख मील दूर स्थित पृथ्वी से एक रेडियो कमाण्ड द्वारा मंगल की भूमि में खुदाई का आरम्भ होना, रोबोट की भुजा द्वारा डिब्बे जैसे उपकरण में मिट्टी का ढेर लगाया जाना, लघु प्रयोगशाला में पाँच पृथक-पृथक प्रयोगों का किया जाना और ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, अर्गान तथा कार्बन-डाईऑक्साइड गैसों के स्पष्ट संकेत का दिया जाना — वस्तुतः विज्ञान के अद्भुत चमत्कार हैं!

वाइकिंग की असफलताओं को जिस ढंग से ठीक किया गया था वह भी एच. जी. वेल्स (H.G. Wells) की विज्ञान-कथा से कम उत्तेजक तथा कम

आश्चर्यजनक नहीं है। जैसा कि सर्व विदित है — यान का तीन मीटर लम्बा आटोमेटिक डिगर (digger) ने जो कि मंगल की भूमि को खोदने के लिए अभिकल्पित किया गया था एक अवस्था में कार्य करना बन्द कर दिया था। बाद में वैज्ञानिकों ने पृथ्वी से 2140 लाख मील की दूरी पर स्थित इस त्रुटि को सुधार लिया। यह सब वस्तुत: विज्ञान का एक चमत्कार है!

वैज्ञानिकों का स्वप्न पूरा नहीं हुआ

किन्तु वैज्ञानिक उपकरणों की दक्षता चाहे जितनी भी उच्च कोटी की रही हो तथा इन मशीनों के पीछे मनुष्य की कामना चाहे जितनी भी परिशुद्ध रही हो, फिर भी मंगल पर भूतकालीन या वर्तमानकालीन जीवन के चिह्न पाने का वैज्ञानिकों का स्वप्न अभी पूरा नहीं हो पाया है। वैज्ञानिकों ने यह सोचा था कि मंगल के वे जीवन रूप होंगे जो कि मंगल पर तब प्रकट हुए थे जब वहाँ की जलवायु मृदुल (Milder) थी और वे अब भी वहाँ शीतनिद्रा (Hibernating) कर रहे होंगे। वैज्ञानिकों ने यह प्रत्याशा की थी कि वहाँ माइक्रोब तथा मैक्रोब (Microbes and Macrobes) विशाल संख्या में पनपा रहे होंगे। वैज्ञानिकों ने यह सोचा था कि उनमें से कुछ माइक्रोब तथा मैक्रोब हिम-भक्षक होंगे। कुछ जीव कारक, सौर, पराबैगनी विकिरण (Ultraviolet radiation) से रक्षा के लिए कवच वाले जीवों जैसे जीव होंगे। उनका विश्वास इटालियन खगोल विज्ञानी गिओवानरी शिपारेल्लिस (Giovanri Schiparellis) के लेखों पर आधारित था, जिन्होंने 100 वर्ष पूर्व एक टेलिस्कोप के ज़रिए वह चीज़ें देखी थी जिन्हें उन्होंने मंगल पर स्थित नहरें या नालियाँ समझा था। एक अमरीकी खगोलविद् पर्सिवल लोवेल (Percival Lowel) ने बाद में इन प्रेक्षणों की पुष्टि की तथा कहा कि मंगल पर 500 नहरें हैं और उन्होंने 'मार्स यॉज अबोड ऑफ लाइफ' (Mars as abode of life), नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसलिए, वाइकिंग-एक को उस ग्रह पर उतारने के लिए बनाया गया था कि जिस ग्रह को सूखी हुई झील समझा जाता था और यह आशा की गई थी वह वहाँ जीवन के कुछ चिह्न पायेगा। किन्तु ये आशायें भ्रम सिद्ध हुईं।

वस्तुत:, तीन जीव-विज्ञानीय प्रयोगों में मिट्टी में उच्च प्रोटीन पोषक तत्वों का मिश्रण कर मिट्टी में जीवन के सूक्ष्मदर्शी रूपों के साथ सम्भाव्य अन्त:क्रिया का परीक्षण किया गया, जिनसे प्राप्त हुए प्रथम परिणामों से वहाँ कुछ बैक्टीरिया (Bactaria) होने के संकेत मिले। वाइकिंग-वन रोबट प्रोब प्रयोगशाला ने लाल ग्रह पर नाइट्रोजन तथा आर्गन गैसों (Argon gasses) का पता लगाया था तथा मंगल की भूमि के नमूनों में ऑक्सीजन गैस की सारभूत मात्रा तथा कुछ कार्बन डाईऑक्साइड भी पाई थी। उसे देखकर डॉ. मैसेल (Dr. Macel) ने कहा— "यदि आप यह देखें कि जीवन के लिए हमें क्या चाहिए तो हमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है तथा हमें जल की आवश्यकता होती है, हमें नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, जो कि उपलब्ध है। कार्बन, फॉस्फेट भी है।" डॉ. हैरोल्ड क्लाइन (Dr. Harold Klein) ने भी कहा कि प्रयोगशाला मंगल पर जीवन के सूक्ष्म रूपों की संभावना प्रकट करती है।

तथापि प्रयोग के प्रभारी डॉ. नॉर्मन होरेविट्ज (Dr. Norman Horewitz) ने कहा, "जो आधार सामग्री हमारे पास है वह संकल्पनीय रूप से जैविकीय मूल की है, किन्तु जैविकीय स्पष्टीकरण उन अनेक वैकल्पिक स्पष्टीकरणों में से एक है जिसे कि अपवर्जित करना होगा।" उन्होंने आगे यह कहा कि, "मेरी प्रतिक्रिया नितान्त अविश्वास की थी। मै ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि हमने मंगल पर जीवन की खोज नहीं की है।" उन्होंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि अगले वाचनों से यह प्रकट हुआ कि गैसों का उत्सर्जन स्थिर हो रहा था। परिपक्व चिन्तन ने उन्हें तथा अन्य वैज्ञानिकों को यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया कि ऑक्सीजन का उत्सर्जन किसी अजैविकीय घटना के कारण हो रहा था। वह मंगल की सतह की सामग्री पर उच्च मात्रा में रासायनिक क्रिया के कारण हो सकता था। इसलिए वैज्ञानिकों ने अन्त में यह कहा कि ये किसी निर्वचन पर रजामन्द नहीं है और एक ऐसे सिद्धान्त की ओर झुक रहे हैं कि गैसों का उत्सर्जन मंगल पर जीवन होने के कारण नहीं हो रहा था, बल्कि मंगल की भूमि की रासायनिक रचना के कारण था। इस प्रकार अन्तत: वहाँ जीवन के कुछ चिह्न पाने की वैज्ञानिकों की आशायें उसी तरह भ्रम सिद्ध हुई, जिस तरह मंगल में

शैलों पर देखे गये अक्षर 'B' तथा अंक '2' को दृष्टि भ्रम समझा गया था।

यह खोज कब तक जारी रहेगी?

इसके पूर्व रूसियों ने अपने चार अवकाश-यान शुक्र (Venus) पर उतारे थे। लेकिन वहाँ उन्हें कोई जीवन के चिह्न न दिखाई पड़े थे। जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं चन्द्र पर किये गये समन्वेषण पृथ्वी के बाहर जीवन की खोज की इस कथा में आरम्भ बिन्दु थे। वहाँ भी जीवन में चिह्न पाने की मनुष्य की आशायें झूठी सिद्ध हुईं। अब, यह कहा जा रहा है कि वाइकिंग-टू (Viking-II) के अवतरण तथा मंगल पर किये गये समन्वेषण के पश्चात् गुरु ग्रह (Jupitor) तथा उसके कुछ उपग्रह बाह्य अवकाश में जीवन के संभाव्य स्थान हो सकते हैं। किन्तु फिर भी जीवन की खोज का अन्त नहीं होगा। वे कहते है कि — "खोज जारी रहेगी!"

किन्तु कोई पूछ सकता है — "कब तक?" अमेरिका ने केवल वाइकिंग-एक समन्वेषण पर एक बिलीयन डॉलर की राशि ख़र्च की है, और हार्वर्ड के एक वैज्ञानिक का यह कहना है कि हमारी आकाश-गंगा में 1000 लाख स्थान ऐसे हैं जहाँ जीवन हो सकता है। चूँकि लाखों अन्य आकाश-गंगायें हैं, जिनमें से प्रत्येक में अनेक लाख तारे हैं जिन्हें अपने-अपने ग्रह हैं। इसलिए कोई यह पूछ सकता है कि क्या इन सभी ग्रहों पर जीवन का खोज करना संभव है? क्या इतने अनन्तत: दीर्घ काल तक मनुष्य का धैर्य और उत्साह बना रहेगा? क्योंकि प्रत्येक समन्वेषण की तैयारी के लिए बहुत समय लगता है। क्या मनुष्य अन्तहीन समय तक इस प्रकार के अनुसन्धान के लिए इतनी विराट धनराशि खर्च कर सकेगा? यदि इस मामले में हमारा अनुसन्धान अधिसंभाव्यता के सिद्धान्त (Law of Probability) पर आधारित हो तो बाह्य अवकाश में जीवन की खोज करने का कोई अन्त ही नहीं होगा और मनुष्य निश्चित रूप से यह नहीं जान सकेगा कि क्या पृथ्वी के बाहर उसके कोई सजातीय है। स्पष्ट है कि यह ब्रह्माण्डीय पहेली का हल इसलिए नहीं है क्योंकि उसमें विशाल समय तक धनराशि अन्तर्ग्रस्त है, बल्कि इसलिए क्योंकि बाह्य अवकाश में असंख्य ग्रह हैं।

दार्शनिक विवक्षायें

चन्द्र का मनुष्य द्वारा समन्वेषण तथा शुक्र और मंगल के मनुष्य रहित रोबोट द्वारा समन्वेषण की दार्शनिक विवक्षायें (Philosophical implications) हैं जिन्हें मनुष्य को समझना चाहिए। चन्द्र (Moon), शुक्र (Mars) तथा मंगल (Venus) पर जीवन के अस्तित्व का कोई भी विश्वसनीय साक्ष्य के न होने से मनुष्य को निष्कर्ष निकालना चाहिए कि जीवन, जैसा कि वैज्ञानिक उसे जानते है, कोई ब्रह्माण्डीय घटना नहीं है। वाइकिंग-वन के अति संवेदनशील कैमरों को कोई भी जीवित या मृत प्राणी नहीं दिखाई दिया। उन्होंने किन्ही भी हिम-भक्षी या शैल-भक्षी मैक्रोन नहीं देखे और न ही उन्होंने कवचधारी जीव देखे। यह हो सकता है कि स्वयं वाइकिंग पृथ्वी से जीवित या मृत माइक्रोब ले गया होगा, जिन्हें किसी पश्चात्-वर्ती समन्वेषण में मंगल में सजग, सक्रिय या शीत निष्क्रियता में पाया जा सकता है और कुछ ही दिनों में उनकी संख्या खरबों हो जायेगी और कुछ उपकरण भविष्य में यह बता सकते हैं कि वहाँ बेक्टीरिया या खटमल हैं। किन्तु एक बात निश्चित है कि मंगल में मनुष्य जैसा कोई भी प्राणी नहीं है क्योंकि न तो कैमरा की आँख ने उसे देखा है और न ही मंगल का कोई मनुष्य भागकर वहाँ पहुँचा जहाँ वाइकिंग-एक उतरा था जैसे कि यदि पृथ्वी पर ऐसी कोई वस्तु उतरी होती तो पृथ्वी के मनुष्य उसे देखने भाग कर उसके पास जा पहुँचे होते। इसलिए, मनुष्य के लिए यह एक चेतावनी है कि ऐसा अनुसन्धान फलप्रद नहीं होगा क्योंकि मनुष्य केवल पृथ्वी का अद्वितीय प्राणी है।

किन्तु हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि अन्यत्र कहीं भी मनुष्य के कोई भी सजातीय नहीं है। नि:सन्देह विश्व के बाहर भी स्वत्व (Beings) हैं किन्तु उन्हें इन्द्रिय या इलेक्ट्रॉनिक उपकरण द्वारा नहीं जाना जा सकता। वैज्ञानिक यह जान लें कि विज्ञान की उसकी अपनी परिसीमायें हैं क्योंकि समस्त विज्ञान मानव मन की रचना है तथा स्वयं मनुष्य के मन की कतिपय सीमायें या परिसीमायें हैं। इसलिए, मनुष्य विज्ञान के प्रयोग द्वारा यह नहीं जान सकता कि विश्व के परे क्या है। क्योंकि विश्व के परे जो स्वत्व हैं उनका रूप हम मानव प्राणियों की तरह

स्थूल नहीं है। जीवन के गहन रहस्यों को केवल एक अपार्थिव तथा दिव्य सत्व (Divine Being) के दैविक सन्देशों द्वारा जाना जा सकता है। यह स्वत्व कहीं भी जाने के लिए स्वतन्त्र है तथा यह स्वत्व, जो कि सभी भूतकालीन, वर्तमानकालीन तथा भावी वैज्ञानिकों से भी महानतम है — वह ईश्वर है।

ग्रहीय अवकाश के परे है— सूक्ष्म लोक (Subtle World)

आइये, हम विश्व के सम्मुख यह घोषणा करें कि ग्रहीय अवकाश के परे चैतन्य 'स्वत्व' (Beings) हैं। वे न तो माइक्रोबों (microbes) के रूप में हैं और न ही मैक्रोबों के रूप में हैं जिन्हें पृथ्वी के वैज्ञानिक खोज रहे हैं। जीव-विज्ञानियों ने जीवित प्राणियों को जिन प्रवर्गों में वर्गीकृत किया है उन्हें उन किसी भी वर्ग में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। उनकी उपस्थिति को उनके साथ पोषक तत्वों में मिश्रित कर और यह देखकर कि क्या कोई प्रकाश-विश्लेषण होता है या कि क्या किन्हीं गैसों का उत्सर्जन होता है, नहीं जाना जा सकता।

जो **'स्वत्व' वैज्ञानिकों के ज्ञात अवकाश के परे रहते हैं उनका देह दिव्य प्रकाश से बना होता है। वे स्वयं प्रकाशमान हैं। उनके लोक में ध्वनि नहीं है। वे बोलते हैं तथा हाव-भाव दर्शाते हैं किन्तु उनके स्वर को सुना नहीं जा सकता, यद्यपि समझा जा सकता है** । इसलिए वहाँ ध्वनि प्रदूषण या पर्यावरणात्मक प्रदूषण नहीं है और न ही वहाँ हमारे इस विश्व की समस्यायें हैं। वह लोक, जो कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव से परे है सूक्ष्म विश्व, देवदूतों का विश्व या सूक्ष्मदेवताओं का विश्व कहलाता है। उस विश्व के अस्तित्व को इन्द्रिय-बाह्य प्रत्यक्षणों द्वारा जाना जा सकता है। वहाँ के व्यक्तियों को उसके द्वारा देखा जा सकता है जिसे कि समाधि दृष्टि या अन्त:चक्षु या दिव्य चक्षु (Trance vision or Third eye) कहा जाता है और उनके साथ दैवीकृत पारेन्द्रियज्ञान (Divinised Telepathy) द्वारा बातचीत की जा सकती है।

आत्मा का लोक

देवदूतों या सूक्ष्मदेवताओं के विश्व के परे आत्मा का विश्व या 'ब्रह्मलोक'

है। **वहाँ आत्मायें अदेही अवस्था में निवास करती हैं। वे पार्थिव नियमों के, जैसा हम उन्हें जानते हैं, दायरे से बाहर हैं** तथा संवेगों, जैसा कि हम उन्हें इस विश्व में पाते हैं, के प्रभाव से बाहर हैं, और वे वहाँ परिपूर्ण मौन की अवस्था में अद्वितीय अर्थ में विश्राम करती हैं। इस लोक में परम स्वत्त्व अदेही परम-आत्मा शिव भी निवास करते हैं। यह जानकर हमें उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए क्योंकि वही हमारे पृथ्वी के बाहर के सजातियों में सर्वोच्च हैं तथा सच्चे ज्ञान का स्त्रोत है। वह आध्यात्मिक शक्ति, पवित्रता, शान्ति तथा आनन्द का स्रोत हैं। उसके द्वारा हम शाश्वत सुख प्राप्त कर सकते हैं।

आत्मायें प्रकाश से भी द्रुततर वेग से संचार कर सकती हैं

''आत्मा किसी भी स्थान पर अति अल्प समय में उड़कर पहुँच सकती है। जब कोई आत्मा किसी देश में एक देह को छोड़ती है तो उसे किसी दूसरे देश में उड़कर जा पहुँचने में लगभग कुछ भी समय नहीं लगता। आत्मा को 'विचार' रूपी पंख होता है। विचारों और प्रेम के पंखों के साथ आप आत्मा के लोक में मानसिक रूप से उड़कर जा सकते हैं। यह उड़ान स्मृति के अवकाश-यान पर ईश्वर के पास जाने की यात्रा कहलाती है। आप यह सुखद यात्रा करें। शुभयात्रा।''

— *शिव भगवानुवाच*

यदि हमने एक दशक पूर्व किसी वैज्ञानिक से यह पूछा होता कि क्या कोई ऐसा हो सकता है जो कि प्रकाश के वेग से भी अधिक वेग से गतिमान हो? तो उसने तुरन्त कह दिया होता— ''नहीं।'' आइन्स्टाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त(Einstein's Theory of Relativity) ने प्रकाश के वेग को अधिकतम सीमा के रूप में बताया है। इसके स्पष्टीकरण में आइन्स्टाइन ने एक महत्वपूर्ण सूत्र दिया है तथा उन्होंने स्वयं कहा है — ''प्रकाश के वेग से अधिक वेगों के अस्तित्व की सम्भावना नहीं है।''

व्यवहार में भी हम अभी तक ऐसा कोई भी द्रव्य कण नहीं पा सके हैं जो कि प्रकाश के वेग से अधिक वेग से यात्रा करता हो। मुक्त अवकाश (Free Space) में प्रकाश की गति 3×10^8 m/sec. के बहुत निकट जानी जाती है। वैज्ञानिकगण जो तेज से तेज रॉकेट बना सके हैं उसकी गति 2×10^4 m/sec. है। सौरतन्त्र में ग्रहों तथा उल्काओं की गति 10^6 m/sec. के ऊपर नहीं है। इलेक्ट्रॉन जैसे बहुत छोटे कण ही प्रकाश की गति तक पहुँचने वाले वेग से घूमते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रोटोनों तथा न्यूट्रॉनों का वेग प्रकाश की गति के बराबर है।

यदि ऐसा हो तो आत्माओं को आत्माओं के लोक से पृथ्वी पर आने में सम्भवत: सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे। किन्तु व्यवहार में यह तथ्य नहीं है। आत्मायें फोटोनों (photons) या प्रकाश की अपेक्षा अधिक वेग से यात्रा करती हैं। वे एक सेकण्ड के खरब-वें भाग में कहीं भी पहुँच सकती हैं। आज कुछ भौतिकविद् यह कह रहे हैं कि टेकियोन (Techyons), जो कि उनके मतानुसार पदार्थ के अति प्रकाशमान कण हैं, प्रकाश की अपेक्षा अधिक गति से यात्रा करते हैं।

यद्यपि 'सापेक्षता का सिद्धान्त' (Theory of Relativity) जिसने विज्ञान की प्रगति में क्रान्ति ला दी है तथा भौतिकी में जिसका अद्वितीय स्थान है, इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि प्रकाश की गति द्रव्य वस्तुओं या कणों की गति के लिए उच्चतर सीमा है, तथापि आज ऐसे वैज्ञानिक हैं जो कि यह विश्वास करते हैं कि 'सापेक्षतावादी क्वांटम सिद्धान्त' में प्रकाश की अपेक्षा द्रुततर कण के अस्तित्व की सम्भावना सम्बन्धी प्रायिक आक्षेपों का निराकारण किया जा सकता है, 1969 में ओ.एम.पी. बिलानिउक तथा ई.सी.जी. सुदर्शन (O.M.P. Bilaniuk and E.C.G. Sudarshan) ने सैद्धान्तिक आधारों पर यह भविष्यवाणी की थी कि कोई कण प्रकाश की अपेक्षा अधिक गति से यात्रा कर सकता है। जी. फाइनबर्ग (G. Feinberg) ने इस अति प्रकाशमान कण को 'टैकिओन' (Techyons) नाम दिया। वे जिनका एक घनात्मक भौतिक द्रव्यमान होता है और जो प्रकाश की गति की अपेक्षा बहुत कम गति से यात्रा करते हैं वे 'ट्रैडोन' (Tradons) कहलाते हैं। द्वितीयत:, ऐसे कण भी है जिनका वेग प्रकाश की गति के बराबर है और जिनका शून्य विराम द्रव्यमान (Zero rest mass) होता है— फोटोन या लक्सोन (Photons or Luxons) कहलाते हैं। तृतीयत:, ऐसे कण भी है जो कि प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक वेग से यात्रा करते हैं और जिनका काल्पनिक विराम द्रव्यमान होता है— इन्हें टैकिओन कहा जाता है। इसे स्पष्ट करने वाला सुसंगत फार्मूला निम्नानुसार है:—

$$m = \frac{m_o}{\sqrt{1-(v/c)^2}}$$

जहाँ m_o कण का विराम द्रव्यमान है, v उसका वेग है तथा C प्रकाश का वेग है। उपर्युक्त समीकरण से यह स्पष्ट है कि यदि V बढ़ता है तो m भी बढ़ेगा। इस फार्मूला में जो महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि यदि कण का वेग (V) प्रकाश के वेग (C) के बराबर हो जाता है, अर्थात् यदि किसी कण का वेग प्रकाश की गति के बराबर हो जाता है तो फार्मूला निम्नानुसार होगा :—

$$m = \frac{m_o}{1-(1/1)^2}$$

$$= \frac{m_o}{0}$$

इससे यह प्रकट होता है कि यदि कण का वेग (v), प्रकाश के वेग (C) के बराबर हो जाता है तो m अनन्त के (∞) बराबर हो जाता है। इसी आधार पर आइन्स्टाइन ने यह कहा कि किसी कण का वेग प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि यदि कण का वेग प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक हो जाता है (V>C) तो कण का द्रव्यमान तथा संवेग (Momentum) काल्पनिक हो जायेगा।

अब वैज्ञानिक यह कहते हैं कि इन आक्षेपों का निराकरण किया जा सकता है, क्योंकि वे यह कहते हैं कि यदि कोई कण किसी समय प्रकाश के वेग से कम, अपने वेग (V<C) यात्रा कर रहा हो तो उसके वेग को बढ़ाकर प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके लिए हमें अनन्त ऊर्जा[1] की आवश्यकता होगी। किन्तु वे यह कहते हैं कि यदि ऐसी कोई वस्तु हो जिसका वेग प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक हो (V>C) तो वह संभवत: विद्यमान हो सकता है। क्योंकि उसके वेग को धीरे-धीरे क्रमिक रूप में घटाया नहीं जा

1. *सुसंगत फार्मूला है:*

$$E = \frac{MC^2}{\sqrt{(1-(v/c)^2}} \qquad P = \frac{mv}{\sqrt{1-(v/c)^2}}$$

सकता।

द्वितीयत:, वे कहते हैं कि इन समीकरणों में जो द्रव्यमान प्रतीत होता है वह द्रव्यमान विश्रान्त कण का द्रव्यमान है और परिणामत: उसे तभी पाया जा सकता है जब v = 0 हो, किन्तु यह एक ऐसी परिस्थिति है जो कि किसी टैकिओन के मामले में प्राप्त नहीं की जा सकती, क्योंकि उसका वेग प्रकाश के वेग से अधिक होता है और उसे धीरे-धीरे विश्राम की अवस्था में नहीं लाया जा सकता। इसलिए वे यह प्राक्कल्पना प्रस्तुत करते हैं कि प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक वेग वाले कण संभवत: विद्यमान हैं।

नि:सन्देह, वैज्ञानिक ऐसी प्रायोगिक स्थिति विकसित नहीं कर पाये हैं जिसमें वे टैकिओनों का पता लगा सकें। किन्तु यह बात उन्हें सैद्धान्तिक आधार पर ऐसे कणों की विद्यमानता में विश्वास करने से नहीं रोकती।

इसके अतिरिक्त हम यह जानते हैं जिस माध्यम से होकर कोई कण गुजरता है उस माध्यम में अन्य कणों की उपस्थिति होने के कारण उस कण का वेग धीरे-धीरे घटता जाता है। इस प्रकार वेक्युम (Vaccum) में प्रकाश का वेग 3×10^8 है किन्तु जल में उसका वेग है 2.25×10^8 m/sec. है। किन्तु जैसा कि हमने पहले कहा है, टैकिओन की गति किसी भी साधन द्वारा धीरे-धीरे कम नहीं कि जा सकती।

प्रकाश की अनन्त या अकल्पनीय गति

अब यदि यह संभव हो तो इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि 'आत्मा', जिसका द्रव्यमान शून्य से भी कम होता है, अर्थात् द्रव्यमान काल्पनिक होता है, प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक वेग से यात्रा कर सकती है क्योंकि वह एक अपदार्थिक सत्ता है इसलिए वातावरण में या देहों में स्थित अन्य कण उसकी गति को कम नहीं कर सकते। इस प्रकार किसी आत्मा को एक देह को त्यागकर बहुत दूरी पर स्थित किसी अन्य देह को ग्रहण कर लेने में लगभग कुछ भी समय नहीं लगता। वह पलक झपकाते ही अकल्पनीय दूरी पर स्थित आत्माओं के लोक में भी जा सकती है। पुन: इस सैद्धान्तिक खोज को दृष्टिगत रखते हुए

वैज्ञानिकों को इस बात पर पुन: विचार करना चाहिए कि तारों से इस ग्रह तक आने में प्रकाश को कितना समय लगता है। अब तक उनकी यह अभिधारणा रही है कि विश्व की आयु खरबों वर्षों की है और इस अभिधारणा के समर्थन में वे जो तर्क देते रहे हैं वह यह है कि प्रकाश 3×10^8 m/sec. की गति से यात्रा करता है तथा यह कि किसी दूरस्थ तारे से पृथ्वी तक आने में प्रकाश को लाखों प्रकाश वर्ष लग जाते हैं। किन्तु अब टेकिओनों की खोज के कारण विशेषत: यदि वैज्ञानिक टेकिओनों का पता लगाने में और उसका मापन करने में जिसे कि अब सेरेन्कोव विकिरण[2] (Cerenkov radiation) कहा जाता है सफल हो जाते हैं तो इनसे सम्बन्धित उनकी प्राक्कल्पनाओं या उनके सिद्धान्तों को पुनरीक्षित करना होगा।

इस सन्दर्भ में यह बात रोचक है कि वैज्ञानिकगण क्वासार (quasar) 3c-279 के वेग को प्रकाश के वेग से 10 गुना अधिक ($V < 10$ C) मानकर चले बिना

2. *1934 में एक रूसी भौतिकीदि पी.ए. सेरेन्कोव ने यह प्रतिवेदित किया था कि जब जल कांच तथा अभ्रक जैसे पारदर्शी पदार्थों को गामा विकरण से प्रभावित किया जाता है तो वे एक मन्द नीलाभ श्वेत दीप्ति उत्सर्जित करते हैं। प्रकाश मुख्यत: गामा किरणों की किरणावली की दिशा में उत्सर्जित होता है। इस प्रभाव के कारण उत्पन्न होने वाले विकिरण को 'सेरेन्कोव प्रभाव' (Cerenkov effect) कहा जाता है। फ्रोन्क तथा आई. ताम (Fronk and I. Tamm) नामक दो रूसी वैज्ञानिकों ने यह स्पष्टीकरण दिया कि सेरेन्कोव विकिरण फ्रेन्च सुपरसौनिक जैट वायुयान कनकार्ड द्वारा उत्पन्न प्रभाव जैसे एक प्रकार के विद्युत-चुंबकीय आघात-तरंग प्रभाव के कारण उत्पन्न होता है। सेरेन्कोव विकिरण तब उत्पन्न होता है जब कोई विद्युत आवेशित कण किसी माध्यम में से होता हुआ, उस माध्यम में प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक वेग से यात्रा करता है। सेरेन्कोव विकिरण उस माध्यम के परमाणुओं द्वारा उत्सर्जित किया जाता है। यह सोचा जाता है कि ऊर्जा से आवेशित कण, माध्यम से होते हुए, अपने मार्ग में कुछ परमाणुओं के इलेक्ट्रॉनों को प्रतिस्थापित कर देते हैं। विस्थापित परमाणवीय इलेक्ट्रॉनों द्वारा उत्सर्जित विद्युत-चुंबकीय विकिरण एक साथ मिलकर एक सुदृढ़ विद्युत-चुंबकीय तरंग बन जाता है जो कि आघात-तरंग जैसी होती है। वातावरण में सेरेन्कोव विकिरण ब्रह्माण्ड किरणों द्वारा उत्पन्न किया जाता है तथा उसे विशाल प्रकाश स्पंदों के रूप में देखा जा सकता है। सेरेन्कोव विकिरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुसंगत तथ्य यह है कि यह सोचा जाता है कि प्रभारित कण विद्युत चुंबकीय विकिरण को तब विकिरिणित करते हैं जब उनका वेग जिस माध्यम से होकर वे यात्रा कर रहे होते हैं उस माध्यम में प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक होता है।*

उससे होने वाले विकिरण के संप्रेक्षण के परिणामों की व्याख्या करना कठिन पा रहे हैं।

पदार्थ के साथ जो कुछ भी हो, फिर भी 'आत्मा' अन्य कारणों से भी अनन्त द्रुतता से उड़ सकती है। यह बात याद रखी जानी चाहिए कि 'आत्मा एक अधि-भौतिक सत्ता है' और इसलिए कोई भी भौतिक बात उसकी उड़ान को बाधित नहीं कर सकती या उसकी गति को धीमी नहीं कर सकती। गुरुत्वाकर्षण, घर्षण, पदार्थ के कण या प्रकृति की शक्तियाँ अदेही आत्मा को प्रभावित नहीं कर सकतीं। इसलिए उसकी गति लगभग अनन्त हो सकती है।

इसका एक अप्रत्यक्ष उप-प्रमेय (corollary) यह है कि 'आत्मा' वर्तमान, भूत या भविष्य को जान सकती है, या कम-से-कम वह यह जान सकती है कि वर्तमान में विश्व के किसी विशिष्ट भाग में क्या हो रहा है, क्योंकि वह वहाँ क्षणभर में पहुँच सकती है। किन्तु इसके लिए आत्मा को अधि-भौतिक कर्षण से अर्थात् अन्यों के प्रति आसक्ति से मुक्त होना चाहिए तथा उसका अधि-भौतिक दर्पण अर्थात् मन स्वच्छ होना चाहिए या उसकी प्रज्ञा (intellect) दैवीकृत (divinised) होनी चाहिए। इस प्रकार मन को विकसित करने की विशाल सम्भावना है। किन्तु तत्वमीमांसा (metaphysics) के इन तर्कों को यदि हम एक ओर रखें, तो आइन्स्टाइन ने भी कहा है कि यदि कोई प्रकाश (Light) की गति से अधिक तीव्र जा सकता है तो वह काल (Time) के तीनों पहलुओं (भूत, वर्तमान और भविष्य) को जान सकता है। ईश्वर यह जानता है क्योंकि वह अनन्त गति से —जिसे 'ईश्वरीय गति' कहा जाता है— यात्रा कर सकता है तथा उसमें कोई भी मानसिक आसक्तियाँ या अशुद्धतायें नहीं हैं।

एक पृथक सत्ता के रूप में 'आत्मा' का अनुभव

''आत्मा एक ऐसी सत्ता है, जिसका अस्तित्व देह से पृथक है। किन्तु उसने स्वयं को देह से अभिन्न मानने की ग़लती की है। तथापि, यदि कोई व्यक्ति 'आत्मा' का युक्ति-युक्त ज्ञान अर्जित करता है और आत्म-अभिमानी बनने की साधना करता है तो वह देह से अलग होने का तथा अपने पृथक अस्तित्व का अनुभव कर सकता है।''

— शिव भगवानुवाच

पूर्वगामी पृष्ठों से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मनुष्य बचपन से ही मिथ्या मूल्यों पर पलता और बढ़ता है। बचपन से ही जबकि बच्चे को बोलना सिखाया जाता है, उसे बताते हैं कि अमुक-अमुक उसके पिता या माता है अथवा वह एक लड़का है या लड़की है। जब बच्चा स्कूल में जाने लगता है तो उसे बताया जाता है कि वह भारतीय या अमेरिकन या ब्रिटिशर है। उसके देह की आयु ही उसकी आयु बताई जाती है।

मनुष्य को यह नहीं बताया जाता कि वह एक 'आत्मा' है तथा आत्मा के लोक से आया है, बल्कि चारों ओर से उस पर ग़लत जानकारी की बमबारी की जाती है जिससे कि मनुष्य स्वयं को अनजाने में ही 'देह' समझने लगता है। मनुष्य को बताया जाता है, ''तुम्हारा नाम जगदीश है। तुम मुल्तान के हो, तुम एक भारतीय हो और पुरुष हो।'' यह बात उसे इतनी बार बताई जाती है कि शीघ्र ही यह बात उसके मस्तिष्क में बैठ जाती है। मनुष्य को यही बातें उसकी शाला में तथा उसके महाविद्यालय में और उसके खेल के मैदान में भी सिखायी जाती हैं जिनसे कि वह विकृत ज्ञानस्वरूप बन जाता है जो स्व विषयक अज्ञान से भी बदत्तर चीज़ है।

इस तरह के अनुकूलन के कारण मनुष्य अपने देह को ही 'स्व' मान लेता है, जबकि तथ्य यह है कि चेतना स्वयमेव एक सत्ता है। 'चेतना'— रक्त, अस्थियों, आँखों या कानों का नाम नहीं है, बल्कि वह, वह है जो कि इन सभी से और स्वयं से भी अभिज्ञ है। यह आत्म-अभिज्ञ सत्ता, जो कि सोचने, समझने तथा निर्णय करने में सक्षम है, भौतिक स्वरूप की नहीं है, किन्तु वह पदार्थ को और भौतिक वस्तुओं को समझती है। आँख, कान और हृदय का प्रतिरोपण किया जा सकता है और यदि मस्तिष्क का बहुत-सा भाग सर्जरी द्वारा अलग कर दिया जाये तो भी स्वत्व की चेतना, जो कि "मैं हूँ" शब्दों का प्रयोग करती है, बनी ही रहती है।

तथापि मनुष्य अपने अज्ञान तथा ग़लत अनुकूलन के कारण स्वयं को देह समझने लगता है। इसके कारण अब वह अपने अस्तित्व के तथ्य को समझ नहीं पाता है। इसके अतिरिक्त, इस ग़लत अभिज्ञान ने विकृत विचारों तथा क्रियाओं को जन्म दिया है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य पीड़ा और कष्ट भोगता है।

देह-अभिमान ने विचारों को विकृत कैसे किया है तथा पीड़ाओं को जन्म कैसे दिया है?

'स्व' को देह मान लेने तथा उसके परिणामस्वरूप विचारों के विकृत हो जाने के कारण व्यक्तियों तथा समाज को कष्ट भोगने पड़ते हैं, क्योंकि देह-सचेतना ही उन सब प्रधान दुर्गुणों की जड़ है जो कि अन्य मनुष्यों के साथ मनुष्य के सम्बन्धों को दूषित तथा विकृत कर देता है और उन मानदण्डों को खंडित कर देते हैं जो कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक शान्ति कायम रखने के लिए अनिवार्य हैं। कुछ उदाहरण इसे स्पष्ट करेंगे।

मान लें कि एक छोटा बालक अपने पिता के साथ बचकाने ढंग से बातचीत कर रहा है, यद्यपि उसका आशय अपने पिता के प्रति असम्मान प्रकट करना नहीं है। पिता बुरा मान बैठता है, बौखला उठता है तथा घृणापूर्वक बालक को डाँटता है और तमाचे जड़ देता है, जबकि कुछ देर के लिए पिता यह भूल जाता है कि बालक अपनी नासमझी भरी बातों से उसका अपमान नहीं करना चाहता

था। पिता अपना सन्तुलन तथा अपनी शान्ति खो बैठता है क्योंकि वह क्रोधित हो जाता है और उसके मन में शारीरिक हिंसा के विचार जाग उठते हैं और वह क्रोधित इसलिए होता है क्योंकि देह-अभिमान के आधार पर वह शारीरिक क्रोध में आकर यह अनुभव करता है कि वह उम्र में बहुत बड़ा है और बालक आयु में बहुत छोटा है और इसलिए बालक से उसकी आयु द्वारा उस पर अधिरोपित सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए था। स्पष्ट है कि देह-अभिमान ने ही इस असुखद परिस्थिति का निर्माण किया, क्योंकि यदि पिता आत्म-अभिमान में होता तो उसने यह सोचकर स्वयं को शान्त रखा होता कि बालक के कोमल देह में एक आत्मा थी, जिसका उसका स्वयं का स्वभाव था, तथा जिसकी उसकी स्वयं की अभिवृत्तियाँ थीं, और यह कि आत्माओं के दृष्टिकोण से सभी बन्धु थे और सभी मनुष्य-आत्मायें कृपालु तथा दयालु परमात्मा के सन्तान होने के नाते अपने पिता की तरह दयालु तथा अनुकम्पावान (merciful) होनी चाहिए। शारीरिक आयु की सचेतना तथा पिता-पुत्र के शारीरिक सम्बन्ध की सचेतना से उत्पन्न अभिमान ने क्रूरता तथा कठोरता को जन्म दिया। इस छोटे-से उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कैसे घृणा और क्रोध के स्पष्ट मिश्रित तीव्र अभिमान सम्बन्धों में दरारें पैदा कर सकता है, व्यवहार में कड़वाहट पैदा कर सकता है, मित्रों को बेगाना बना देता है और हिंसा, अपराध तथा सामाजिक उथल-पुथल को जन्म देता है।

बाहुबल का अभिमान, शारीरिक सौन्दर्य का अभिमान, भौतिक स्वरूप की तथा देह से सम्बन्धित वस्तुओं का अभिमान मनुष्य से ऐसा व्यवहार करवाता है मानो कि वह नशे में हो। मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ अपने व्यवहारों में अनुपाति का बोध खो बैठता है और दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों में कटुता आ जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी राष्ट्र के शासन का प्रमुख हो और अभिमान की मदिरा से मदमस्त हो और दूसरे राष्ट्रों के साथ अहंकारी व्यक्ति की तरह व्यवहार करे तो कभी-कभी दूसरे राष्ट्रों के साथ उसके राष्ट्र के सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं और कभी-कभी युद्ध हो जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप जन और धन की भारी हानि होती

है। मनुष्य बहुधा यह भूल जाता है कि किसी विशिष्ट जाति —श्वेत, पीली, भूरी, या काली— या किसी विशिष्ट देश का होने का उसका अहंकार, जो कि उसके देह से उत्पन्न होता है, अनुचित है क्योंकि वह देह कदापि नहीं है बल्कि वह एक 'आत्मा' है और सभी आत्मायें आपस में भाई-भाई हैं, भले ही उनके देहों का रंग जो भी हो या उनके देह किसी भी देश में पैदा हुए हों। मनुष्य का देह एक वस्त्र जैसा है या मनुष्य का देह एक निवास स्थान जैसा है। क्या भाई-भाई भिन्न-भिन्न वस्त्र नहीं पहनते? विभिन्न स्थानों में नहीं रहते? और फिर भी एक-दूसरे से भाइयों की तरह प्रेम नहीं करते? केवल यदि सभी मनुष्यों को यह अहसास होता कि वे आत्मायें हैं और प्रेमपूर्ण, दयामय, कृपालु परमात्मा उनके पिता है और वे एक-दूसरे के भाई है तो 'विश्व-बन्धुत्व' (world-brotherhood) की भावना के लिए एक सुदृढ़ आधार निर्मित हुआ होता और वे मित्रता, एकता तथा प्रेम के बन्धन में बंध गये होते। तब युद्धों का प्रश्न ही नहीं उठा होता, क्योंकि हमारे पिता दयावान है, शान्तिदाता है तथा पापियों के उद्धारक है (न कि हन्ता; killer)।

देह-अभिमान से उपजी अशान्ति तथा पीड़ा का एक अन्य उदाहरण लीजिये। एक माता को अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर इतना मानसिक आघात पहुँता है कि उसका मन विह्वल हो जाता है और वह सामान्य अवस्था में लौटने के लिए किसी मनश्चिकित्सक से परामर्श करने की आवश्यकता महसूस करती है। वह स्वयं को इतना विह्वल महसूस करती है कि वह अपने दैनिक कार्य नहीं कर पाती और निरन्तर विलाप करती रहती है, "हाय पुत्र, हाय पुत्र", भले ही वह यह जानती है उसका पुत्र जिसके देह को जला या दफना दिया गया है, जीवित नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि उसका दु:ख अपने पुत्र के प्रति उसके मोह या उसकी आसक्ति के कारण है, और उसका मोह या उसकी आसक्ति देह-अभिमान पर आधारित शारीरिक सम्बन्ध के कारण है। देह-अभिमान ही जातिवाद, पक्षपात तथा यहाँ तक कि उग्र राष्ट्रवाद का रूप ग्रहण कर लेती है।

इसी प्रकार 'लालच' का जन्म भी देह-अभिमान के कारण होता है। एक

ऐसे मनुष्य का उदाहरण लीजिये जो कि बहुत सारी भू-सम्पत्ति तथा नकद धनराशि इकट्ठी कर रहा है और विशाल धन का संचय कर रहा है। ताकि वह अपने पुत्र के लिए ढेर सारी सम्पत्ति छोड़ जाए। वह स्वयं को देह मानकर अपने पुत्र के लाभ के लिए, अपनी पत्नी के लाभ के लिए या स्वयं के लाभ के लिए दूसरे लोगों का शोषण करता है। यदि उसके कारखाने में काम करने वाले दूसरे लोगों के पुत्र कुपोषण के कारण या चिकित्सा परिचर्या के अभाव में मर भी जायें तो भी उसे चिन्ता नहीं होती, किन्तु वह अपने स्वयं के पुत्र के लिए, देह-सम्बन्ध के आधार पर अधिक से अधिक धन का संचय करता है। स्पष्ट है कि उसकी क्रूरता तथा उसके शोषण का कारण है — एक ऐसे व्यक्ति के प्रति उसकी आसक्ति है जो व्यक्ति देह के आधार पर उससे उसके पुत्र के रूप में सम्बन्धित है।

इसी प्रकार 'कामासक्ति' का उदाहरण लीजिये। वह देह के रंग और अंगों की आकृति के प्रति आसक्ति का एक रूप है या कि वह काम-सचेतना से उत्पन्न होती है, जो कि देह से सम्बन्धित है। काम-वासना ही अति जनसंख्या का मूल कारण है और अति जनसंख्या के कारण ग़रीबी, बेरोजगारी, शालाओं, महाविद्यालयों, चिकित्सालयों तथा घरों की कमी जैसी समस्याओं का जन्म हुआ और मनुष्य का अवमूल्यन हो गया है तथा जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आ गई है। इसी प्रकार 'क्रोध' जो कि झगड़ों, हड़तालों, दंगों तथा युद्धों का कारण है, देह-अभिमान पर आधारित है। सामूहिक संहार के हथियार बनाने के लिए राष्ट्रों द्वारा अरबों डॉलर खर्च किये जाते हैं।

इसलिए, यदि पूरे विश्व में यह सन्देश फैले कि सभी आत्मायें हैं तो देह-अभिमान तथा जातिवाद, रंग-भेद, कामुक प्रवृत्तियाँ, शारीरिक मोह तथा आसक्ति, क्रोध और घृणा आदि का अस्तित्व नहीं रह जायेगा और मन के ये सभी रोग समाप्त हो जायेंगे और विश्व मनुष्य के लिए सुखद निवास हो जायेगा। विश्व गुलाबों का एक उद्यान बन जायेगा, जिसमें विभिन्न मनुष्य तथा राष्ट्र विभिन्न प्रकार के फूल जैसे होंगे जो उसमें सौन्दर्य और सामंजस्य का अंशदान करेंगे।

राजयोग का अभ्यास

इस परिस्थिति को सुधारने के लिए मनुष्य को राजयोग की साधना करनी होगी। ध्यान या योग 'स्व' को देह से निकालकर अपने स्वयं के स्वत्व में ले जाने की एक प्रक्रिया है। जब कोई व्यक्ति अपने मन में यह चिन्तन करता है कि वह एक आत्मा, एक अन्तर्विवेकशील स्वत्व है, तो वह परोक्षत: अपने देह के लिंग, आयु, राष्ट्रीयता आदि की स्थूल अभिज्ञता से रहित हो जाता है तथा उसे 'स्व' की वास्तविकता का अनुभव होता है।

देह के साथ स्व के तादात्मीकरण (identification) की यह घटना हमारे साथ न केवल इस जन्म में बल्कि ताम्र युग (Copper Age) या द्वापर युग या विश्व चक्र के द्वितीयार्द्ध का आरम्भ होने के समय से जितने भी जन्म हमने जीये उन सभी जन्मों में घटित हुई है। इस प्रकार हम अपने देह को ही 'स्व' मानते रहे हैं और हमारे व्यक्तित्वों पर त्रुटियों का एक पहाड़ खड़ा हो गया है। इसलिए हमें कल्पना करनी चाहिए कि जो ग़लत धारणा की पपड़ी हमारे व्यक्तित्वों पर जम गई है उसे दूर करने के लिए कौन-सा प्रयास आवश्यक है?

दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि 'राजयोग' वह प्रणाली तथा अभ्यास है जिसके द्वारा मनुष्य देह-अभिमान के परे जाकर स्वयं को स्व में स्थिर कर सकता है। इसका उद्देश्य आत्मा के सच्चे स्वरूप की अनुभूति करना तथा आनन्द तथा शान्ति प्राप्त करना है। राजयोग सत्यतापूर्ण सुझावात्मकता पर आधारित है जिसके द्वारा मनुष्य विकृत ज्ञान से मुक्ति पा सकता है और अब यह अनुभव कर सकता है कि वह न तो देह है, न ही इन्द्रिया हैं और न ही पदार्थ से निर्मित कोई वस्तु है; बल्कि वह एक आत्मा-अभिज्ञ, अन्तर्विवेकशील स्वत्व है जिसे 'आत्मा' कहा जाता है। राजयोग का अभ्यास करने के पूर्व मनुष्य देह-अभिमानी होता है और उसमें 'यह' चेतना और 'वह' चेतना होती है, किन्तु जब मनुष्य राजयोग का अभ्यास करता है तो उसकी चेतना स्वयं उसके स्मृति में पहुँच जाती है और इसलिए मनुष्य अपने शुद्ध तथा शान्तिपूर्ण स्वरूप में स्थित हो जाता है। मनुष्य तब यह अनुभव कर सकता है कि आत्मा देह से भिन्न सत्ता

है। तब आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए किसी भी सबूत की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इस प्रकार, राजयोग का अभ्यास मनुष्य को 'स्व' और 'विश्व' के सच्चे स्वरूप के बारे में सिखाता है। वह स्वत्व का अधि-भौतिक आन्तरिकीकरण (Inwardisation) है जो कि आत्मा को इन्द्रियों के विश्व से निकाल आत्मा के विश्व में जाने योग्य बनाता है। यह आत्मा को सभी विकृत विचारों तथा मनोरोगात्मक अवस्थाओं से मुक्त करता है तथा उसे शुद्धता और चिर शान्ति प्रदान करता है। वह मन को इस ग़लत धारणा से मुक्त करता है कि सुख और शान्ति विश्व की स्थूल वस्तुओं में स्थित हैं और इसके बजाय उसे आध्यात्मिक शान्ति तथा आनन्द का अनुभव प्रदान करता है।

यदि इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् पाठक 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करने के लिए प्रेरित होता है तथा 'स्व' को देह या मस्तिष्क मानने की ग़लती को सुधारने के लिए प्रेरित होता है और आत्म-अभिमानी बनने का तथा राजयोग का अभ्यास करता है और दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करता है तो लेखक यह समझेगा कि इस पुस्तक के प्रकाशन का प्रयोजन पूरा हो गया है।

आत्म-सचेतन — सुख की कुँजी है

''मनुष्य की अनेक बीमारियाँ— उसकी संवेगात्मक उथल-पुथल और मानसिक संक्षोभ (disturbance) के कारण पैदा होती हैं। संवेगात्मक उथल-पुथल — काम, क्रोध, अहंकार आदि कहलाने वाले दुर्गुणों में से किसी दुर्गुण के वश होने पर उत्पन्न होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप दूसरे लोगों के साथ उसके सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं या उसके मन में संक्षोभ की लहर पैदा हो जाती हैं। इसलिए, यह जान लो कि दुर्गुण अशान्ति तथा रोग के कारण हैं। यदि तुम 'स्व' में स्थित हो जाओ और स्व-स्थिति प्राप्त कर लो तो तुम्हें स्वास्थ्य प्राप्त होगा।''

— शिव भगवानुवाच

एक समय ऐसा था जब अनेक चिकित्सा व्यवसायियों ने रोग की समस्या पर, विशेषत: माइक्रोबों (microbes) या विषाणु (Virus) से उसके सम्बन्ध पर विचार किया और उन्होंने यह सोचा कि उनका कार्य रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं को समाप्त करने का पूरा-पूरा प्रयास करना है। नि:सन्देह, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता और वे यह भी जानते थे कि पर्यावरणात्मक, परिस्थितिकीय, आहारात्मक, उपापचयात्मक तथा हार्मोन असन्तुलन आदि रोग उत्पन्न करने वाले कारक हैं। इसलिए, उन दिनों में कीटाणुओं या विषाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों, विटामिन, कैल्शियम या खनिज लवणों की कमी के कारण उत्पन्न रोगों, आनुवंशिक रोगों, थायरॉयड के हार्मोन निर्गत (harmonal output) में कमी के कारण उत्पन्न रोगों, यकृत (Liver) आग्न्याशय की अपक्रियाओं (Pancreatic dysfunctions) द्वारा उत्पन्न रोगों आदि की चर्चा की जाती थी। इसके अतिरिक्त, वे लोग स्वास्थ्य तथा रोग की समस्या पर मानव-देह के विभिन्न खंडों सम्बन्धी उनके ज्ञान के आधार पर विचार करते थे और इसलिए उन्होंने रोगों को जो नाम दिये वे देह के विभिन्न भागों पर आधारित थे। उदाहरणार्थ, उन्होंने रोगों को हृद्

रोग (cordiac disease), तन्त्रिकीय रोग (neurological disease), रुधिर रोग (haematological disease) आदि नाम दिये या उन्होंने रोगों को किसी विशिष्ट कारणात्मक कारक के आधार पर नाम दिये, जैसे आहारात्मक कमी, हार्मोन अपक्रिया आदि। इस प्रकार उन्होंने रोग को पूरे देह का रोग मानने तथा सभी कारकों पर एक साथ विचार करने की आवश्यकता को सम्यक् महत्व नहीं दिया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें एक महत्वपूर्ण सत्य का अहसास नहीं था या वे उसे पर्याप्तत: नहीं समझ पाये थे और उन्होंने उस पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया था। अनेक रोगों को उत्पन्न करने या बढ़ाने या मनुष्य के स्वास्थ्य-लाभ को बाधित करने में मनुष्य के मन या मनुष्य के व्यक्तित्व के लक्षणों की जो भूमिका है उस पर ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि डॉक्टरों ने देह के एक विशिष्ट भाग का उपचार किया और औषधियाँ देकर या सर्जरी द्वारा उसके रोग के लक्षणों को समाप्त करने के पश्चात् किसी अन्य रोग को पाया और जब उन्होंने उस रोग का उपचार किया तो रोगी ने शिकायत की कि एक और रोग उभर आया है। इन तीनों रोगों का कारण मानसिक था जिस पर डॉक्टरों ने कदापि ध्यान नहीं दिया था। श्वसनी अस्थमा (Bronchial Asthama), मधुमेह (Diabetes mellitus), अपस्चर (Ideopathic epilepsies), पार्किन्सन या तन्त्रिकीय रोग (Parkinsonism or Neurological ailments), थाइरॉयट टॉम्सिकोसिस (Thyroid toxicosis), अनिद्रा रोग (Insomania), अधीरता (Nervousness) आदि ऐसे कुछ रोग हैं जो कि उदाहरणों के रूप में बताये जा सकते हैं।

मन तथा देह के बीच विसामंजस्य (Disharmony)

यद्यपि उन दिनों में जब डॉक्टरों को केवल देहक्रिया-विज्ञान (Physiology), देह रचना-विज्ञान (Anatomy), रोग हेतु विज्ञान (Aetiology), औषध प्रभाव विज्ञान (Pharmacology), रोग विज्ञान (Pathology), जीव-रसायन (Bio-chemistry), जीव-भौतिक (Bio-physics) आदि में प्रशिक्षण दिया जाता था, किन्तु उन्हें मन तथा देह-तन्त्र की अन्त:क्रिया की अन्तर्दृष्टि नहीं दी गई थी। वे दिन आज भी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुए हैं। फिर भी यह देखना उत्साहवर्धक

है कि पिछले लगभग दो दशकों के दौरान मनःश्चिकित्सकों, तन्त्रिका विज्ञानियों तथा अन्य लोगों द्वारा मन तथा देह की अन्तःक्रिया से देखने की दिशा में बहुत कार्य किया गया है तथा बायो-इंजीनियरों ने ई.ई.जी. जैसे साधन प्रदान किये है, जिसके ज़रिए हम मनुष्य के मन की अवस्था को देख सकते हैं। अब रोग को देह और मन के बीच के विसामंजस्य (Dis-harmony) के रूप में देखा जाता है, जहाँ यह माना जाता है कि समस्थिति (Homeostasis), हार्मोनो के स्त्राव तथा श्वसन क्रियाओं आदि को कायम रखने में 'मन' की एक बड़ी भूमिका है। अब मनःश्चिकित्सक, रोगनिदान विद्, शल्यचिकित्सक-गण आदि यह बात अधिकाधिक जानते जा रहे हैं कि मनुष्य के विचारों, संवेगों, व्यक्तिगत लक्षणों, संस्कारों, आदतों, वासनाओं, वृत्तियों आदि के कारण मनुष्य का स्वास्थ्य नष्ट हो सकता है। यद्यपि, प्राचीनकाल से ही एक साधारण मनुष्य भी यह जानता था कि मनुष्य के मन की अवस्था का, जो कि क्रोध, दुश्चिन्ता, भय आदि के रूप में प्रकट होती है, मनुष्य के हृदय, श्वसन तन्त्र, पाचन तन्त्र आदि को प्रभावित करती है, तथापि अब इनका मापन करने तथा सम्पूर्ण घटना के क्रिया-विज्ञान तथा रचना-विज्ञान को समझने के साधन उपलब्ध हैं। अब अनेक चिकित्सा विज्ञान अनुसन्धानकर्त्ता इस बात पर बल दे रहे हैं कि मनुष्य के संवेगों, उसके व्यवहार, उसके दृष्टिकोण तथा उसकी आदतों का रोग या स्वास्थ्य के साथ एक बड़ा सम्बन्ध है।

अधश्चेतक (Hypothalamus) की केन्द्रीय भूमिका है

अब यह बात भी समझी जा रही है कि मानव-चेतना एक सम्मिश्र सत्ता है जो कि (1) सामान्य अभिज्ञता (general awarness), (2) संवेगात्मक चेतना (emotional consciousness) तथा (3) विश्लेषणात्मक चेतना (analytical consciousness) की समरूपता से निर्मित है तथा यह कि ये तीनों बातें अधश्चेतक से किसी-न-किसी रूप में जुड़ी हुई हैं। पहले यह समझा जाता था कि सामान्य अभिज्ञता ऊपरी मस्तिष्क-वृन्त के जालाकार ऊतक की एक क्रिया है तथा संवेगात्मक तत्वों को लिंबिक संरचना (limbic structure) से सम्बन्धित माना

जाता था, जबकि विवेचक चेतना या तार्किक तथा अमूर्त चिन्तन को प्रान्तस्था क्षेत्र की क्रिया माना जाता था, किन्तु अब यह ज्ञात है कि वस्तुत: ये अधश्चेतक से सम्बन्धित हैं जो कि पियूष ग्रंथि (प्रमुख ग्रंथी) के ज़रिए एण्डोक्राइन ग्रंथियों (endocrine glands) को तथा स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र (automatic nervous system) को तथा समस्थिति क्रियाओं को भी नियन्त्रित करती है, और इसलिए मनुष्य के विंचार, उसकी भावनायें तथा उसके मनोभाव (अधश्चेतक तथा पियूष ग्रंथि के ज़रिए) मनुष्य के स्वास्थ्य या रोग की अवस्था का अवधारण करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। ऐसे अनेक चिकित्सा विज्ञानियों के नाम उद्धृत किये जा सकते हैं जिन्होंने इस सम्बन्ध में विस्तृत अनुसन्धान किये हैं और प्रभाव सर्वोपरि अभिलिखित किये हैं।

मानसिक कारक ही प्रधान कारक है

इन अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप, अब यह बात सर्व विदित है कि कतिपय रोगों के मामले में 'मानसिक कारक मुख्य, प्रधान तथा महत्वपूर्ण कारक है।' इन विशिष्ट रोगों को मानसिक-कायिक रोग (Psycho-somatic disease) कहा गया है। जिन लोगों ने 'राजयोग' के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य किया है उन्होंने यह पाया है कि राजयोग अनेक रोगों को कम करने में, अनेक रोगों का उपचार करने में तथा अनेक रोगों को समाप्त करने में सहायक है। ये निष्कर्ष बहुत मूल्यवान हैं क्योंकि यद्यपि राजयोग के व्याख्याकारों ने पहले भी यह कहा था कि राजयोग अनेक रोगों का उपचार करता है, तथापि ई.ई.जी., ई.ई.सी. (EEG, EEC) आदि जैसे आधुनिक साधनों ने आधुनिक अनुसन्धानकर्त्ता को 'राजयोग' के लाभजनक प्रभावों को स्वयं अभिनिश्चित करने योग्य बना दिया है।

यह पाया गया है कि राजयोग के ज़रिए आत्म-अभिमान के संवर्धन तथा देह-अभिमान की समाप्ति से दुश्चिन्ता की अवस्थाओं तथा अवसाद की समाप्ति हो जाती है और अनुरूप जैव-रासायनिक परिवर्तनों के साथ, मनुष्य में सही प्रकार की अभिज्ञता उत्पन्न होती है जिसकी प्रधान विशेषता है— विभिन्न न्यूरोह्यूमरों (Nuero-humors) तथा सम्बन्धित एन्जाइमों का उचित रक्त-स्तर

तथा हृत-श्वसन क्रियायें (cardio-respiratory functions) तथा अन्त:स्रावी शक्ति (endocrine vitality)। उससे अनिद्रा रोग में उल्लेखनीय राहत मिलती है, अधीरता कम हो जाती है या समाप्त हो जाती है और नींद में सुधार होता है, रक्त चाप कम हो जाता है और मनुष्य को अच्छे स्वास्थ्य का अनुभव होता है। वह रक्त-प्रवाह तथा ऊतक-ऑक्सीजनीकरण की गति में सुधार लाकर महत्वपूर्ण अंगों तथा अन्त:स्रावी ग्रंथियों को पुन: स्थापित करता है। वह समुचित स्वायत्त समन्वयन प्रेरित करता है और इस प्रकार स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के एकीकरण तथा समन्वय के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को रोकता है। सर्वोपरि राजयोग 'मन' को जो प्रशान्ति प्रदान करता है वह बहुत मूल्यवान है; वह मस्तिष्क की क्रियाओं को सुधारता है और एकाग्रता तथा स्पष्ट तर्कना की शक्ति को बढ़ाता है।

राजयोग के लाभ

देह तथा मन पर पड़ने वाले राजयोग के प्रभावों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान कार्य किया गया है उससे यह प्रकट होता है कि राजयोग शारीरिक क्षमता में सुधार लाता है तथा विश्रान्त (Relaxed) शारीरिक तथा मानसिक अवस्थाओं के प्रति मनुष्य की प्रवृत्ति में सुधार आता है। यह भी देखा गया है कि अस्वेच्छिक तन्त्रिका तन्त्र की क्रिया में परानुकम्पी अभिभाविता की ओर विवर्तन होता है, जो कि सामान्यत: ऊर्जा-संरक्षण के अनुकूल होता है। राजयोग के ये तथा अनेक लाभ हैं [1] जिनमें से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लाभ है — अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति [2] जिसकी पैसों से कीमत आँकी नहीं जा सकती। राजयोग के अभ्यास से आत्मा बुरी घनी-आदतों के बन्धनों से तथा विकारी संस्कारों के [3] परतों से

1. *Anand B.K., G.S. Chhina, and B. Singh, 1961 "Some aspects of electro-encephalograplric studies in yogis", Electro-enceph, Clin. Neuro-physiology, 134.*
2. *Wallace, R.K. 1970, Physiological effects of Transcendental Meditation. Science 167: 1751-54.*
3. *Datey K.K., S.N. Deshmukh, C.P. Dalvi and S.L. Vinekar, 1969, Shavasana— Yogic exercise in the management of hypertension. Angiology 20:325-333.*

मुक्त हो जाता है और उसके विचार शुद्ध बन जाते हैं। राजयोग के सिवाय और कोई भी अभ्यास यह परिवर्तन नहीं ला सकता। समाज की यह एक दयनीय अवस्था है कि योग से होने वाले शारीरिक-भौतिक लाभ के बारे में बहुत चर्चा की जाती है, परन्तु उसके आध्यात्मिक एवं मानसिक लाभ की ओर गौणता से देखा जाता है। सहज राजयोग का अभ्यास आत्मा को स्वायत्त तेजस्विता तथा गौरवपूर्ण शालीनता धारण करने में समर्थ बनाता है; और वह दुःख-चिन्ता से छुटकारा पाता है तथा वह अपने निजी दिव्यगुणों के उच्चतम शिखर पर पहुँचता है।

मन एवं देह की पारस्परिक क्रिया और सुख तथा स्वास्थ्य का प्रश्न

''देह-अभिमान मनुष्य के मन में भय, क्रोध, तनाव तथा अस्थिरता की अवस्था उत्पन्न करता है। यह जानो कि तुम एक 'आत्मा' हो। आत्म-अभिमान आत्मा को पवित्र बनाता है तथा सकारात्मक विचारों को जन्म देता है जिससे उसे शान्ति मिलेगी।''

— शिव भगवानुवाच

यह समझने के लिए कि नकारात्मक विचारों के कारण मनुष्य किस प्रकार पीड़ित होता है तथा सकारात्मक चिन्तन से वह सुखी और अधिक स्वस्थ कैसे हो सकता है, इस के लिए उस तन्त्र को समझना लाभ जनक होगा जिस तन्त्र के ज़रिए विचार देह को प्रभावित करते हैं तथा देह विचारों को प्रभावित करता है। मन एवं देह की पारस्परिक क्रिया के तन्त्र को समझने पर इस कहावत को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है कि ''जैसा तुम सोचोगे वैसा ही बनोगे'' और 'पाप' तथा 'पुण्य', 'आसुरी' तथा 'दैवी' या 'अशुभ' तथा 'शुभ' की संकल्पना अंशत: स्पष्ट हो जाती है।

आइये, इसे समझने के लिए हम एक ठोस उदाहरण लें। एक मनुष्य अपने ड्राइंग रूम में आराम से बैठा हुआ है। अचानक उसके कमरे में एक क्रोधित मनुष्य पिस्तौल लिए हुए प्रवेश करता है। उसे देखकर आराम करता हुआ मनुष्य स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है और डर जाता है तथा उसके मन में यह विचार उठता है कि ''लड़ो'' या ''भागो'' और फिर एक सेकण्ड में ही वह तुरन्त भागकर पास के ही कमरे में चला जाता है और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लेता है। इस क्षण, इस तनावपूर्ण नाटक में, यदि उसके श्वसन, हृदय-स्पंदन, नाड़ी की गति को मापा जाता तथा ई.ई.जी. भी लिया गया होता और पिस्तौलधारी

क्रोधित व्यक्ति में भी ये माप आदि लिये जाते तो दोनों ही व्यक्तियों में वे लक्षण देखे जाते जो कि दबाव और तनाव की परिस्थिति वाले मनुष्य में देखे जाते हैं। आइये, अब हम जीव-विज्ञान तथा तन्त्रिका तन्त्र विज्ञान के प्रकाश में यह देखे कि भयभीत मनुष्य के मामले में यह कैसे हुआ?

पारस्परिक क्रिया का तन्त्र

हम संक्षेप में इसे बतायेंगे। सबसे पहले, आँखों के ज़रिए इन्द्रिय-उद्दीपन हुआ और फिर अक्षि तन्त्रिकाओं तथा दृष्टिपटल ने भाग लिया और भयभीत व्यक्ति के मस्तिष्क में पिस्तौलधारी मनुष्य का 'बिंब' उभरा। संकेतों द्वारा या विद्युत रूप में तथा रासायनिक रूप में कूटबद्ध सन्देशों (तन्त्रिका तन्त्र तथा रक्त के ज़रिए हस्तक्षेपित) द्वारा उत्तेजित होने वाली पहली चीज़ मस्तिष्क के उप-प्रान्तस्था क्षेत्र में स्थित अधश्चेतक था। अधश्चेतक में ही कतिपय प्रक्रियाओं द्वारा क्रोधित पिस्तौलधारी सम्बन्धी पिछली जानकारी के साथ मेल किया गया और उनका ऐसी भंगिमाओं (Postures) के साथ भी मेल किया गया जो भंगिमायें क्रोध, दुर्भावना तथा अपराध के अभिप्राय से सम्बन्धित हैं। अधश्चेतक ने जो कि लिंबिक तन्त्र का एक भाग है, लगभग तत्काल लिंबिक तन्त्र को सन्देश भेज दिए थे तथा उसके साथ मिलकर सम्पूर्ण घटना का निर्वचन किया गया तथा वैसा अनुभव किया गया जैसा कि पहले अनुभव किया गया था।

हमें यह जानना चाहिए कि हिप्पोकैम्पस तथा लिंबिक तन्त्र विगत प्रत्यक्षणों के 'अभिलेख' या उनकी 'स्मृति' के प्रतिधारणा से घनिष्ठत: सम्बन्धित है, और इसलिए विगत अभिलेख या 'स्मृति' के प्रकाश में वे हमारे विचार को और हमारे मन को या हमारी आत्मा को जो कि, जैसा कि पूर्ववर्ती अध्यायों में स्पष्ट किया गया है, अधश्चेतक में स्थित है। अधश्चेतक में स्थित मन या आत्मा अब परिस्थिति का प्रत्यक्षण तथा अनुभव उद्दीपनों, सन्देशों या संकेतों तथा अतीत की स्मृती आदि द्वारा अवधारित एक विशिष्ट ढंग से करता है। इस प्रकार, हमारे प्रत्यक्षण या विचार हमेशा आशा या निराशा, विश्वास या अधीरता, विश्रान्ति या तनाव आदि से सम्बद्ध होते हैं। जब, विगत स्मृतियों तथा उद्दीपनों के सही

या ग़लत निर्वचन के साथ मिश्रित ये भावनायें हमारे देह तथा हमारी आत्मा में भौतिक, रासायनिक, विद्युत तथा मानसिक परिवर्तन लाती हैं।

होता यह है कि आत्मा अनुभव करती है, जैसा कि वह करती है। अधश्चेतक में उद्भूत होने वाले तन्त्रिका उद्दीपन न्यूरोह्यूमरल (neurohumoral centres) केन्द्रों को, उदाहरणार्थ, अधश्चेतक में मध्यम उत्सेध (Median eminence) को उत्तेजित करते हैं, क्योंकि यह बात याद रखी जानी चाहिए कि अधश्चेतक तन्त्रिका तथा हार्मोनों का स्राव करने वाली एन्डोक्राइन ग्रंथियों के बीच एक सेतु है। अब मध्यम उत्सेध (median eminence secretes) एक रासायनिक पदार्थ स्त्रवित करता है जो कि ए.सी.टी.एच. (ACTH) विमोचक कारक कहलाता है। यह स्राव रक्त से होकर पश्च पियूष ग्रंथि को जाता है, जिसे कि हाइपोफाइसिस (Hypophysis) भी कहा जाता है और जो अधश्चेतक के साथ एक संयोजन का निर्माण करता है। पियूष ग्रंथि वह हार्मोन स्त्रवित करती है जो कि एड्रिनो-कोटिको-ट्रॉफिक हार्मोन कहलाता है, जो कि संक्षेप में ए.सी.टी.एच. (ACTH) कहलाता है। एसीटीएच रक्त से होते हुए यात्रा करता है और उदर में अधिवृक्क प्रान्तस्था (Adrenal cortex) को उद्दीपन करता है। अधिवृक्क प्रान्तस्था जो कि एक अन्तस्त्रावी ग्रंथि (Endocrine gland) है,अन्तिम एड्रेनल कॉर्टिकाएड हार्मोनों (Adrenal corticoid hormones) मुख्यत: कोर्टिसोल (Cortisol) तथा कोर्टिकोस्टैरोन (Corticosterone) को स्त्रवित करती है। ये हार्मोन वह ऊर्जा उपलब्ध कराते हैं जो कि अपापचय प्रक्रिया को परिवर्तित कर देह के अभ्यनुकूली तन्त्र के लिए आवश्यक होती है। ये हार्मोन अन्य प्रभाव भी उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ, वे अन्य एन्जाइम अनुक्रिया को सुविधाजनक बनाते हैं। तथा प्रतिरक्षित प्रतिक्रियाओं को दबा भी सकते हैं।

अब, इस सन्दर्भ में स्मरण रखी जाने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि विचार और भाव जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है, सकारात्मक हो सकते हैं या नकारात्मक हो सकते हैं। प्रेम, एकता, शान्ति तथा सुख के विचार या भाव 'सकारात्मक' कहलाते हैं, जबकि दुश्चिन्ता, दु:ख, भय, निराशा आदि के

विचार 'नकारात्मक' होते हैं। ये नकारात्मक भावनायें तन्त्रि जनक या मनोजात **प्रतिबल** (Neurogenic or Psychogenic stress) **के कारण होते हैं, जिन्हें केवल 'प्रतिबल'** (Stress) **कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि नकारात्मक भावनायें स्थिर अवस्था को परिवर्तित कर देती है तथा वे देह के अभ्यनुकूल तन्त्र को चुनौती देती है या उस पर प्रतिबल** (Stress) **डालती हैं।** वह ऊपर वर्णित तन्त्र के ज़रिए कार्य करती है तथा कोर्टिसोल तथा कोर्टिकोस्टैरोन जैसे कोर्टिकॉएड हार्मोनों को स्त्रवित करने के अतिरिक्त वह अन्य हार्मोन भी उत्पन्न करता है जैसे (1) सोमेटोट्रॉफिक हार्मोन (Somatotrophic hormone) या संवृद्धि हार्मोन, जो कि प्रतिरक्षा-प्रतिक्रिया को भी उद्दीप्त करता है तथा (2) कटोकोलेमाइन्स (Catecholamines) अर्थात् अधिवृक्कीय (Adrenaline) तथा गैर-अधिवृक्कीय (Non-adrenaline)। ये रक्त चाप, रक्त परिसंचरण की गति तथा नाड़ी की गति को बढ़ा देते हैं तथा केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र को उद्दीप्त करते हैं।

स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र के ज़रिए प्रतिबल आमाशयान्त्र तन्त्र (Gastro-intestinal system and the vascular system) तथा वाहिका तन्त्र (Vascular system) को प्रतिकूलत: प्रभावित करता है। इसीलिए पेप्सी व्रण (Peptic ulcer), मूर्च्छा आने (Fainting) आदि घटनायें होती हैं।

प्रतिबल (Stress) — रोग उत्पन्न करता है

अब यह बात रोगनिदान-विज्ञान की दृष्टि से या रोग हेतु विज्ञान की दृष्टि से अवधारित हो चुकी है कि नकारात्मक विचारों के कारण उत्पन्न प्रतिबल कुअभ्यानुकूलन (maladaptation) का रोग उत्पन्न करता है, जिसे प्रतिबल रोग कहा जाता है। अतिरूधिर तनाव (Hypertension), पेप्टिक अल्सर, श्वसनी अस्थमा के कुछ मामले, क्षोभशील बृहदन्त्र (Irritable colon), ब्रणात्मक बृहदान्त शोध (Ulcerative colitis), संधिवात-संधिशोथ (Rheumatoid arthritis) आदि कुछ ऐसे रोग हैं। अब ऐसे अधिकाधिक रोगों को अभिज्ञात किया जा रहा है जिनमें मनोवैज्ञानिक प्रतिबल मुख्य या एक अंशदायी कारक होता है। यह सूची अब बहुत व्यापक हो गई है और उसमें संक्रमण (Infection) भी शामिल हैं।

बीमारियों के बारे में पूर्वतर यह समझा जाता था कि वे रोगजनक कारकों के कारण उत्पन्न होती हैं, किन्तु अब यह समझा जा रहा है कि प्रतिबल उनका एक प्रेरणार्थक या उग्रकारी कारक है। यह भी पाया गया है की कैन्सर या गुल्म (Tumours) के पीछे जो मुख्य कारक हैं उनमें से एक कारक अभिघात (Trauma) या तीव्र प्रतिबल का अनुभव हो सकता है। इसके विपरीत, यह देखा गया है कि प्रतिबल का निरसन या मनोजात सुधार होने से रुग्णता का उपचार होता है या उसका बढ़ना कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, यह भी दर्शाया गया है कि प्रतिबल वयोवृद्धि-प्रक्रिया को बढ़ा देता है। यह पाया गया है कि प्रतिबल डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. (DNA and RNA) के संयुग्मन को बढ़ाता है और कोशिकाओं में आर.एन.ए. की मुक्त-त्रिज्या (Free radial) को बढ़ा देता है और इस प्रकार कोशिकाओं के जीवन विस्तार को कम कर देता है और वयोवृद्धि प्रक्रिया को तीव्र कर देता है। इस प्रकार वह जीवन-प्रत्याशा तथा स्मृति तथा मानसिक क्षमता तथा स्थैर्य को कम कर देता है।

अभिवृत्तियाँ (Attitudes) तथा विचार (Thoughts) — इस नाटक में मुख्य अभिनेता हैं

यह बात भूली नहीं जानी चाहिए कि इस महा नाटक में विचार, उद्दीपनों का निर्वचन, अतीत की स्मृतियाँ तथा अभिवृत्तियाँ (विश्वासों, निर्वचनों तथा स्मृतियों पर निर्मित) मुख्य अभिनेता हैं। हमारी अभिवृत्तियों तथा हमारे विचारों पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर होता है, हमारी सुखद भावनायें, हमारी विश्रान्ति, हमारी शान्ति तथा हमारी जीवन-प्रत्याशा निर्भर होती है। ये ही बातें हमारी स्थिर अवस्था, जिसे निर्विकारी स्थिति या 'स्थितप्रज्ञता' (मानसिक सन्तुलन) कहा जाता है, और यही बातें हमारे अभ्यानुकूली तन्त्र, हमारे तन्त्रिका तन्त्र, हमारे हार्मोन तन्त्र, हमारे वाहिका तन्त्र, हमारे श्वसन तन्त्र और वस्तुतः हमारे देह की प्रत्येक कोशिका को चुनौती देते हैं तथा उन पर दबाव डालती हैं। इसलिए वे विचार, जो कि निराशा, दुश्चिन्ता, क्रोध, अभिघात, अति रुधिर तनाव उत्पन्न करते हैं जो नकारात्मक विचार कहलाते हैं। संस्कृत भाषा में

धार्मिक सन्दर्भ में इन्हें विकार कहा जाता है। इन्हें ही सभी दु:खों का कारण कहा जाता है। सामाजिक, आर्थिक तथा अन्तर्वैयक्तिक क्षेत्र पर इनके जो प्रभाव पड़ते हैं उन पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। विचार अधिभौतिक होने के कारण वे अधिभौतिक मन या आत्मा से सम्बन्धित होते हैं। यदि मन में उसकी आदत, प्रवृत्ति, अभिवृत्तियों या उसके विश्वासों के कारण निरन्तर, बहुधा या यहाँ तक कि कभी-कभी नकारात्मक विचार उठते हैं तो उसे 'पतित' 'अध:पतित' या यहाँ तक कि 'महापतित' आत्मा भी कहा जाता है; क्योंकि अपने नकारात्मक विचारों के कारण वह न केवल स्वयं को बल्कि दूसरों को भी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा पहुँचाता है जिनके साथ उसका व्यवहार होता है। सदोष विश्वासों के कारण मनुष्य में सदोष अभिवृत्तियों का जनन होता है और सदोष अभिवृत्तियों के कारण उद्दीपनों या परिस्थितियों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया अत्यधिक अपर्याप्त या सदोष होती है, वह असमुचित तथा नकारात्मक होती है। यही सारे कष्टों का कारण है और यह सब, जैसा कि पूर्वगामी पृष्ठों में समझाया गया है, 'देह-अभिमान' के कारण होता है अर्थात् इस ग़लत विश्वास के कारण होता है कि स्व जो कि "मै हूँ" शब्दों का उपयोग वह देह के लिये करता है।

इसलिए इस दोष से मुक्त होकर ही हम शान्ति तथा सुख की प्राप्ति के लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं। यदि मनुष्य स्वास्थ्य चाहता हो तथा मन की विश्रान्त तथा शान्तिपूर्ण अवस्था चाहता हो और अन्य लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखना चाहता हो तो राजयोग उसे यह स्थिति प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है। इस पुस्तक के चौथे भाग में यह दर्शाया जायेगा कि कैसे राजयोग मन की स्थिर तथा निर्विकार स्थिति लाता है और स्वास्थ्य पर उसका अच्छा प्रभाव कैसे पड़ता है। यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहेंगे कि ई.ई.जी. के ज़रिए किये गये प्रेक्षणों से यह बात निर्णायक रूप से प्रकट हुई है कि राजयोग तथा आत्म-अभिमान से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

अधश्चेतक में आसीन आत्मा अधश्चेतक के अपवाही संयोजनों के ज़रिए कैसे कार्य करती है?

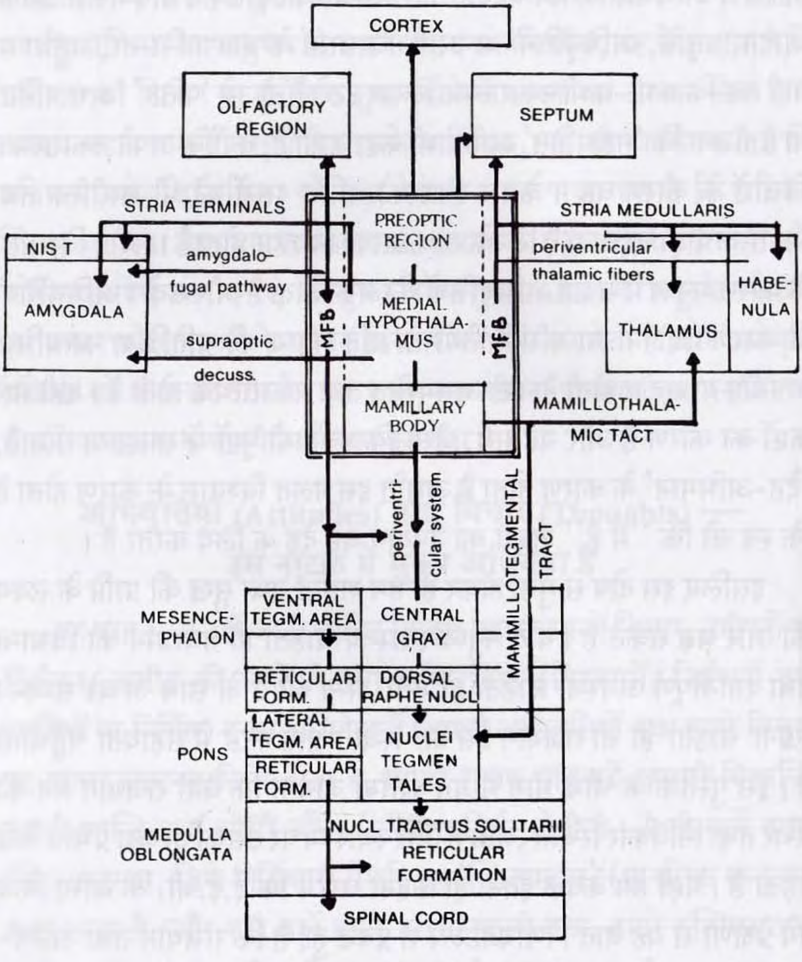

ऊपर दिया गया आयोजन आकृति (Schematic Diagram) अधश्चेतक के विभिन्न संयोजन दर्शाती है

आत्मा अधश्चेतक के ज़रिए कार्य करती है

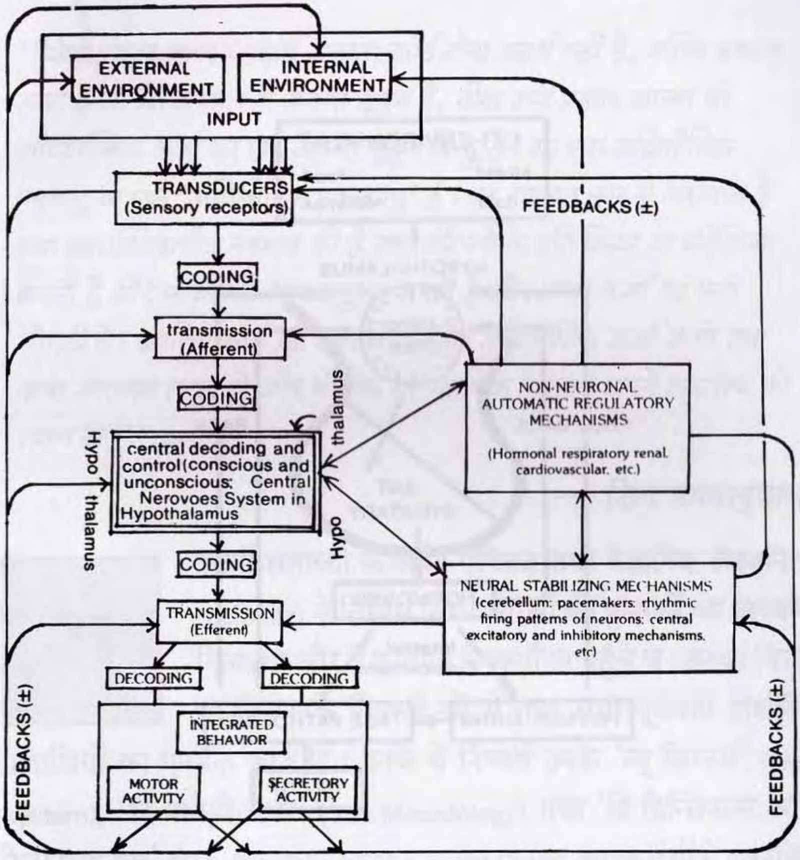

उपर्युक्त आयोजन आकृति यह दर्शाती है कि कैसे अधश्चेतक 'मस्तिष्क के भीतर मस्तिष्क' है। सम्पूर्ण मस्तिष्क तथा तन्त्रिका तन्त्र का शेष भाग आन्तरिक पर्यावरण या बाहरी पर्यावरण से प्राप्त सूचना का सतत प्रसंस्करण करता है। अन्तिम अवकूटन (Decoding) अधश्चेतक में चेतन या अति-चेतन स्तर पर होता है। चिह्नत स्थान देखिए।

आत्मा अधश्चेतक में निवास करती है जहाँ वयोवृद्धि घड़ी (Aging clock) अवस्थित है

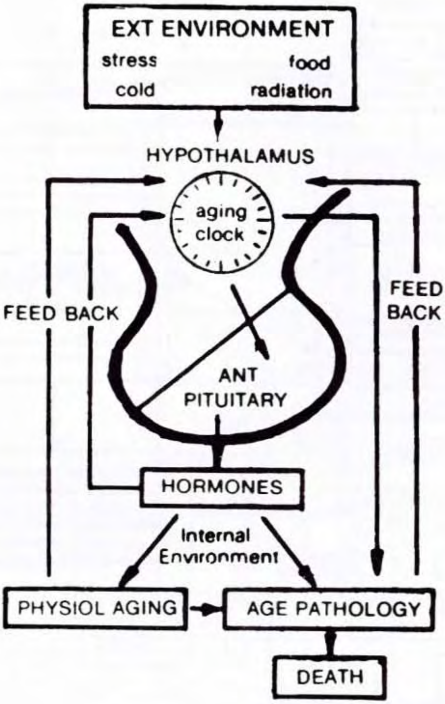

उपर्युक्त आयोजन आकृति में वयोवृद्धि प्रक्रिया के एक प्रधान कारक के रूप में हार्मोनों का अधश्चेतकीय विनियमन दर्शाती है। निःसन्देह, अन्य कारक भी है। आत्मा, जिसकी गत कर्मों के परिणाम स्वरूप एक विशिष्ट आयु होनी होती है, अधश्चेतक में निवास करती है जहाँ वयोवृद्धि घड़ी अवस्थित है।

आत्मा तथा ईश्वर मोनैडों (Monads) के रूप में

"जिस प्रकार समस्त पदार्थ अन्ततः कोई ठोस पदार्थ नहीं है, बल्कि प्रकाश ऊर्जा है जो कि आकार में अनन्त सूक्ष्म है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी आध्यात्मिक ऊर्जा का एक अनन्त सूक्ष्म बिन्दु है। वह एक अधिभौतिक परमाणु या एक 'अधिभौतिक प्रकाशाणु' है। वह शाश्वत रूप से विद्यमान है तथा अन्तर्विवेकशील स्वभाव की है तथा उद्दीपनों के प्रति क्रिया या प्रतिक्रिया करती है और सोचती है तथा अनुभव करती है और अपने कर्मों का फल भोगती है। इसलिए स्वयं को अन्तर्विवेकशील अधिभौतिक ऊर्जा जानो तथा सारा आलस्य त्याग दो और भौतिक या पदार्थिक के साथ अपने तादात्म्य को त्याग दो।"

— *शिव भगवानुवाच*

सत्रहवीं शताब्दी के जर्मन गणितज्ञ तथा वैज्ञानिक लेइबनित्ज (Leibnitz) ने विविध विद्या-शास्त्रों की पुस्तकों का अध्ययन किया था और वे कतिपय निष्कर्षों पर पहुँचे थे। उनका विचार था कि उनके निष्कर्ष नये थे तथा सभी पूर्ववर्ती दार्शनिक प्रणालियों का पुनर्मेल करते थे। उनके ये निष्कर्ष उनके 'न्यू सिस्टम' (New system), 'दि मोनैडोलॉजी' (The Monadology) तथा 'दि प्रिन्सिपल्स ऑफ नेचर एन्ड ग्रेस' (Ther Principles of Nature and Grace) नामक ग्रंथों में प्रकाशित हुये। उनके कुछ प्रत्यय कुछ-कुछ परमात्मा शिव की महावाक्यों से मिलते-जुलते हैं, जिन्होंने हाल ही के दशकों में ब्रह्मा बाबा के माध्यम से अपनी नई प्रणाली प्रकट की है। आत्मा तथा ईश्वर के सम्बन्ध में लेइबनित्ज के विचारों तथा इन ईश्वरीय महावाक्यों में समानता होने के कारण हम संभ्रम में पड़ जाते हैं, किन्तु यदि परिपूर्णतः अध्ययन किया जाये तो यह दिखाई देता है कि इन दो प्रणालियों के बीच बहुत असमानता है और यह असमानता महत्वपूर्ण है।

लेइबनित्ज ने मोनैडों के संप्रत्यय का निरूपण कैसे किया?

लेइबनित्ज ने यह अनुभव किया था कि विज्ञान में किसी भी घटना की व्याख्या गति (Motion) की अनुपस्थिति में या गति से उसके सम्बन्ध के बिना नहीं कि जा सकती। गति के संप्रव्यय की व्याख्या करने के लिए लेइबनित्ज ने बल (Force) की विद्यमानता को अभिधारित करना आवश्यक समझा। लेइबनित्ज ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि विश्व 'बल' की एक अभिव्यक्ति है। इसके पूर्व, लोग यह सोचते थे कि पदार्थ (Matter) द्रव्य (Substance) था और यह कि उसकी आधारभूत संघटक इकाई परमाणु था और यह कि पदार्थ अवकाश (Space) घेरता है अर्थात् उसमें विस्तार का आवश्यक गुण होता है। किन्तु लेइबनित्ज ने अब यह निष्कर्ष निकाला था कि वैश्विक द्रव्य है बल, और यह कि उसका आधारभूत गुण यह नहीं है कि वह अवकाश घेरता है बल्कि यह कि उसमें क्रियाशीलता होती है। इसलिए संमात्रा तथा गति (Mass and motion) की अविनाशिता के सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि 'बल' (Force) की अविनाशिता का सिद्धान्त स्वीकार किया जाये। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि तत्वों को द्रव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी तत्व का विस्तार विभाज्य होता है तथा यह कि जो विभाज्य हो वह द्रव्य नहीं हो सकता। इसलिए लेइबनित्ज ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि बल, जो कि सरल अविभाज्य है, वास्तविक द्रव्य है। द्रव्य के स्वरूप के इस मूलभूत विश्वास से उन्होंने मोनैडों के सिद्धान्त का निरूपण किया।

मोनैड क्या हैं?

लेइबनित्ज द्वारा निरूपित मोनैडों का सिद्धान्त— भौतिकी, गणित तथा धर्मदर्शन के अध्ययन को प्रतिबिंबित करता है। भौतिकी में परमाणु को वह निम्नतम इकाई समझा जाता है जो कि वास्तविक है, किन्तु परमाणु अविभाज्य नहीं है। हम यह जानते हैं कि परमाणु को इलेक्ट्रॉनों, प्रोटॉनों, आदि में खंडित किया जा सकता है। इसलिए, लेइब्रनित्ज के मतानुसार, परमाणु को द्रव्य नहीं

कहा जा सकता। गणित में 'बिन्दु' अविभाज्य है किन्तु वह वास्तविक सत्ता नहीं है, इसलिए लेइबनित्ज ने यह सोचा कि न तो परमाणु द्रव्य हो सकता है और न ही बिन्दु द्रव्य हो सकता है, क्योंकि द्रव्य को वास्तविक भी होना चाहिए और अविभाज्य भी होना चाहिए। लेइबनित्ज ने एक नया शब्द 'मोनैड' गठा। उन्होंने यह कहा कि 'मोनैड' एक ऐसे वास्तविक तथा अविभाज्य द्रव्य को दिया गया नाम है जो कि 'बल' के स्वरूप का है। लेइबनित्ज यह कहते हैं कि असंख्य मोनैड हैं तथा उनमें से प्रत्येक मोनैड का अपना-अपना अस्तित्व है तथा प्रत्येक मोनैड की अपनी-अपनी चेतना है और वह अविभाज्य तथा आध्यात्मिक है, क्योंकि प्रत्येक मोनैड के पास सचेतन ऊर्जा का एक केन्द्र है, यद्यपि विभिन्न मोनैडों की चेतना की मात्रा में व्यापक भिन्नता है। इस प्रकार मोनैड न तो भौतिक सत्तायें हैं और न ही गणितीय सत्तायें हैं बल्कि यह कहा जा सकता है कि वे 'अधिभौतिक परमाणु' हैं। यही बात इस संप्रत्यय को ईश्वरीय ज्ञान के बीच संभ्रम उत्पन्न कर देता है। यदि हम मोनैडों के लक्षणों के बारे में अधिक समझें तो हम मोनैडों के स्वरूप के बारे में अधिक स्पष्टत: समझ सकेंगे।

मोनैडों के लक्षण

हम पहले ही यह कह चुके हैं कि मोनैड अनन्त हैं तथा यह कि वे सरल अविभाज्य अधिभौतिक बिन्दु हैं जो कि एक ओर तो भौतिकी के परमाणुओं से भिन्न हैं और दूसरी ओर गणित के बिन्दुओं से भिन्न हैं। लेइबनित्ज उनकी निम्निलिखित विशेषतायें बताते हैं :—

1. **रूपविहीन, विस्तारविहीन :** चूँकि मोनैड अधिभौतिक बिन्दु हैं, इसलिए वे कोई भी अवकाश नहीं घेरते अर्थात् उनका कोई भी विस्तार नहीं है। इसलिए वे रूपविहीन भी हैं। ये मोनैड एकीकृत होकर वस्तुओं का निर्माण करते हैं, और जब मोनैडों का विघटन या अवखण्डन होता है तो वस्तु खंडित हो जाती है किन्तु स्वयं मोनैड ऐसी प्रक्रियाओं से प्रभावित नहीं होते।

2. **शाश्वत :** मोनैड हमेशा विद्यमान रहे हैं तथा शाश्वत रूप से विद्यमान रहेंगे। इसलिए, प्रत्येक मोनैड में अतीत, वर्तमान और भविष्य बीज रूप में

उपस्थित है। प्रत्येक मोनैड दूसरे मोनैड से स्वतन्त्र है तथा वह नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह अविभाज्य तथा अखण्डनीय है।

3. गतिशील : मोनैड स्वभावत: गतिशील हैं, क्योंकि जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वे बल के अधिभौतिक बिन्दु हैं और बल ही गतिमान होता है। भले ही कुछ मोनैड निष्क्रिय या अक्रिय प्रतीत होते हैं, फिर भी उनकी निष्क्रियता अन्य बलों द्वारा किये जाने वाले प्रतिरोध के कारण उन पर अधिरोपित होती है और इसलिए वह वास्तविक नहीं है। प्रत्येक मोनैड सक्रिय स्वरूप का है, किन्तु उनकी क्रियाशीलता किसी बाधा द्वारा अवरोधित हो सकती है।

4. अद्वितीय : प्रत्येक मोनैड अद्वितीय तथा स्वतन्त्र है।

5. मोनैडों के तीन प्रवर्ग : तीन प्रवर्गों के मोनैड हैं :—

(1) **प्रथम प्रवर्ग** में वे मोनैड शामिल हैं जो भौतिक कहलाते हैं। लेइबनित्ज कहते हैं कि इन मोनैडों में भी चेतना होती है, भले ही उनमें जो चेतना होती है वह निम्नतम स्तर पर होती है। उनमें यह चेतना इतने निम्न स्तर पर होती है कि यह कहा जा सकता है कि वे 'अचेतन' हैं। विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न भौतिक वस्तुयें ऐसे मोनैडों के संयोजन का परिणाम हैं, जिन्हें उनकी चेतना की बहुत निम्न अवस्था के कारण 'निद्रित मोनैड' भी कहा जा सकता है। इसका यह अर्थ है कि बाहरी तौर पर मोनैड अचेतन या भौतिक प्रतीत होते हैं, तथापि भीतर से वे आध्यात्मिक हैं और उनमें चेतना का एक क्रोड़ (Core) होता है।

(2) **द्वितीय प्रवर्ग** में वे मोनैड शामिल हैं जिनके पास चेतना तथा स्मृति होती है। ऐसे मोनैड प्रत्येक जीवित प्राणी में पाये जाते हैं। लेइबनित्ज कहते हैं कि जीवित प्राणियों में मन तथा स्मृति इन मोनैडों द्वारा प्रदत्त हैं। स्मृति के कारण ये मोनैड अतीत और वर्तमान के बीच एक सहचार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसलिए ऐसे मोनैडों को 'मन-मोनैड'कहा जा सकता है। निद्रित मोनैडों या भौतिक मोनैडों की तुलना में इनकी चेतना का स्तर उच्च होने के कारण उन्हें 'स्वप्नदर्शी

मोनैड' भी कहा जा सकता है। लेइबनित्ज ने इस प्रवर्ग को और भी विभाजित किया है, जिनमें से एक प्रवर्ग में वे मोनैड शामिल हैं जो कि पौधों में होते हैं तथा दूसरे प्रवर्ग में वे मोनैड शामिल हैं जो कि पशुओं में होते हैं।

(3) **तृतीय प्रवर्ग** में वे मोनैड शामिल हैं जो कि मानव प्राणियों में पाये जाते हैं। इन मोनैडों के कारण ही मनुष्य अविष्कार कर सकता है।, उच्च और सूक्ष्म विचार रख सकता है और शाश्वत सत्यों को जान सकता है। मनुष्य के मोनैड पशुओं से भिन्न प्रवर्ग के होते हैं क्योंकि पशुओं में ये मोनैड नहीं होते। इन मोनैडों के कारण ही मनुष्य — ईश्वर तथा विश्व विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उसे समझ सकता है और उसमें एक तर्कसंगत बोध होता है।

(4) इन तीन या चार प्रवर्गों के अतिरिक्त एक अन्य मोनैड है— हम उसे 'ईश्वर' कहते हैं। वह 'मोनैड मोनैडम' (Monad Monadum) अर्थात् मोनैडों का मोनैड है। हम उसके लक्षणों पर आगे चलकर चर्चा करेंगे।

(6) खिड़की रहित : लेइबनित्ज कहते हैं कि मोनैड 'खिड़की रहित' हैं। उनके कहने का यह अर्थ है कि मोनैडों के पास ऐसी कोई खिड़की नहीं है जिसके ज़रिए कोई वस्तु मोनैडों में प्रवेश कर सके या मोनैडों को छोड़ कर बाहर जा सके। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है। कि मोनैड किसी भी बाहरी स्त्रोत से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते; दूसरी ओर समस्त ज्ञान मनुष्य के मन में आरम्भ से ही नवजात अवस्था में उपस्थित होता है। अनुभव ज्ञान निर्मित नहीं करता, वह केवल नवजात ज्ञान को प्रकाश में लाने में सहायता करता है। संवेदन (Sensations) समस्त ज्ञान की प्रथम अवस्था है तथा उनका अनुभव एक अस्पष्ट रूप में होता है, विवेक उन्हें स्पष्ट करता है। ईश्वर सर्वोच्च विवेक (Supreme Reason) है, क्योंकि ईश्वर ज्ञानपूर्ण है।

(7) विश्व के दर्पण की तरह सक्रिय : लेइबनित्ज के मतानुसार, मोनैड के पास दो प्रकार की क्रियाशीलता है। वे इनमें से एक को प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception) तथा दूसरी को तृष्णता (Appetition) कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान का अर्थ यह है कि

प्रत्येक मोनैड विश्व का निरूपण करता है या विश्व को प्रतिबिंबित करता है। लेइबनित्ज के शब्दों में 'वह विश्व का दर्पण है'। प्रत्येक मोनैड का निरूपण व्यष्टिक होता है — कुछ मोनैड अधिक स्पष्टत: निरूपण या प्रतिबिंब नहीं करते हैं और अन्य मोनैड कम स्पष्टत: निरूपण या प्रतिबिंबित करते हैं। जैसे-जैसे मोनैड ऊंचे उठते हैं वैसे-वैसे उनकी स्पष्टता बढ़ती है। जागृत मोनैड मनुष्य तथा ईश्वर में अधिक प्रत्यक्ष ज्ञानशील होते हैं। पौधों तथा ऐसे ही अन्य जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान निम्नतर तथा अस्पष्ट होता है। चूँकि प्रत्येक मोनैड अपनी स्वयं की सीमित तथा व्यष्टि परक दृष्टि निरूपित करता है, इसलिए विभिन्न मोनैडों द्वारा उसे विभिन्नत: निरूपित किया जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के कारण ही विभिन्न मोनैड परस्पर सम्बद्ध हैं।

मोनैडों का दूसरा लक्षण है 'तृष्णता'। मोनैड की सहज शक्ति ही उसे विकसित होने या गतिशील होने योग्य बनाती है। कोई भी बात बाहर से मोनैड को प्रभावित नहीं करती, कोई भी परिवर्तन भीतर से आता है। मोनैड की स्व-चलिष्णुता (Self-mobility) 'तृष्णता' (Appetition) कहलाती है।

विश्व में निरन्तरता

मोनैडो के बारे में ऊपर जो कुछ भी कहा गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि मोनैड भौतिक तथा आध्यात्मिक विश्व या 'जीवित' तथा 'अजीवित' वस्तुओं की अधिभौतिक ईकाइयाँ हैं। एक सिरे से 'निद्रित मोनैडों' से आरम्भ होकर दूसरे सिरे पर स्थित 'सर्वोच्च मोनैड' तक के मोनैडों के विभिन्न प्रवर्गों के कारण रचना में निरन्तरता है। इस निरन्तरता में, भौतिक मोनैडों से पादप मोनैडों तक, पशु मोनैडों तक, मानव मोनैडों तक, ईश्वर तक जो कि उच्चतम प्रत्यक्ष ज्ञान तथा तृष्णता या चलिष्णुता, बल तथा चेतना है, जो क्रमश: बढ़ती जाती है। आइये, अब कुछ विस्तारपूर्वक ईश्वर के लक्षणों का उल्लेख करें।

ईश्वर — सर्वोच्च मोनैड

लेइबनित्ज के मतानुसार, **ईश्वर— मोनैडों का मोनैड है।** अपने मोनैड के रूप में ईश्वर एक व्यक्ति है किन्तु वह अन्य मोनैडों का अधिष्ठान है। ईश्वर परिपूर्ण तथा वास्तविक अस्तित्वमान है। उसमें वे सभी गुण उनके अत्यन्त परिपूर्ण रूप हैं जो कि व्यष्टिक मोनैडों में पाये जाते हैं। ईश्वर साधारण मोनैड के परिवर्तन तथा विकास के अध्यधीन नहीं है। वह स्व-अस्तित्वमान है तथा शाश्वत है तथा उसका ज्ञान परिपूर्ण है। ईश्वर सभी वस्तुओं का, समस्त समय तथा अवकाश में एक झलक में प्रत्यक्षण कर सकता है।

2. विश्व का रचयिता : लेइबनित्ज की एक बात विशेष ध्यानाकर्षण करती है। लेइबनित्ज कहते हैं कि सभी मोनैडों की रचना ईश्वर द्वारा की गई है तथा ईश्वर की इच्छा से उनका विनाश हो सकता है। निःसन्देह, ईश्वर के सिवाय कोई भी उनकी रचना या उनका विनाश नहीं कर सकता। ईश्वर उनका निर्माण या विनाश कर सकता है। कभी-कभी लेइबनित्ज अपने लेखों में यह कहते हैं कि सभी मोनैड ईश्वर की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसलिए, कुछ दार्शनिक लेइबनित्ज को अद्वैतवादी (Monists) कहते हैं, जबकि अन्य दार्शनिक उन्हें द्वैतवादी (Pluralist) कहते हैं, क्योंकि लेइबनित्ज ने यह भी कहा है कि मोनैड शाश्वत हैं तथा वे व्यष्टिक रूप से शाश्वत हैं।

3. परिपूर्णतः सक्रिय : ईश्वर परिपूर्ण क्रियाशीलता है; उसमें अक्रियता का लेशमात्र भी नहीं है। इस रीति से ईश्वर वास्तविक तथा विशुद्ध क्रिया (Actus Purus) है।

4. ईश्वर का कोई भी संप्रत्यय नहीं है : लेइबनित्ज यह कहते हैं कि मनुष्य के पास ईश्वर के परिपूर्ण स्वरूप का कोई भी संप्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य सीमित है जबकि ईश्वर अनन्त है। वे यह कहते हैं कि ईश्वर तर्क बुद्धि का निषेध नहीं करता, किन्तु तर्क बुद्धि से भी उसे समझा नहीं जा सकता। मनुष्य ईश्वर को जानने का बहुत प्रयास करता है किन्तु सफल नहीं हो सकता। विश्व के विभिन्न धर्म उनके अबोध की विभिन्न मात्रायें दर्शाते हैं क्योंकि उनमें से प्रत्येक ने ईश्वर का अपने-अपने ढंग से भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रत्यक्षण किया है।

5. ईश्वर सामंजस्य स्थापित करता है : ईश्वर के बारे में जानने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि, लेइबनित्ज के मतानुसार, ईश्वर ने सामंजस्य (Harmony) का निर्माण किया। जब ईश्वर ने मोनैडों की रचना की तो उसने उन्हें ऐसा स्वभाव दिया कि उनके लिए एक-दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्वक रहना संभव बना दिया। इसलिए इस पूर्व स्थापित स्वभाव के कारण ही जब कभी देह में अर्थात् देह के मोनैडों में कुछ होता है तब-तब उसका प्रभाव मन के मोनैडों को संप्रेषित किया जाता है और मानसिक मोनैडों में होने वाली क्रिया देह के मोनैडों में प्रतिबिंबित होती है। इसलिए यद्यपि मोनैड 'खिड़की रहित' है तथापि वे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

लेइबनित्ज के मतानुसार, सामंजस्य या संश्लेषण का यह सिद्धान्त (Principle of Harmony or synthesis) सर्वत्र कार्य करता है। इस सिद्धान्त के कारण असंख्य मोनैड एक विलक्षण विभिन्नता का निर्माण करते हैं और फिर भी अधिकतम विभिन्नता में अधिकतम एकता भी है, क्योंकि ईश्वर ने सृष्टि की उच्चतम संभावनाओं के साथ विश्व की रचना की है। इस अवस्था में विश्व और अनिष्ट (Evil) के बारे में जैसा कि लेइबनित्ज उनके विषय में सोचते हैं कुछ अधिक बातें जानना बेहतर होगा।

विश्व और अनिष्ट (Universe and Evil)

मोनैडों की निरन्तरता में ईश्वर से पीछे की ओर लौटने पर हम प्रारंभिक पदार्थ, जो कि विश्व का 'मटीरिया प्राइमा' (Materia prima) है, के मोनैडों तक पहुँचते हैं। यद्यपि ईश्वर परिपूर्ण क्रियाशीलता या विशुद्ध क्रियाशीलता है, जिसका प्रत्यक्षण तथा ज्ञान स्पष्टतम है, तथापि भौतिक मोनैडों के स्तर पर गति की अपेक्षा जड़त्व अधिक है।

लेइबनित्ज के मतानुसार, ईश्वर द्वारा विश्व की रचना सर्वोत्तम संभावना के आधार पर की गई थी। ईश्वर परिपूर्ण होने के कारण उसे उन सभी वैकल्पिक रूपों का ज्ञान है जिन रूपों का विश्व संभव है। इसलिए, ईश्वर सर्वोत्तम संभावना को चुनता है। इसी कारण से हम विश्व में व्यवस्था और पद्धति पाते हैं।

इस सिद्धान्त में, प्राकृतिक नियम भी ईश्वर द्वारा निर्मित किये गये थे। इसलिए ईश्वर भी उनमें कोई अनिष्ट परिवर्तन नहीं करता। ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर इन नियमों का अनुसरण करता है। मोनैडो तथा नियमों की रचना कर देने और सामंजस्य स्थापित कर देने के पश्चात् वह विश्व में हस्तक्षेप नहीं करता। लेइबनित्ज ने न तो स्पष्टत: यह कहा है कि विश्व का निर्माण कर चुकने पर ईश्वर विश्व से कोई सरोकार नहीं रखता और न तो यह कहा है कि ईश्वर प्रत्येक घटना में कुछ सक्रिय भाग लेता है। लेइबनित्ज कहते हैं कि अनिष्ट (Evil) — विश्व का एक आवश्यक भाग है, क्योंकि यद्यपि ईश्वर ने सर्वोत्तम संभव विकल्प को चुना, तथापि कुछ अनिष्ट अपरिहार्य था। ईश्वर ने विश्व में अधिकतम संभव विविधता, एकता और सामंजस्य का निर्माण किया क्योंकि अपरिमित को विश्व में जो परिमित रूप विद्यमान हैं उन रूपों के ज़रिए कभी भी समुचित रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि विश्व अपूर्ण हो, भले ही इससे बेहतर कुछ भी नहीं किया जा सकता था।

लेइबनित्ज का यह विचार है कि 'अनिष्ट' (Evil) परिसीमाओं का परिणाम है। वह उसके जैविक में पीड़ा और रोगों के रूप में, व्यवहार में भ्रष्टाचार के रूप में, वास्तविकता में आध्यात्मिक अनिष्ट के रूप में अभिव्यक्त होता है। लेइबनित्ज कहते हैं कि ईश्वर और अनिष्ट एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और प्रत्येक क्षेत्र में अनिष्ट सचेतन हो सके हैं। यदि अनिष्ट संभव न हो तो ईश्वर भी संभव नहीं हो सकता।

ऊपर हमने लेइबनित्ज के दर्शन की मुख्य विशेषतायें संक्षेप में बताई हैं। आइये, अब हम उसे ईश्वर के महावाक्यों से तुलना और विषमता में देखें।

ईश्वर के महावाक्यों से तुलना तथा विषमता

प्रथमत:, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ईश्वर के महावाक्यों के अनुसार, आत्मायें सचेतन ऊर्जा का अधिभौतिक बिन्दु हैं, जो कि अविभाज्य तथा शाश्वत हैं, वे भौतिक मोनैडों से लेइबनित्ज द्वारा यथा कथित चेतना की मात्रा के सम्बन्ध में नहीं बल्कि गुणवत्ता के सन्दर्भ में भिन्न हैं। ईश्वरीय श्रुतियों

(महावाक्यों) के अनुसार, भौतिक मोनैड— आध्यात्मिक मोनैडों से बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि भौतिक मोनैडों में चेतना होती ही नहीं।

इसके अतिरिक्त, पौधों की आत्मायें नहीं होतीं अर्थात् वे आध्यात्मिक मोनैड नहीं हैं जबकि पशुओं की आत्मायें होती हैं। पशुओं के मोनैड मानवों के मोनैडों के रूप में विकसित नहीं हो सकते, क्योंकि मानव आत्मायें एक भिन्न प्रवर्ग की हैं।

ईश्वर ने आत्माओं को निर्माण नहीं किया; आत्मायें अजात (Unborn) हैं

द्वितीयत:, ईश्वर ने भौतिक तत्वों या भौतिक मोनैडों या मटीरिया प्राइमा का निर्माण नहीं किया, और न ही ईश्वर ने आध्यात्मिक मोनैडों या आत्माओं का निर्माण किया। ईश्वर के प्रकटीकरणों के अनुसार, भौतिक मोनैड भी तथा व्यष्टिक आत्मायें भी अरचित और शाश्वत हैं। ईश्वर उन्हें नष्ट भी नहीं करता। यद्यपि लेइबनित्ज यह कहते हैं कि विविधता में एकता तथा सामंजस्य लाने के प्रयोजनार्थ ईश्वर ने उनके स्वभाव की रचना की, तथापि ईश्वर ने उनके स्वभाव की रचना भी नहीं की। ईश्वरीय महावाक्यों के अनुसार, उनके स्वभाव भी शाश्वत है तथा उनके अस्तित्व भी समकालीन है। यदि ईश्वर ने एक आत्मा 'क' की रचना आत्मा 'ख' की अपेक्षा अधिक अच्छे स्वभाव के साथ की होती तो आत्मा 'ख' का यह आक्षेप करना उचित होता कि ईश्वर ने उसके प्रति अन्याय किया है, किन्तु यह तथ्य बना ही रहता है कि यद्यपि लेइबनित्ज यह सोचते हैं कि ईश्वर ने अपनी इच्छानुसार एक विशिष्ट स्वभाव के साथ मोनैडों की रचना की, तथापि ईश्वर ने आत्माओं का निर्माण उस प्रकार से नहीं किया।

आत्मायें 'खिड़की रहित' नहीं हैं

तृतीयत:, आत्मायें 'खिड़की रहित' नहीं हैं। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि आत्माओं में ज्ञान प्रसुप्त या नवजात रूप में होता है, तथापि आत्मायें ईश्वर से— जो कि परिपूर्ण सत्य है— ज्ञान प्राप्त करती हैं। ईश्वर का ज्ञान आत्माओं

पर प्रभाव अंकित करता है, और इसलिए आत्मायें बाहरी प्रभाव से पूर्णतः अप्रभावित नहीं रहतीं। ईश्वर की श्रुतियाँ (महावाक्य) आत्माओं को श्रेष्ठ अनुभव प्रदान करती हैं तथापि प्रत्येक आत्मा अपने स्वयं के स्वभाव के अनुसार लाभ प्राप्त करती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनके स्वभाव की रचना ईश्वर द्वारा नहीं की गई थी बल्कि वह उसके स्वयं के विचारों, विश्वासों तथा कार्यों से निर्मित उसका स्वयं का व्यष्टिक व्यक्तित्व है। इस प्रकार नवजात ज्ञान तथा श्रुतियाँ या बाहरी प्रेक्षण आदि भी अपनी-अपनी पूरक भूमिका का निर्वाह करते हैं।

वस्तुतः, लेइबनित्ज के विचारों में असंगति है क्योंकि एक ओर तो वे यह कहते हैं कि मोनैड शाश्वत तथा स्वतन्त्र हैं और दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि उनके स्वभाव की रचना ईश्वर द्वारा की गई थी। जो रचा गया था वह शाश्वत कैसे हो सकता है? और जो कि किसी दूसरे की इच्छा पर निर्भर हो वह स्वतन्त्र कैसे हो सकता है? इसके अतिरिक्त, यदि ईश्वर ने कतिपय ऐसे मोनैडों की रचना की हो जिनका स्वभाव नैतिक स्तर पर बहुत निम्न हो तो ईश्वर को परिपूर्ण ईश्वर कैसे कहा जा सकता है? यह कहना ईश्वर पर यह आरोप लगाना है कि ईश्वर ने जान-बूझकर निम्न नैतिक स्तर के मोनैडों या निम्न स्तर की आत्माओं की रचना की।

ईश्वर के स्वभाव के बारे में लेइबनित्ज का संभ्रम

इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतित होता है कि लेइबनित्ज ईश्वर के स्वभाव तथा कार्यों के बारे में संभ्रमित हैं। एक ओर तो वे यह कहते हैं कि ईश्वर ने अधिभौतिक मोनैडों या आत्माओं की रचना की, और दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि अपरिमित (ईश्वर) ने स्वयं को सीमित के रूप में (आत्माओं तथा मोनैडों के रूप में) अभिव्यक्त किया और ठीक इसी कारण से विश्व में अनिष्ट विद्यमान है। *इस प्रकार, एक ओर तो वे यह सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि ईश्वर समस्त शेष का रचयिता है और दूसरी ओर वे अद्वैतवाद, जो कि भारत के रामानुजाचार्य के विचार के सदृश है, प्रस्तुत करते हैं।* इससे ईश्वर विषयक उनका विचार द्वयर्थक

हो जाता है। वस्तुतः, उन्होंने यह कहा है कि मानव-आत्मायें सीमित होने के कारण ईश्वर को, जो कि परिपूर्ण तथा असीमित है, जान नहीं सकतीं, और उनका यह कथन स्वयं उन पर भी लागू होता है।

मानवीय सृष्टि पर ईश्वर के प्राकट्य (अवतरण) के बारे में कोई भी कथन नहीं

तथापि, सबसे बड़ी समस्या यह है कि लेइबनित्ज ने थोड़ा-सा भी संकेत नहीं दिया है कि क्या ईश्वर अपने बारे में सत्य बताने के लिए विश्व में आता है। यदि ईश्वर परिपूर्ण है तो उसे अपनी रचना अर्थात् अपनी आध्यात्मिक सन्तान के प्रति अनुकम्पावान तथा प्रेमपूर्ण भी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यदि ईश्वर परिशुद्ध सक्रियता है तो उसकी अनुकम्पा को तथा उसके प्रेम को सक्रिय भी होना चाहिए तथा उन्हें क्रिया के रूप में अभिव्यक्ति पानी चाहिए। इसलिए लेइबनित्ज के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार, ईश्वर अपना ज्ञान, अपनी सक्रिय अनुकम्पा तथा अपने सक्रिय प्रेम के ज़रिए व्यक्त करना चाहिए। किन्तु लेइबनित्ज इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहते। यह कहना एक बात है कि प्रत्येक धर्म ने ईश्वर विषयक सत्य को खोजने का प्रयत्न किया और उसे अंशतः पाया है, किन्तु यह कहना बिल्कुल दूसरी बात है कि ईश्वर अन्ततः सत्य को प्रकट करता है क्योंकि मानव उसे पाने में असफल रहे हैं। लेइबनित्ज ने बाद वाली बात का उल्लेख नहीं किया है।

पुनः, प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर ने मोनैडों की और या उनके व्यष्टिक स्वभाव की रचना की तो ईश्वर ने किस सामग्री से उनकी रचना की? यदि मोनैड या मटीरिया प्राइमा का अस्तित्व पहले से ही था तो इस सन्दर्भ में शब्द 'रचना' का कोई भी अर्थ नहीं है। यदि मोनैड पहले से ही थे और ईश्वर ने उन्हें केवल स्वभाव दिया तो प्रश्न यह है कि क्या उसके पूर्व मोनैडों का कोई स्वभाव नहीं था या उनके कोई गुण नहीं थे? वस्तुतः, इस विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिनका स्वयं का तात्त्विक स्वभाव न हो या जिसके कोई आन्तरिक तथा अमिट गुण न हों। इसलिए यह कहना ग़लत होगा कि ईश्वर ने सामंजस्य का निर्माण

करने के लिए, मोनैडो तथा उनके निर्माण करने के लिए, मोनैडों तथा उनके स्वभाव की रचना की।

इस सन्दर्भ में इस बात पर ध्यान किया जाना चाहिए कि लेइबनित्ज यह सोचते हैं कि पृथक-पृथक मोनैड हैं जो कि स्मृति तथा प्रत्यक्ष ज्ञान की योग्यता का निर्माण करते हैं, जबकि ईश्वर का कहना है कि स्मृति तथा प्रत्यक्ष ज्ञान स्वयं आत्मा की अन्तर्निहित योग्यतायें हैं, उनका निर्माण 'स्वप्न दर्शी' या 'जागृत' मोनैडों द्वारा नहीं किया जाता।

लेइबनित्ज अनिष्ट की समस्या को हल करने में असफल रहे हैं

पुनः, लेइबनित्ज ने यह कह कर कि ईश्वर प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अनिष्ट का निर्माता है, अनिष्ट के अस्तित्व के प्रश्न का सन्तोषप्रद समाधान नहीं किया है; बल्कि अनेक सम्बद्ध प्रश्न उठाये हैं। यह कहने से कि ईश्वर ने उपलब्ध संभावनाओं में से सर्वोत्तम संभावनाओं को चुना तथा सर्वोत्तम संभव विश्व की रचना की, समस्या का उपशमन नहीं होता। लेइबनित्ज के पास यह जानने का कोई भी स्रोत नहीं है कि ईश्वर द्वारा मूलतः निर्मित विश्व-व्यवस्था परिपूर्ण थी। उसमें कोई भी अनिष्ट नहीं था, भ्रष्टाचार का कोई चिह्न नहीं था, कोई भी नैतिक, जैविकीय, वित्तीय या मनोवैज्ञानिक दोष नहीं थे और परिणामी पीड़ा नहीं थी। उसे विश्व-व्यवस्था का 'स्वर्णयुग' कहा जाता था। लेइबनित्ज ने यह नहीं कहा है कि आरंभ में अनिष्ट विश्व-दृश्य में अनुपस्थित था और यह कि बहुत बाद में अनिष्ट ने प्रवेश किया, और न ही उन्होंने ऐसा कोई संकेत दिया है कि जब एक बार अनिष्ट विश्व में प्रवेश कर जाता है तो वह विस्तार में और मात्रा में उर्ध्व रूप में तथा क्षतिज रूप में बढ़ता है और जब वह चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो इच्छुक मानवों के सहयोग से ईश्वर द्वारा उसका उन्मूलन कर दिया जाता है। इसके बजाय, ईश्वर द्वारा सामंजस्य के निर्माण का कार्य मानव-जाति को ज्ञान प्रदान करने के कार्य का औचित्यपूर्ण है जिससे कि मनुष्य अपने स्वभाव को दुःसाध्य से सुसाध्य में परिवर्तित करते हैं और इस प्रकार अपने बीच सामंजस्य

का निर्माण करते हैं तथा प्रकृति और पदार्थ के साथ भी सामंजस्य का निर्माण करते हैं। लेइबनित्ज को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए था कि क्या अनिष्ट, जो कि विश्व में उपस्थित है, समय के साथ बढ़ता है या कम होता जाता है या स्थिर रहता है या कभी-कभी उसका ग्राफ ऊपर चला जाता है और कभी-कभी नीचे गिर जाता है? यदि अनिष्ट समय के साथ बढ़ता जाता है तो परिपूर्ण ईश्वर को विश्व को अच्छाई की मूल अवस्था में वापस लाने के लिए कार्य करना होगा, अन्यथा बुराई सभी मोनैडों को हमेशा के लिए भ्रष्ट कर देगी।

इसके अतिरिक्त, लेइबनित्ज ने अनिष्ट की जड़ों या उसके बीजों का स्पष्टीकरण नहीं दिया है। उन्होंने केवल यह कहा है कि 'अनिष्ट' मोनैडों की परिसीमाओं के कारण है। 'परिसीमायें कई प्रकार की हैं, किन्तु किस परिसीमा के परिणामस्वरूप अनिष्ट का जन्म होता है? — लेइबनित्ज ने उस विशिष्ट अनिष्ट का उल्लेख नहीं किया है। दूसरी ओर, परमात्मा शिव ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि मानव आत्मायें देह-अभिमानी हो जाती हैं, वे स्वयं को देह मान लेती हैं, और यही सारे अनिष्ट की जड़ है। यह तथ्य बताकर परमपिता शिव परमात्मा ने यह भी समझाया कि 'आत्म-अभिमान' के अभ्यास द्वारा अनिष्ट को उन्मूलित या कम कैसे किया जा सकता है। दूसरी ओर, लेइबनित्ज ने कोई भी उपचार नहीं सुझाया है, क्योंकि वे मूल कारण को पहचान नहीं सके हैं।

किन्तु, लेइबनित्ज की प्रणाली के बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने न ही बताया है कि सर्वोच्च मोनैड और मानव मोनैडों के बीच क्या सम्बन्ध है और न ही उन्होंने मानव मोनैडों के पारस्परिक सम्बन्ध की परिभाषा दी है। तथापि यह दर्शन और नीति शास्त्र में बहुत निर्णायक कारक है। यह आत्माओं के बीच तथा ईश्वर और आत्माओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर, ईश्वर ने यह प्रकट किया है कि वह मानव-जाति का परम पिता है तथा मानव-आत्माओं को दैवी विरासत देता है।

लेइबनित्ज द्वारा प्रतिपादित विचार-प्रणाली तथा ईश्वर द्वारा दी गई विचार-प्रणाली के बीच समानता तथा असमानता के अनेक अन्य बिन्दु हैं। किन्तु एक

मुख्य अन्तर यह है कि लेइबनित्ज ने एक ऐसी विचार-प्रणाली दी है जो कि न तो पूर्ण है और न ही असंगतियों से मुक्त है। उदाहरणार्थ, उन्होंने विश्व-चक्र की कालावधि नहीं बताई है और न ही उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि विश्व व्यवस्था जो कि स्पष्टत: अनिष्ट में क्रमिक वृद्धि दर्शाती रही है, उसकी मूल अवस्था में पुन: स्थापित कैसे किया जायेगा? हमारे लिए इन सभी प्रधान बिन्दुओं को जानना आवश्यक है, क्योंकि उन्हें जानने बिना प्रणाली स्पष्ट नहीं है।

हमने गणितज्ञ, वैज्ञानिक लेइबनित्ज द्वारा दिये गये आत्मा के संप्रत्यय की तुलना में अनन्त सूक्ष्म आत्मा के स्वभाव के विषय में उपर्युक्त दिव्य श्रुति (महावाक्य) दी है ताकि दोनों के बीच के वैषम्य को स्पष्ट किया जा सके। अब हम कुछ वैज्ञानिकों के लेखों के उद्धरण देंगे जिनमें उन्होंने आत्मा के अस्तित्व के विषय में अपना विश्वास व्यक्त किया है।

आत्मायें अनेक हैं किन्तु वे परमात्मा का अंश नहीं हैं

यह एक सार्वभौमिक विश्वास है कि आत्मा न तो उत्पादित है और न ही उत्पादनशील है। यदि उसे पदार्थ की वस्तुओं की तरह उत्पादित किया गया होता और अन्ततः उसके मूल स्रोत में मिश्रित या संविलीन हो जाना होता तो उसे 'अजात' या 'अमर' कैसे कहा जा सकता था? जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं किसी वस्तु को अजात, अमर तथा शाश्वत तब कहा जाता है जब वह वर्तमान में अस्तित्व में हो, अतीत में अस्तित्व में रही हो तथा भविष्य में शाश्वत रूप से अस्तित्व में रहने वाली हो। यदि वह किसी भी समय अपने अस्तित्व को खो देती है तो उसे 'अमर' या 'शाश्वत' नहीं कहा जा सकता।

इसलिए, यह कहना ग़लत है कि जिस प्रकार समुद्र का बुलबुला समुद्र का अंश होता है और उसका पृथक् या स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता और अन्ततः वह समुद्र में संविलीन हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मा का भाग या अंश है— यह कहना परमात्मा की श्रुतियों तथा उसके द्वारा वरदान में मिली हुईं दिव्य दृष्टियों के विरुद्ध है और दिव्य तर्कना के भी विरुद्ध है। यदि आत्मा की तुलना बुलबुले से की जाती है तो उसे 'अमर' नहीं माना जा सकता, जबकि वह वस्तुतः अजात तथा अमर है। आत्मायें अनेक हैं। वे एक-दूसरे से पृथक् हैं तथा परमात्मा से भी पृथक हैं। वे परमात्मा पर उस प्रकार से निर्भर नहीं हैं जैसे कि कोई कण समग्र राशि पर निर्भर होता है, बल्कि उस प्रकार से निर्भर है जिस प्रकार से कोई शिशु अपने माता-पिता पर तथा कोई सेवक अपने स्वामी पर निर्भर होता है। आत्माओं की बहुलता कोई ऐसा आभास नहीं है जिसकी कोई आनुभविक वास्तविकता हो, बल्कि वह अनुभव तर्क तथा सर्वोपरि दिव्य श्रुतियों पर आधारित है। इस बात से सभी लोग सहमत हैं कि आत्मा एक संवेदनशील सत्ता है।

इसलिए यह कहना कि आत्मायें उसी प्रकार उद्गमित होती हैं जिस प्रकार बुलबुले किसी समुद्र से उद्गमित होते हैं, यह ऐसा विश्वास करने जैसा है कि आत्मा की संवेदन शीलता भागों में खंडित हो जाती है। इसलिए यह मानना असमर्थनीय तथा अमान्य है। लोग यह कहते हैं कि आत्मा के प्रज्ञा, मन, इन्द्रियाँ आदि जैसे विशेषकों ने आभासी बहुलताकारित की है और यह कि जब उन्हें अस्वाधीन और अवास्तविक अनुभूत किया जाता है तो आत्मा परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है। किन्तु पूर्ववर्ती अध्यायों से यह समझा जा सकता है कि प्रज्ञा, मन आदि आत्मा के विशेषक नहीं हैं बल्कि स्वयं आत्मा की विभिन्न शक्तियाँ हैं।

वस्तुत: जो लोग एक ओर तो यह कहते हैं कि परमात्मा सर्वत्र उपस्थित है और दूसरी ओर यह समझते हैं कि आत्मा एक बुलबुले की तरह है या कि परमात्मा का एक कण है, वे लोग स्वयं अपने ही विश्वास का खंडन करते हैं। समुद्र से किसी बुलबुले के उद्गमित होने की संभावना इसलिए कल्पनीय है क्योंकि समुद्र की सतह के ऊपर और आसपास एक अवकाश होता है। किन्तु परमात्मा विषयक उनका स्वयं का संप्रत्यय यह है कि परमात्मा सर्वत्र उपस्थित है। इसलिए जब कोई भी अवकाश (Space) परमात्मा विहीन नहीं है तो उस पारस्परिक सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप आत्मा के जन्म की संकल्पना करने से विश्व में शान्ति होगी!

सभी आत्मायें परमात्मा की अविनाशी सन्तान हैं

स्वयं को परमात्मा की सन्तान के रूप में अनुभव करना — आत्मा की एक नैसर्गिक (natural) प्रवृत्ति है। उन लोगों को छोड़िये जो कि वेदान्ती हैं तथा केवल शाब्दिक तथा ग्रंथिक ज्ञान रखते हैं। वे अन्य लोग, जो कि किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक अनुशासन या चिन्तन का अभ्यास करते रहे हैं तथा शेष लोगों की अपेक्षा प्रगत हैं, आपको यह बतायेंगे कि एक अवस्था में उन्होंने यह पाया कि वे स्व को परमात्मा का एक बच्चा (कण नहीं) समझते हैं। उन्होंने अनुभव किया और परमात्मा को पिता या माता मानकर उसके सम्मुख स्वयं को समर्पण कर दिया और तभी वे प्रगति कर सके।

आत्मा— परमात्मा में संविलीन (merge) नहीं होती

मुक्ति या मोक्ष की अवस्था में भी आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही निवास स्थान — 'आत्मा के लोक' में रहते हुए भी उन दोनों की अपनी-अपनी स्वयं की पृथक् पहचान है, वे आपस में संविलीन नहीं होते। इसलिए आत्मायें अनेक (numerous) हैं, व्यष्टिक (individual) हैं और अमर (immortal) हैं।

योग का अनुप्रयोग तथा 'स्व' का दिव्यीकरण

1. सूक्ति : चिन्तन करो और इस वाक्य पर चित्त को केन्द्रित करो कि — "मैं एक आत्मा हूँ, परमात्मा की सन्तान हूँ।" यह चिन्तन करना ग़लत होगा कि "मैं परमात्मा का एक कण हूँ।" यह चिन्तन करना भी ग़लत है कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं शिव हूँ, मैं परमात्मा हूँ।" इसके बजाय तुम्हारे विश्वास और कर्मों का प्रमुख स्वर यह होना चाहिए कि "मैं परमात्मा की सन्तान हूँ।"

2. (i) योग का उद्देश्य, जैसा अद्वैतवादी (monists) सोचते हैं, परमात्मा में संविलीन होना नहीं है। योग का उद्देश्य 'स्व' का दिव्यीकरण करना है, परिपूर्णता (perfection) को प्राप्त करना और शान्ति, शुद्धता तथा आनन्द की विरासत पाना है। हम इस सूत्र पर जितना ही अधिक चिन्तन करेंगे, परमात्मा के साथ हमारा आध्यात्मिक सम्बन्ध उतना ही अधिक स्थापित होगा और हम प्रेरणा, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करेंगे। हम परमात्मा का प्रत्यक्षण (perceive) कर सकते हैं, तथा परमात्मा से सन्देश प्राप्त कर सकते हैं या परमात्मा को सन्देश दे सकते हैं।

   (ii) योग का उद्देश्य परमात्मा में संविलीन होना नहीं है, बल्कि इस लोक में तथा आत्मा के लोक में परमात्मा का सामीप्य, साहचर्य तथा सम्पर्क प्राप्त करना है।

   (iii) चूँकि प्रत्येक आत्मा अन्य आत्माओं से शाश्वत रूप से सुभिन्न है, इसलिए उसकी परिपूर्णता की अवस्था भी शेष आत्माओं से सुभिन्न

होती है। परिपूर्णता प्राप्त करने का अर्थ है वह होना जो कि वह 'मूलत:' थी। जिस प्रकार आत्मा शरीर-अभिमान के कारण उस परिस्थिति से या अपने-अपने सोपान की उच्चतम स्थिति से पतित होकर निम्नतम स्थिति पर आ गई उसी प्रकार अब उसे उस उच्चतम स्थिति में पहुँचना है, जो कि प्रत्येक आत्मा की विशिष्टता है।

आत्मा की तुलना आकाश में स्थित तारों, चन्द्र तथा सूर्य से करने पर यह बात बेहतर ढंग से स्पष्ट की जा सकती है कि प्रत्येक आत्मा की ज्ञान, प्रकाश, शक्ति, शान्ति, शुद्धता की अपनी-अपनी प्रास्थिति या मात्रा होती है।

या, उसकी तुलना धार्मिक जप के लिए उपयोग में लाई जाने वाली जपमाला से की जा सकती है, जिसमें फूल परमात्मा का प्रतीक होता है, द्वैध (मेरु) मणके में ब्रह्मा तथा सरस्वती के प्रतीक होते हैं, तथा 108 मणके आत्माओं की परिपूर्णता के प्रतीक होते हैं तथा जपमाला में प्रत्येक मणके का स्थान उनमें से प्रत्येक द्वारा प्राप्त की गई अपनी-अपनी श्रेष्ठता का प्रतीक होता है।

(iv) चूँकि प्रत्येक आत्मा के अपने-अपने विशिष्ट संस्कार होते हैं जो कि अन्य आत्माओं के संस्कारों से भिन्न हैं, इसलिए उसे दिव्यत्व प्राप्ति के लिए अन्य आत्माओं की अपेक्षा भिन्न मात्रा में प्रयास (efforts) करने होते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि जिस प्रकार एक बुलबुला समुद्र का एक भाग होता है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा का एक कण या भाग है, वे लोग अपने स्वयं के कथनों का खंडन करते हैं। उनके स्वयं के उद्धरणों में विरोध होने के कारण उनके तर्क विफल हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, बुलबुले को 'अजात तथा अमर' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, किसी सत्ता को 'अमर सत्ता' कहलाने के लिए अनन्त काल तक अस्तित्वमान होना चाहिए। इसलिए आत्मा को परमात्मा का एक भाग या कण कहना ग़लत है।

चिनगारियों और अग्नि के सम्बन्ध का साम्यानुमान

इसी प्रकार, आत्माओं को अग्नि और चिनगारियों के रूप में कल्पित करना, जैसा कि वेदान्ती संकल्पित करते हैं, अज्ञान है। विश्व की जनसंख्या इसलिए नहीं बढ़ रही है क्योंकि परमात्मा, जिसे अग्नि के सदृश संकल्पित किया गया है उसी प्रकार से अधिक आत्मायें उत्सर्जित कर रहा है जिस प्रकार से अग्नि चिनगारियों का उत्सर्जन करती है। हमने उस आत्मा के लोक या 'परमधाम' अथवा 'परलोक' का मानस-दर्शन किया है जहाँ से आत्मायें विश्व-नाटक मंच पर अपनी-अपनी भूमिकायें निभाने के लिए आती हैं। श्रीमद्भगवत्‌गीता में भगवान के जो उपदेश हैं उनमें भी परमधाम का और इस विश्व (शरीरी प्राणियों के) का विनाश हो जाने पर आत्माओं के प्रत्यावर्तन का भी स्पष्ट उल्लेख है। परमधाम से 'आने' तथा परमधाम को 'जाने' के कार्य का आरोपण आत्माओं पर तभी किया जा सकता है यदि वे व्यष्टिक, अनेकानेक तथा पृथक हों और उनका रूप भी पृथक हो।

जैसा कि हम इसके पूर्व कह चुके हैं, यह साबित किया जा सकता है कि प्रत्येक शरीरधारी आत्मा के संस्कारों, पूर्ववृत्तियों तथा प्रवृत्तियों में भिन्नता होती है। हमने यह भी कहा है कि अहं, प्रज्ञा, मन आदि कहलाने वाली सत्तायें भौतिक नहीं हैं और आत्मा से भिन्न नहीं हैं, बल्कि ये सत्तायें स्वयं आत्मा की चेतना, आत्मा के संकल्प, आदि के पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए आत्मायें अनेकानेक हैं। यदि आत्मायें एक होती तो सभी प्राणियों की प्रवृत्तियाँ सामान्य होतीं, उनकी अभिवृत्तियाँ समान होतीं, उनके विचार समरूप होते, उनके कर्म अभिन्न होते तथा उनके फल भी अभिन्न होते। सभी अपक्षधर धार्मिक लोग इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्येक आत्मा निरन्तर अपने पूर्व-संस्कारों की ओर झुकती है। सभी लोगों ने पूर्व-संस्कारों के अस्तित्व को स्वीकार किया है, जो कि भूतल की सीमा रहित (अर्थात् जिनका अन्त अनन्तता में है) पूर्ववर्ती रूपों से प्रदिभूत होते हैं। इसलिए, आत्मायें अनेक हैं तथा शाश्वत काल से उनका अलग-अलग अस्तित्व रहा है।

जपमाला का साम्यानुमान तर्क दोषपूर्ण है

कुछ लोग जपमाला (rosary) तथा उसके मनकों का साम्यानुमान प्रस्तुत करते हैं, वह भी तर्क दोषपूर्ण है। जिस प्रकार जपमाला में गुंथे हुए मनकों का धागा एक ही होता है उस प्रकार सभी प्राणियों की एक आत्मा नहीं होती। यह साम्यानुमान असमर्थनीय भी है और अनुभव के विपरीत भी है। यदि सभी शरीर में एक ही आत्मा होती तो एक शरीर के जन्म लेने से सभी प्राणी जन्म ले लेते तथा एक प्राणी के मरने से सभी शरीर मर जाते। किन्तु ऐसा नहीं है। कुछ आत्मायें सत्कर्म अधिक करती हैं तथा दुष्कर्म में कम विरत रहती हैं, कुछ आत्मायें दुष्कर्म में अधिक तथा सत्कर्म में कम विरत रहती हैं। कुछ आत्मायें ज्ञान की साधना करती हैं तो कुछ आत्मायें भक्ति में लीन रहती हैं। इसलिए यह एक तथ्य है कि आत्मायें अनेक हैं। गुण भी भिन्नत: प्रभावित करते हैं। एक मनुष्य इसलिए सुखी होता है क्योंकि उनका सत्व प्रबल होता है। कोई अन्य मनुष्य इसलिए दु:खी होता है क्योंकि उसमें तमस प्रबल होता है। यदि आत्मा एक ही होती तो सभी मनुष्यों की दशा एक जैसी होती।

आत्मा— परमात्मा में संविलीन (merge) नहीं होती

मुक्ति या मोक्ष की अवस्था में भी आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही निवास स्थान — 'आत्मा के लोक' में रहते हुए भी उन दोनों की अपनी-अपनी स्वयं की पृथक् पहचान है, वे आपस में संविलीन नहीं होते। इसलिए आत्मायें अनेक (numerous) हैं, व्यष्टिक (individual) हैं और अमर (immortal) हैं।

योग का अनुप्रयोग तथा 'स्व' का दिव्यीकरण

1. सूक्ति : चिन्तन करो और इस वाक्य पर चित्त को केन्द्रित करो कि — "मैं एक आत्मा हूँ, परमात्मा की सन्तान हूँ।" यह चिन्तन करना ग़लत होगा कि "मैं परमात्मा का एक कण हूँ।" यह चिन्तन करना भी ग़लत है कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं शिव हूँ, मैं परमात्मा हूँ।" इसके बजाय तुम्हारे विश्वास और कर्मों का प्रमुख स्वर यह होना चाहिए कि "मैं परमात्मा की सन्तान हूँ।"

2. (i) योग का उद्देश्य, जैसा अद्वैतवादी (monists) सोचते हैं, परमात्मा में संविलीन होना नहीं है। योग का उद्देश्य 'स्व' का दिव्यीकरण करना है, परिपूर्णता (perfection) को प्राप्त करना और शान्ति, शुद्धता तथा आनन्द की विरासत पाना है। हम इस सूत्र पर जितना ही अधिक चिन्तन करेंगे, परमात्मा के साथ हमारा आध्यात्मिक सम्बन्ध उतना ही अधिक स्थापित होगा और हम प्रेरणा, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करेंगे। हम परमात्मा का प्रत्यक्षण (perceive) कर सकते हैं, तथा परमात्मा से सन्देश प्राप्त कर सकते हैं या परमात्मा को सन्देश दे सकते हैं।

   (ii) योग का उद्देश्य परमात्मा में संविलीन होना नहीं है, बल्कि इस लोक में तथा आत्मा के लोक में परमात्मा का सामीप्य, साहचर्य तथा सम्पर्क प्राप्त करना है।

   (iii) चूँकि प्रत्येक आत्मा अन्य आत्माओं से शाश्वत रूप से सुभिन्न है, इसलिए उसकी परिपूर्णता की अवस्था भी शेष आत्माओं से सुभिन्न

होती है। परिपूर्णता प्राप्त करने का अर्थ है वह होना जो कि वह 'मूलत:' थी। जिस प्रकार आत्मा शरीर-अभिमान के कारण उस परिस्थिति से या अपने-अपने सोपान की उच्चतम स्थिति से पतित होकर निम्नतम स्थिति पर आ गई उसी प्रकार अब उसे उस उच्चतम स्थिति में पहुँचना है, जो कि प्रत्येक आत्मा की विशिष्टता है।

आत्मा की तुलना आकाश में स्थित तारों, चन्द्र तथा सूर्य से करने पर यह बात बेहतर ढंग से स्पष्ट की जा सकती है कि प्रत्येक आत्मा की ज्ञान, प्रकाश, शक्ति, शान्ति, शुद्धता की अपनी-अपनी प्रास्थिति या मात्रा होती है।

या, उसकी तुलना धार्मिक जप के लिए उपयोग में लाई जाने वाली जपमाला से की जा सकती है, जिसमें फूल परमात्मा का प्रतीक होता है, द्वैध (मेरु) मणके में ब्रह्मा तथा सरस्वती के प्रतीक होते हैं, तथा 108 मणके आत्माओं की परिपूर्णता के प्रतीक होते हैं तथा जपमाला में प्रत्येक मणके का स्थान उनमें से प्रत्येक द्वारा प्राप्त की गई अपनी-अपनी श्रेष्ठता का प्रतीक होता है।

(iv) चूँकि प्रत्येक आत्मा के अपने-अपने विशिष्ट संस्कार होते हैं जो कि अन्य आत्माओं के संस्कारों से भिन्न हैं, इसलिए उसे दिव्यत्व प्राप्ति के लिए अन्य आत्माओं की अपेक्षा भिन्न मात्रा में प्रयास (efforts) करने होते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि जिस प्रकार एक बुलबुला समुद्र का एक भाग होता है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा का एक कण या भाग है, वे लोग अपने स्वयं के कथनों का खंडन करते हैं। उनके स्वयं के उद्धरणों में विरोध होने के कारण उनके तर्क विफल हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, बुलबुले को 'अजात तथा अमर' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, किसी सत्ता को 'अमर सत्ता' कहलाने के लिए अनन्त काल तक अस्तित्वमान होना चाहिए। इसलिए आत्मा को परमात्मा का एक भाग या कण कहना ग़लत है।

आत्मा तथा पुनर्जन्म के प्रश्न पर वैज्ञानिक क्या कहते हैं?

कुछ लोग यह सोचते हैं कि वैज्ञानिक आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते और उसे एक अतर्कसंगत विश्वास या अन्ध-विश्वास समझते हैं। नीचे कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों के लेखों के कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक विश्व-विख्यात वैज्ञानिक आत्मा के अस्तित्व में तथा उसके अवतरण में विश्वास करते थे और विश्वास करते हैं।

सर फ्रांसिस वाल्शेड, तन्त्रिका विज्ञानी

(Sir Francis Walshed, Neurologist)

"ब्रेन — ए जर्नल ऑफ न्यूरोलॉजी", नामक पत्रिका के मार्च, 1953 के अंक में प्रकाशित "थॉटस अपॉन दि इक्वेशन ऑफ माइण्ड विथ ब्रेन" (Thoughts upon the equation of Mind with Brain; मस्तिष्क के साथ मन के समीकरण पर विचार) शीर्षक वाले लेख में वे कहते हैं :—

"नितान्त मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आवश्यकता के कारण आरम्भिकतम ग्रीकों तथा एक्वीनास (aquinas) तक पारम्परिक सामान्य बोधात्मक दर्शन ने मनुष्य में एक तात्विक अभौतिक तत्व के अस्तित्व को स्वीकार किया जो कि उसे मात्र पशु से ऊपर उठाता है। इस तत्व को उन्होंने मानस (Psyche), मानसतत्व (Entelechy), प्राणतत्व (Anima) या 'आत्मा' कहा।

यह भी स्वीकार किया गया कि पुद्गलाकारिक (Hylomorphic) मानव व्यक्ति में एक तात्विक तत्व के रूप में कार्य करने के लिए आत्मा को संवेदी आधार-सामग्री की आवश्यकता होती है जिसका संग्रहण, एकीकरण तथा वितरण तन्त्र— मस्तिष्क है। तथापि उपकरण को उपयोग कर्त्ता मान लेना मूर्खता होगी, भले ही प्रचलन के लिए उपयोग कर्त्ता उपकरण पर निर्भर होता है। हमें आत्मा के

इस प्राचीन संप्रत्यय को पुन: स्वीकार करना होगा कि वह मानव-व्यक्ति का एक अभौतिक, अदैहिक भाग है और फिर भी उसके स्वभाव का एक अभिन्न अंग है और मनुष्य का मात्र सहवर्ती पहलू नहीं है बल्कि कोई ऐसी वस्तु है जिसके बिना मनुष्य 'मानवीय-व्यक्ति' (Human person) नहीं है ......।

एक अर्थ में वर्तमान युग एक ऐसा युग है जिसका एक लक्षण यह है कि वह अपने स्वयं के अमूर्तकरणों को समझ नहीं पाया है और संभवत: प्राकृतिक विज्ञान को तत्वमीमांसा से विच्छेदित करने के अपरिहार्य फल स्वरूप जो उपलब्धि हुई वह उन्नीसवीं शताब्दी की खोखली विजय थी .....। मेरी दृष्टि में मानव मन का हतोत्साहक भौतिक गणितीय संप्रत्यय क्षय का एक कीचड़ भरा वस्त्र है जिसे लपेटने का इच्छुक मैं नहीं हूँ। वह मनुष्य की प्रतिष्ठा के अयोग्य है और यदि कोई कहे कि यह वैज्ञानिक अभिवृत्ति नहीं है तो मैं असंगति से उत्तेजित नहीं होता, क्योंकि प्रवचन के उचित क्षेत्र के बाहर, यह शब्द "विज्ञान" मुझें भयभीत नहीं करता। मनुष्य विज्ञान के लिए नहीं बनाया गया था, बल्कि मनुष्य ने, जो कि अपनी रचनाओं की अपेक्षा अधिक तथा बड़ा बना रहता है, विज्ञान को बनाया था।"

मैक्स प्लैन्क, विश्व विख्यात् भौतिकविद्
(Max Planck, world famous Physicist)

अपने लेख "व्हेयर ईज़ साइंस गोइंग" (Where is science going?; विज्ञान कहाँ जा रहा है?) में कहते हैं :—

"मन तथा पदार्थ के अमापनीय विश्व में एक बिन्दु, एक ही बिन्दु ऐसा है जहाँ विज्ञान और, इसलिए, अनुसन्धान की कोई भी इष्ट साधन प्रणाली, न केवल व्यावहारिक आधारों पर बल्कि तार्किक आधारों पर भी प्रयोज्य नहीं है और हमेशा अप्रयोज्य रहेगी। **यह बिन्दु है व्यक्तिगत 'अहं' । वह अस्तित्व के सार्वत्रिक लोक का एक छोटा-सा बिन्दु है किन्तु अपने आप में वह एक सम्पूर्ण विश्व है जो कि हमारे संवेगात्मक जीवन, हमारी इच्छा तथा हमारे विचार को समाविष्ट करता है। अहं का यह लोक हमारी गहनतम पीड़ा का स्रोत भी है और**

हमारे उच्चतम सुख का स्रोत भी है। इस लोक पर नियति की कोई भी बाहरी शक्ति कभी भी विजय नहीं पा सकती...।

विज्ञान तथा धर्म के बीच कभी भी कोई वास्तविक विरोध नहीं हो सकता क्योंकि वे एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक गंभीर तथा मननशील व्यक्ति, मेरे विचार से, यह अनुभव करता है कि यदि मानव-आत्मा की सभी शक्तियों को एक साथ मिलकर परिपूर्ण सन्तुलन तथा सामंजस्य में कार्य करना हो तो उसके मन में जो धार्मिक तत्व है उसे भी स्वीकार किया जाना चाहिए तथा संवर्धित किया जाना चाहिए। वस्तुत: यह कोई संयोग मात्र नहीं है कि सभी युगों के महानतम चिन्तक हृदय की गहराई से धार्मिक व्यक्ति थे। भले ही वे अपनी धार्मिक भावना का सार्वजनिक प्रदर्शन न करते हो। ज्ञान में प्रत्येक प्रगति हमें हमारे स्वयं के अस्तित्व से साक्षात्कार कराती है।''

इर्विन शोडिंगर (1887-1961)
(Erwin Schrodinger)

विश्व विख्यात वैज्ञानिक, जिन्होंने 1933 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित ''वॉट ईज लाइफ?'' (What is life?; जीवन क्या है?) में लिखते हैं :—

1. मेरा शरीर प्रकृति के नियमों के अनुसार एक शुद्ध तन्त्र की तरह कार्य करता है।
2. फिर भी मैं अकाट्य प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा यह जानता हूँ कि मैं उसकी गतियों को, जिनके प्रभावों का मैं पूर्वानुमान कर सकता हूँ, निदेशित करता हूँ जो कि घातक तथा महत्वपूर्ण हो सकते हैं, और ऐसी दशा में मैं उनका अनुभव करता हूँ तथा उनके लिए पूर्ण उत्तरदायित्व लेता हूँ।

मेरे विचार से, इन दो तथ्यों से जो एक मात्र संभव अनुमान निकलता है कि 'मैं' — शब्द के व्यापकतम अर्थ में 'मै' अर्थात् प्रत्येक सचेतन मन जिसने कभी भी ''मैं'' कहा हो या ''मैं'' का अनुभव किया हो — वह व्यक्ति हूँ, यदि कोई हूँ, जो कि प्रकृति के नियमों के अनुसार ''परमाणुओं की गति'' का नियन्त्रण

करता है .....।

यदि आप (इस "मैं" का) सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषण करें तो, मेरे विचार से, आप यह पायेंगे कि वह एकल आधार सामग्री (अनुभव तथा स्मृतियों) के किसी संग्रहण की अपेक्षा, अर्थात् उन कैनवास की अपेक्षा जिस पर वे आधार सामग्रियाँ संगृहीत की जाती हैं, मात्र कुछ अधिक है ....।

आप किसी दूरस्थ देश में आते हैं तो आपके सभी मित्र आपकी आँखों से ओझल हो जाते हैं, आप नये मित्र पा लेते हैं। यह तथ्य कम और कम महत्वपूर्ण हो जायेगा कि अपना नया जीवन जीते हुए भी आपको अपने पुराने जीवन का स्मरण है। तथापि कोई भी मध्यस्थित विच्छेद नहीं हुआ है, कोई भी मृत्यु नहीं हुई है। इस पर भी यदि कोई कुशल सम्मोहनविद् आपके पूर्वतर संस्मरणों को पूर्णत: मिटा देने में सफल हो जाए तो भी आप यह नहीं पायेंगे कि उसमें आपकी हत्या कर दी है। किसी भी दशा में व्यक्तिगत अस्तित्व की शोचनीय हानि नहीं होती, और न कभी होगी।

अल्बर्ट आइन्स्टाइन (1879-1955)
(Albert Einstein)

महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टाइन "दि वर्ल्ड एज़ आई सी इट" (The world as I see it) में लिखते हैं :—

मेरे लिए सम्पूर्ण शाश्वतता में स्वयं को निरन्तर रखने वाले सचेतन जीवन के रहस्य पर विचार करना, विश्व की अद्भुत संरचना पर गंभीर चिन्तन करना जिसे कि हम अस्पष्टत: समझ सकते हैं और प्रकृति में अभिव्यक्त प्रज्ञा के किसी अनन्त सूक्ष्म भाग को समझने की विनम्रतापूर्वक कोशिश करना पर्याप्त है.... [1]

जिस सर्वाधिक सुन्दर तथा सर्वाधिक गहन संवेग का अनुभव हम कर सकते हैं — वह है रहस्यमय का संवेदन। वह सभी सच्चे विज्ञान का बीज बोने वाला है। जिस व्यक्ति के लिए यह सम्बन्ध एक अजनबी है, जो कि विस्मित होकर

---

1. See "The Autobiography of Robert A. Millikan, Prentice Hall, p.207.

हतबद्ध नहीं हो जाता, मृतक जैसा है। यह जानना कि जो हमारे लिए अभेद्य है। वस्तुत: विद्यमान है और स्वयं को उच्चतम प्रज्ञान तथा अत्यन्त दीप्तिमान सौन्दर्य के रूप में अभिव्यक्त करता है, जिसे हमारी मन्द शक्तियाँ केवल उनके आदिम रूपों में समा सकती हैं — यह ज्ञान, यह भावना सच्ची धार्मिकता के केन्द्र में हैं..... ।[2]

मै यह कहता हूँ कि यह विराट धार्मिक भावना वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए प्रबलतम तथा श्रेष्ठतम उत्तेजन है। एक समकालीन ने उचित ही कहा है कि हमारे इस युग में केवल गंभीर वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता ही गहन धार्मिक लोग हैं।

एलेक्सिस कैरेल (1873-1944)
(Alexis Carrel)

'मैन दि अननोन' (Man the Unknown) में कहते हैं — आत्मा हमारा स्वयं का वह पहलू है जो कि हमारे स्वभाव की विशिष्टता है और हमें अन्य सभी पशुओं से विभेदित करती है। हम इस परिचित तथा गहनतापूर्वक रहस्यमय सत्ता को परिभाषित करने में सक्षम नहीं हैं। यह सोचा जाता है कि क्या वह विचित्र सत्ता, जो कि रासायनिक ऊर्जा की किसी मापनीय मात्रा का उपभोग किये बिना हमारी गहराइयों में रहती है, हमारे विश्व का एक संघटक है, जिसे भौतिकीविदों ने उपेक्षित कर रखा है, किन्तु प्रकाश की अपेक्षा अपरिमितत: अधिक महत्वपूर्ण है।

मन जीवित पदार्थ के भीतर छिपा हुआ है, जिसे क्रिया-विज्ञानविदों तथा अर्थशास्त्रियों ने पूर्णत: उपेक्षित कर रखा है, काया-चिकित्सकों ने लगभग भुला दिया है। और फिर भी वह विश्व की अत्यन्त विराट शक्ति है ...। यदि उसे कोई अभौतिक सत्ता समझा जाए, जो कि अवकाश और काल के बाहर, ब्रह्मांडीय विश्व के आयामों के बाहर अवस्थित है और हमारे मस्तिष्क में एक अज्ञात

2. *See "The Universe and Dr. Einstein" by Lincoln Barnelt and Mentor Book.*

प्रकिया द्वारा स्वयं को अन्तर्निविष्ट करती है, तो अभिव्यक्तियों की अपरिहार्य शर्त और उसकी विशेषताओं का निर्धारक कारक कौन होगा?

हमारे मन की एक प्राकृतिक प्रवृत्ति यह है कि जो बातें हमारे युग के वैज्ञानिक या दार्शनिक विश्वासों के ढांचे के अनुकूल न हो उन बातों को वह अस्वीकार कर देता है। आखिरकार, वैज्ञानिक भी केवल मनुष्य हैं। वे अपने पर्यावरण और अपने युग के पूर्वाग्रहों से संतृप्त होते हैं। वह स्वेच्छापूर्वक यह विश्वास करते हैं कि जिन तथ्यों की व्याख्या प्रचलित सिद्धान्तों द्वारा नहीं की जा सकती वे तथ्य विद्यमान नहीं हैं। वर्तमान समय में भी वैज्ञानिक पारेन्द्रियज्ञान (Telepathy) तथा तत्वमीमांसीय (Metaphysical) घटनाओं को भ्रम समझते हैं। अपरम्परा निष्ठ आभास वाले सुस्पष्ट तथ्यों को दबा दिया जाता है। जिन बातों से हम मानव-प्राणी को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं उन बातों की सूची अपूर्ण छोड़ दी गई हैं तब हमें अपने सभी पहलुओं में अपने स्वयं के सीधे-साधे प्रेक्षणों की ओर लौटना होगा, किसी भी बात को अस्वीकार नहीं करना होगा तथा जो कुछ भी हम देखते हैं केवल उसी का वर्णन करना होगा।

थॉमस एच. हक्सले (1825-1895), जीव-विज्ञानी
(Thomas H. Huxley, Biologist)

इन्होंने डार्विन के विकास सिद्धान्त का समर्थन एक धर्मयोद्धा की तरह किया। वे ''एस्सेज अपॉन सम् कन्ट्रोवेर्टेड क्वेश्चन्स'' (Essays upon some controverted questions) में कहते हैं :—

''इस विषय पर अत्यन्त दृढ़ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर यह धारणा विदित होती है कि — अन्तहीन अवकाश में बिखरे हुए असंख्य लोकों के बीच मनुष्य की प्रज्ञा (intellect) की अपेक्षा बड़ी प्रज्ञा नहीं हो सकती क्योंकि मनुष्य की प्रज्ञा काले-भुनगे (Black-beetle) की प्रज्ञा से बड़ी है और यह कि प्रकृति के क्रम को प्रभावित करने की जितनी शक्तियाँ मनुष्य के पास हैं उनसे अधिक शक्तियाँ किसी भी प्राणी के पास नहीं हैं क्योंकि मनुष्य की शक्ति घोंघें (Snail) की शक्तियों की अपेक्षा अधिक हैं, मुझें न केवल निराधार जान पड़ती है, बल्कि

असंगत भी जान पड़ती है। जो ज्ञात है उसके साम्यानुमान के परे कदम उठाए बिना विश्व को आरोही मान (ascending scale) में लोगों से भर देना आसान है.....।

मैं समझता हूँ कि भौतिकवाद का मुख्य सिद्धान्त यह है कि विश्व में पदार्थ तथा बल के सिवाय कुछ भी नहीं है। बल तथा पदार्थ (Force and Matter) को अस्तित्व के अल्फा तथा ओमेगा के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जो भी व्यक्ति उसे नहीं मानता उसे इस मत के अधिक उत्साही लोगों द्वारा मूर्ख तथा पाखंडी कहकर निन्दित किया जाता है। किन्तु इन सभी बातों पर मेरा विश्वास बिल्कुल ही नहीं है। विश्व में एक तीसरी वस्तु है, जिसे चेतना कहते हैं, जिसे मैं पदार्थ या बल या उनमें से किसी का भी कोई भी संकल्पनीय उपान्तरण नहीं मान सकता।

प्रकृति का अध्येता, जो कि कार्य कारण भाव के नियम की सार्वलौकिकता की स्वयं सिद्धि से आरम्भ करता है, एक शाश्वत अस्तित्व को स्वीकार करने से इन्कार नहीं कर सकता; यदि वह ऊर्जा की अविनाशिता को स्वीकार करता है तो वह एक शाश्वत ऊर्जा के अस्तित्व की संभावना को नकार नहीं सकता; यदि वह चेतना के रूप में एक अभौतिक प्रपंच (Immaterial phenomena) के अस्तित्व को स्वीकार करता है तो उसे किसी भी हालत में ऐसे अविनाशी अवलियों (series) के प्रपंच की संभावना को भी स्वीकार करना होगा।

'इवोल्यूशन एन्ड एथिक्स' (Evolution and Ethics) से उद्धृत आत्मा के कायान्तरण के सिद्धान्त में, चाहे उसका मूल जो भी हो, हिन्दू तथा बौद्ध परिकल्पना ने मनुष्य के प्रति ब्रह्माण्ड के तरीकों के सत्यभासक प्रमाणीकरण के निर्माण के साधन को सहज उपलब्ध पाया। औचित्य का यह तर्क अन्य तर्कों की अपेक्षा कम सत्य भासक नहीं है, और केवल जल्दबाजी में विचार करने वाले लोग ही उसे अन्तर्निहित असंगति के आधार पर अस्वीकार करेंगे। डॉर्विन के विकास सिद्धान्त की तरह आत्मा के कायान्तरण के सिद्धान्त की जड़ें भी वास्तविकता के विश्व में हैं। और वह ऐसे समर्थन का दावा कर सकता है जैसा समर्थन साम्यानुमान से उत्पन्न तर्क दे सकने में सक्षम है।

हबर डी. कर्टिस (1872-1942), खगोल-भौतिकविद्
(Heber D. Curtis, Astrophysicist)

दि लॉस एन्जेलेस टाइम्स, दिनांक 31 दिसंबर, 1926 में प्रकाशित एक प्रतिवेदन के अनुसार यह कहते हैं :—

मैं व्यक्तिगत रूप से हैन्डेल (Handel) की रचना "लॉर्गो" (Largo) तथा कीट्स (Keats) की रचना "ओड टु ए ग्रेशियन अर्न" (Ode to a Grecian Urn) को और उच्चतर आचार नीति को हाइड्रोकार्बन अणुओं के एक संग्रह की रासायनिक अन्त:क्रिया के मात्र एक उपोत्पाद के रूप मानना असंभव पाता हूँ। जबकि ऊर्जा, पदार्थ, अवकाश तथा काल सतत् अस्तित्वमान रहते हैं, कुछ भी नष्ट नहीं होता तो क्या हम स्वयं वह अभिव्यक्ति है कि समाप्त हो जाती है, नष्ट हो जाती है?

जिसे हम अपरिष्कृत रूप में मनुष्य का जीवन-सत्व कहते हैं वह नये यौगिक बनाता है, रासायनिक क्रिया के नियमों के साथ खेलता है, परमाणु की शक्तियों का मार्गदर्शन करता है, पृथ्वी के चेहरे को बदलता है, नये रूपों को जीवन देता है और लाखों पशुओं और पौधों का जीवन हर लेता है। यहाँ एक ऐसी ज्वाला है जो कि अपने स्वयं के ज्वलन का नियन्त्रण करती है, वह एक ऐसा सर्जनशील जीवन-सत्व है जो कि उस निरन्तरता से कम नहीं हो सकता जिसका वह नियन्त्रण करता है। यह वस्तु, आत्मा, मन या जीवन-सत्व को एक अपवाद नहीं हो सकता। किसी रीति से जिसे परिभाषित करना अब भी असंभव है, उसमें भी निरन्तरता अवश्य होनी चाहिए।

लुईस फिगुअर (1819-1894)
(Louis Figuier)

फ्रेंच प्रकृतिवादी तथा विज्ञान लेखक "दि टुमारो ऑफ डेथ" (The Tomorrow of Death) में कहते हैं :—

डेस्कार्टेस तथा लाइबनित्ज ने यह निदर्शित किया है कि मानव अवबोध में

'सहज' कहलाने वाले प्रत्यय होते हैं अर्थात् ऐसे प्रत्यय होते है जिन्हें हम अपने जन्म के साथ लाते हैं। यह तथ्य निश्चित है। हमारे समय में स्कॉच दार्शनिक डुगाल स्टवर्ट (Dugald Stwart) ने यह साबित किया कि वह एक सहज प्रत्यय, जिसका मानव के जन्म के पश्चात् मानव मन में सार्वत्रिक अस्तित्व होता है, कारणता का प्रत्यय या सिद्धान्त है, जो सिद्धान्त हमें यह कहने और सोचने के लिए प्रेरित करता है कि कारण के बिना कार्य नहीं होता, जो कि तर्क बुद्धि का आरम्भ है .....।

सहज प्रत्ययों तथा कारणता के सिद्धान्त को अस्तित्वों के बहुत्व सिद्धान्त (The doctrine of the Plurality) द्वारा बहुत सरलतापूर्वक स्पष्ट किया गया है। यह सत्य है कि किसी मनुष्य की आत्मा ने जो कि पहले से ही अस्तित्व में रह चुकने के कारण उस अस्तित्व के दौरान प्राप्त संस्कारों के चिह्नों को परिदक्षित रखा हो, किन्तु अपने पूर्व अवतार के दौरान किये गये कर्मों के संस्मरणों को खो दिया हो, किन्तु अमूर्त तथ्य आत्मा में उसके दूसरे जन्म में बने रहने चाहिए। स्वाभाविक अभिवृत्तियाँ, विशेष शक्तियाँ, वृत्तियाँ पूर्वत: प्राप्त संस्कारों के, पहले ही अर्जित किये जा चुके ज्ञान के चिह्न होते हैं और झूले (Cradle) से ही प्रकट होने के कारण व्यतीत जीवन द्वारा न होकर अन्यथा उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। मनुष्य की आत्मा उसके अनेक प्रवासों के बावजूद हमेशा वही रहती है।

गुस्टाफ स्ट्रॉमबर्ग, खगोलविद्
(Gustaf Stromberg, Astronomer)

निम्नलिखित उद्धरण उनकी पुस्तक 'दि सोल ऑफ दि युनिवर्स' (The Soul of the Universe) की एक समीक्षा से लिया गया है। समीक्षा 'टाइम्स' के 29 अप्रैल, 1940 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

'स्मृति' पदार्थ से स्वतन्त्र है। यदि वह जीवन के दौरान (प्रमस्तिष्कीय) पदार्थ के प्रतिस्थापन के पश्चात् उत्तर-जीवित रह सकती है तो वह मृत्यु के पश्चात् मस्तिष्क कोशिकाओं का विघटन हो जाने पर उत्तर जीवित क्यों नहीं

होनी चाहिए? "किसी व्यक्ति की स्मृति अवकाश तथा काल में अमिट लेख में लिखी होती है— वह विकासमान ब्रह्माण्ड का एक शाश्वत भाग बन गई है।"

डॉ. स्ट्रॉमबर्ग कहते हैं कि "आत्मा मानव प्राणी का 'अहं' है..... कोई ऐसी वस्तु है जो कि मनुष्य की मानसिक संसृष्टि को एकता देती है।" वे कहते हैं कि यद्यपि वह अभौतिक है तथापि वह बल के क्षेत्र की तरह एक वास्तविक संरचना है। इसलिए उसे ऊर्जा की अविनाशिता के विशुद्धत: भौतिक नियम के सदृश्य किसी नियम का उल्लंघन किये बिना विनष्ट नहीं किया जा सकता। लेखक यह नहीं कहता कि मृत्यु के पश्चात् मानव आत्मा को कौन-से अनुभव होते हैं। वे आत्मा के पुनर्जन्म को पूर्णत: संभव मानते हैं।

रेनर सी. जॉन्सन, भौतिकविद्
(Raynor C. Johnson, Physicist)

डॉ. जॉन्सन एक प्रख्यात ब्रिटिश भौतिकीविद् हैं। उन्होंने "दि इम्प्रिजन्ड स्प्लेन्डर" (The imprisoned splendour) नामक एक पुस्तक लिखी है, जो कि हार्पर एन्ड रो द्वारा प्रकाशित की गई है। डॉ. जॉन्सन विज्ञान में भी और दर्शन शास्त्र में भी पी.एच.डी. की उपाधि धारक हैं। नीचे उनकी उक्त पुस्तक "प्रि-एक्जिस्टन्स, रीइनकार्नेशन एण्ड कर्मा" (Pre-existence, reincarnation and Karma) के अध्याय 18 से कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं :—

"यह कहना संभवत: सत्य है कि मेरे अनेक पाठकों ने इस अध्याय के प्रति कुछ भावनात्मक रुचि तथा अनिच्छा के साथ प्रतिक्रिया की है। कुछ लोग इन विषयाँग में जिज्ञासा पूर्वक तथा लगभग सहज रूप में रुचि रखते प्रतीत होते हैं और कुछ लोग, जो कि बहुधा धार्मिक मानसिकता वाले लोग ऐसा कहते हैं मानो कि कोई विचित्र मूर्ति पूजक धर्म उनके प्रिय विश्वासों को सूक्ष्मतापूर्वक आतंकित कर रहा हो। औसत विचारशील पश्चिमी मनुष्य ने सामान्यत: इन विषयों पर बहुत कम विचार किया है यद्यपि उसका मौन हमेशा उसके ज्ञान के समतुल्य नहीं होता। किसी जीवन-दर्शन का निरूपण करने का कोई भी प्रयत्न करने तथा हमारी तीर्थयात्रा में अर्थ देखने का प्रयास करने में इन प्राचीन विश्वासों

की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सावधनीपूर्वक तथा पूर्वग्रह के बिना उनका मूल्याँकन करें तथा यह देखें कि क्या वे हमारे लिए अनुभव के पंथों को प्रकाशित कर सकते हैं जो कि अन्यथा अंधकारमय तथा रहस्यमय बने रहेंगे .....।

पुनर्जन्म (re-incarnation) का प्रत्यय कोई भी तार्किक कठिनाइयों को प्रस्तुत नहीं करता, भले ही उसके प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया जो भी हो। माना जा सकता है कि पुनरावतार की प्रक्रिया द्वारा आत्मा ने किसी भौतिक शरीर में एक बार जो किया है उसे वह पुन: कर सकती है। (शब्द 'आत्मा' से हमारा तात्पर्य अन्त:प्रज्ञात्मक 'स्व' तथा उच्चतर मन सहित 'स्व' के व्यष्टीकृत पहलू से है जिन सभी को अमर समझा जाता है)। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वाक्याँश "पहले जीवित रहे हों" से तात्पर्य उस शारीरिक रूप से नहीं है जिस रूप में रेनर जॉन्सन पृथ्वी पर पूर्वत: जीवित रहे हों, बल्कि तात्पर्य यह है कि रेनर जॉन्सन किसी अध:स्थ अमर आत्मा की केवल एक विशिष्ट तथा अस्थायी अभिव्यक्ति है, जिसने पूर्ववर्ती तथा बहुत संभवत: विभिन्न बाह्यकृतियाँ अपनाई हैं।

सर हम्फ्री डैवी (1778-1829), इंग्लिश रसायन शास्त्री
(Sir Humphrey Davy, English Chemist)

नीचे उनकी रचना 'कन्सोलेशन्स इन ट्रैवल, डायलॉग-4' (Consloations in Travel, Dialoge-IV) से उद्धरण दिया जा रहा है :—

"बाह्य विश्व हमारे लिए संवेदनों का एक गुच्छा मात्र है, और हमारे अस्तित्व की स्मृति को लौटकर देखने में हम एक सिद्धान्त को, जिसे 'मोनैड' या 'स्व' कहा जा सकता है, सतत उपस्थित एक विशिष्ट वर्ग के संवेदनों से अन्तरंग रूप में सम्बद्ध पाते हैं, जिसे हम शरीर या अंग कहते हैं। ये अंग अन्य संवेदनों के साथ जुड़े हुए हैं तथा और कुछ समय के लिए अन्य के लिए संवेदनों की कुछ शृंखलायें छोड़ते हुए उनके साथ अस्तित्व के चक्रों में गतिशील रहते हैं, किन्तु मोनैड हमेशा उपस्थित रहता है। हम उसके संकार्यो का कोई भी आरम्भ निश्चित

नहीं कर सकते; हम उनके लिए कोई भी सीमा निश्चित नहीं कर सकते।''

सर एडवर्ड बी. टेलर (1832-1917)
जिन्हें मानव-विज्ञान का जनक कहा जाता है।
(Sir Edvard B. Tylor, known as the Father of Anthropology)

अपनी प्रसिद्ध रचना ''प्रिमिटिव कल्चर'', ग्रंथ खंड-2 अध्याय-12 (Primitive Culture: Vol.2, Ch. 12) में वे प्राचीन लोगों के बीच प्रचलित पुनःअवतार सम्बन्धी विभिन्न विश्वासों की तुलना करने के पश्चात् निम्नलिखित टिप्पणी करते हैं।

''इसलिए ऐसा प्रतीत हो सकता है कि आत्मा के कायान्तरण का मूल-प्रत्यय मानव-आत्माओं का नये से मानव-शरीरों में पुनर्जन्म लेने का निश्चल तथा युक्तियुक्त प्रत्यय था।''

डॉ. जे.बी. राइन, डायरेक्टर, पैरासाइकॉलौजिकल लेबॉरेटरी, डयूक युनिवर्सिटी
(Dr. J.B. Rhine, Director of Parapsychology Laboratory, Duke University)

निम्निलिखित उद्धरण ''दि अमेरिकन वीकली, दिनांक 8 अप्रैल, 1956 में 'डिड यू लिव्ह बिफोर?' (Did you live before?) शीर्षक के साथ प्रकाशित एक लेख से लिया गया है। इसमें डॉ. राईन ने ब्रिडी मर्फी के प्रसिद्ध मामले पर चर्चा की है।[3]

---

3. *The book "The search for Bridey Murphy", by Morey Bernstein was published by Doubleday, Jan., 1956 in more than 30 countries. More than one million copies of it have been sold. Dr. J.B. Rhine was requested by the editors of 'The American Weekly', to review it. For an up-to-date survey of the facts in this much discussed case, see ch. "How the Case of the Search for Bridey Murphy Stands Today?" in Prof. C.J. Ducasse's book "A critical Examination of the Belief in a life After Death" (C.C. Thomas, Springfield, III, 1961) Eds.*

की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सावधनीपूर्वक तथा पूर्वग्रह के बिना उनका मूल्याँकन करें तथा यह देखें कि क्या वे हमारे लिए अनुभव के पंथों को प्रकाशित कर सकते हैं जो कि अन्यथा अंधकारमय तथा रहस्यमय बने रहेंगे .....।

पुनर्जन्म (re-incarnation) का प्रत्यय कोई भी तार्किक कठिनाइयों को प्रस्तुत नहीं करता, भले ही उसके प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया जो भी हो। माना जा सकता है कि पुनरावतार की प्रक्रिया द्वारा आत्मा ने किसी भौतिक शरीर में एक बार जो किया है उसे वह पुन: कर सकती है। (शब्द 'आत्मा' से हमारा तात्पर्य अन्त:प्रज्ञात्मक 'स्व' तथा उच्चतर मन सहित 'स्व' के व्यष्टीकृत पहलू से है जिन सभी को अमर समझा जाता है)। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वाक्याँश "पहले जीवित रहे हों" से तात्पर्य उस शारीरिक रूप से नहीं है जिस रूप में रेनर जॉन्सन पृथ्वी पर पूर्वत: जीवित रहे हों, बल्कि तात्पर्य यह है कि रेनर जॉन्सन किसी अध:स्थ अमर आत्मा की केवल एक विशिष्ट तथा अस्थायी अभिव्यक्ति है, जिसने पूर्ववर्ती तथा बहुत संभवत: विभिन्न बाह्यकृतियाँ अपनाई हैं।

सर हम्फ्री डैवी (1778-1829), इंग्लिश रसायन शास्त्री
(Sir Humphrey Davy, English Chemist)

नीचे उनकी रचना 'कन्सोलेशन्स इन ट्रैवल, डायलॉग-4' (Consloations in Travel, Dialoge-IV) से उद्धरण दिया जा रहा है :—

"बाह्य विश्व हमारे लिए संवेदनों का एक गुच्छा मात्र है, और हमारे अस्तित्व की स्मृति को लौटकर देखने में हम एक सिद्धान्त को, जिसे 'मोनैड' या 'स्व' कहा जा सकता है, सतत उपस्थित एक विशिष्ट वर्ग के संवेदनों से अन्तरंग रूप में सम्बद्ध पाते हैं, जिसे हम शरीर या अंग कहते हैं। ये अंग अन्य संवेदनों के साथ जुड़े हुए हैं तथा और कुछ समय के लिए अन्य के लिए संवेदनों की कुछ शृंखलायें छोड़ते हुए उनके साथ अस्तित्व के चक्रों में गतिशील रहते हैं, किन्तु मोनैड हमेशा उपस्थित रहता है। हम उसके संकार्यों का कोई भी आरम्भ निश्चित

नहीं कर सकते; हम उनके लिए कोई भी सीमा निश्चित नहीं कर सकते।''

सर एडवर्ड बी. टेलर (1832-1917)
जिन्हें मानव-विज्ञान का जनक कहा जाता है।
(Sir Edvard B. Tylor, known as the Father of Anthropology)

अपनी प्रसिद्ध रचना ''प्रिमिटिव कल्चर'', ग्रंथ खंड-2 अध्याय-12 (Primitive Culture: Vol.2, Ch. 12) में वे प्राचीन लोगों के बीच प्रचलित पुनःअवतार सम्बन्धी विभिन्न विश्वासों की तुलना करने के पश्चात् निम्नलिखित टिप्पणी करते हैं।

''इसलिए ऐसा प्रतीत हो सकता है कि आत्मा के कायान्तरण का मूल-प्रत्यय मानव-आत्माओं का नये से मानव-शरीरों में पुनर्जन्म लेने का निश्चल तथा युक्तियुक्त प्रत्यय था।''

डॉ. जे.बी. राइन, डायरेक्टर, पैरासाइकॉलौजिकल लेबॉरेटरी, ड्यूक युनिवर्सिटी
(Dr. J.B. Rhine, Director of Parapsychology Laboratory, Duke University)

निम्निलिखित उद्धरण ''दि अमेरिकन वीकली, दिनांक 8 अप्रैल, 1956 में 'डिड यू लिव्ह बिफोर?' (Did you live before?) शीर्षक के साथ प्रकाशित एक लेख से लिया गया है। इसमें डॉ. राईन ने ब्रिडी मर्फी के प्रसिद्ध मामले पर चर्चा की है।[3]

3. *The book "The search for Bridey Murphy", by Morey Bernstein was published by Doubleday, Jan., 1956 in more than 30 countries. More than one million copies of it have been sold. Dr. J.B. Rhine was requested by the editors of 'The American Weekly', to review it. For an up-to-date survey of the facts in this much discussed case, see ch. "How the Case of the Search for Bridey Murphy Stands Today?" in Prof. C.J. Ducasse's book "A critical Examination of the Belief in a life After Death" (C.C. Thomas, Springfield, III, 1961) Eds.*

संक्षेप में, ब्रिडी मर्फी (Bridey Murphy) प्यूब्लो कोलोरैडो (Pueblo, Colorado) में रहने वाली एक युवा गृहिणी रूथ सिमन्स (Ruth Simmons) की कथा है। 1952 में एक दिन संध्या के समय वह एक सम्मोहन प्रयोग का विषय बनाने के लिए राज़ी हुई। सम्मोहनविद् एक युवा व्यवसायी मोरे बर्न्स्टाईन (More Bernstein) थे। सबसे पहले सम्मोहनविद् उसे पीछे ले गये जिसे हम सामान्यत: आयु-प्रतीपगमन (Age-regression) कहते हैं। अन्तत: उन्हें उन खिलौनों का स्मरण कराया जिनसे वह तब प्रेम करती थी जब वह केवल एक वर्ष की थी। इसमें कोई भी असामान्य बात नहीं थी, किन्तु दूसरे सत्र में सम्मोहनविद् ने उसे सुझाया — "तुम्हारा मन पीछे जायेगा तब तक पीछे जायेगा जब तक कि तुम स्वयं को किसी अन्य दृश्य, किसी अन्य स्थान, किसी अन्य समय में न पाओं। तुम मुझे उसके बारे में बता सकोगी और मेरे प्रश्नों के उत्तर दे सकोगी।"

उसकी अनुक्रिया का सार यह था कि वह ब्रिडी मर्फी नामक एक छोटी आयरिश बालिका थी और अपनी माता कैथेलीन, अपने बैरिस्टर पिता डन्कन तथा एक भाई के साथ कॉर्क में रहती थी। वर्ष 1806 का था। उसने बताया कि कैसे 15 वर्ष की आयु में "एक भद्र महिला बनने का अध्ययन करने के लिए — "वह श्रीमती स्ट्रेनकी स्कूल में पढ़ा करती थी और कैसे बाद में उसने ब्रायन मैकार्थी के साथ विवाह किया और बेलफास्ट में रहने लगी। 66 वर्ष की आयु में ब्रिडी की मृत्यु होने तक की ब्रिडी की जीवन-कथा टेप पर रिकार्ड होती रही। ब्रिडी ने यह कहा कि शारीरिक मृत्यु के पश्चात् वह 40 वर्ष तक 'सूक्ष्मलोक' में रही तथा उसके पश्चात् 1923 में रूथ — वर्तमान समय रूथ सिमन्स के रूप में लोवा (Lowa) में उसका पुनर्जन्म हुआ।

बाद में आयरिश कन्सुलेट, ब्रिटिश इन्फॉर्मेशन सर्विस, न्यू यॉर्क पब्लिक लाइब्रेरी तथा अन्य स्त्रोतों से पूछताछ करने पर श्री बर्न्स्टाइन यह जाना कि ब्रिडी के अनेक कथन ऐतिहासिक तथ्यों से संगत थे। यदि रूथ आयरलैन्ड कभी भी नहीं गई थी और वह सामान्य रीति से ये बाते नहीं जान सकती थी तो क्या यह प्रश्न नहीं उठता कि "क्या पुनर्जन्म वस्तुत: होता है?"

यहाँ ड्यूक युनिवर्सिटी में उस प्रश्न के उत्तर के लिए कि "क्या आत्मायें उत्तरजीवित रहती हैं?" समूहों के विश्वासों का उनके व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर परीक्षण किया है। हमने हज़ारों घटनाओं का संग्रहण किया है, ज़िनमें से सैकड़ों घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि कहानी कहने वाली का एक प्रिय व्यक्ति के साथ सम्पर्क था, जिसकी मृत्यु हो गई है ....।

रीडर्स डाइजेस्ट, मार्च 1955 में प्रकाशित लेख

"डू ड्रीम्स कम ट्रू?" (Do dreams come true?) से निम्नलिखित उद्धरण दिया जाता है :—

भविष्य की सूचना देने वाले स्वप्नों द्वारा जो वैज्ञानिक परीक्षण आरम्भ किये गये थे उनसे मानव मन के बारे में एक नये तथ्य की खोज हुई, जो कि इतनी मौलिक है कि उससे मानव के आधारभूत विचार में एक क्रान्ति अवश्य हो गई है। सम्भवत: जो अत्यन्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष भरा है वह यह है — अब यह ज्ञात हो गया है कि मानव-व्यक्तित्व में एक ऐसा पहलू उपस्थित है जो कि पदार्थ के अवकाश तथा काल द्वारा असीमाबद्ध है — इसलिए वह एक अभौतिक या आध्यात्मिक पहलू है। उसकी सीमायें तथा संवृद्धि के लिए उसकी क्षमता हमारी संकल्पना की वर्तमान शक्तियों की सीमाओं के परे हैं।

अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण तथा मनो-गतिज अनुसन्धानों में एक प्रकार की विधीपूर्णता अधिकाधिक दिखाई दे रही है, जो कि मन की विशेषता है तथा भौतिकी के विपरीत है। इन अनुसन्धानों के बिना तथा केवल जैविकीय विज्ञानों के तथ्यों को लेकर चलते रहने से यह देखना कठिन है कि किसी भी प्रकार की अमरता कैसे संभव होगी। व्यक्तित्व का मस्तिष्क-प्रधान तथा प्रमस्तिष्क-केन्द्रिक दृष्टिकोण इसकी अनुमति नहीं देगा। उस दृष्टिकोण में मस्तिष्क प्राथमिक रूप से तथा पूर्व रूप से मनुष्य का केन्द्र है। किन्तु यदि मानस (Psyche) एक शक्ति तथा एक कारक है, जिसके नियम तथा तरीके विलक्षण रूप में अभौतिक हैं, तो उत्तरजीविता की परिकल्पना का कम-से-कम एक तार्किक संयोग है।

यदि मन भौतिक मस्तिष्क तन्त्र से भिन्न है तो उसकी एक भिन्न नियति हो

सकती थी, वह संभवत: स्वतन्त्र पृथक्नीय, अद्वितीय हो सकता है। निश्चय ही सरल संभावना की इस मात्रा को ग़लती से अधिसंभाव्यता नहीं मान लिया जाना चाहिए; किन्तु मात्र तार्किक संभावना ही स्वयं बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए, कम-से-कम यह कहा जा सकता है कि क्या जिस अवकाश तथा काल की सीमाओं के भीतर हमारे मस्तिष्कीय, शारीरिक तन्त्र को जीवित रहना है तथा गतिशील रहना है, उस अवकाश तथा काल के परे मन की कतिपय क्षमताओं को कार्य करते पाकर हमें उत्तेजित नहीं होना चाहिए? यहाँ, निश्चय ही यदि प्रत्येक "आश एक तारा देखती है" और उत्तरजीविता के प्रश्न के उत्तर ढूँढने प्रेरणा को मूल्यवान बल तथा प्रोत्साहन प्राप्त करता है।

(न्यूयार्क हेराल्ड-ट्रिब्यून, 27 फरवरी, 1944, जर्नल ऑफ पॅरासाइकॉलॉजी से।)

इयान स्टीवेन्सन, मनश्चिकित्सक एवं अध्यक्ष, मनश्चिकित्सा विभाग, युनिवर्सिटी ऑफ वर्जीनिया, स्कूल ऑफ मेडिसीन

(Ian Stevenson, Psychiatrist, Chairman, Dept. of Psychiatry, University of Virginia, School of Medicine)

(जुलाई, 1959 में हार्पर्स मैगजीन में डॉ. स्टीवेन्सन द्वारा लिखित लेख "दि अन-कम्फर्टेबल फैक्ट्स अबॉउट एक्स्ट्रासेन्सरी पर्सेप्शन" (The Uncomfortable facts about extrasensory perception) प्रकाशित हुआ। 1960 में उनके 44 पृष्ठीय निबन्ध "दि एविडेन्स फॉर सर्वाइवल फ्रॉम क्लेम्ड मेमोरीज़ ऑफ फॉर्मर इनकार्नेशन्स" (The evidence for survival from claimed memories of former incarnations) को अमेरिकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रीसर्च प्रतियोगिता का पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह प्रतियोगिता उक्त सोसाइटी के आरम्भिक अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष विलीयम जेम्स के सम्मान में आयोजित की गई थी। उक्त लेख के भाग एक तथा भाग दो, उक्त सोसाइटी के जर्नल के अप्रैल तथा जुलाई के अंकों में प्रकाशित हुये। डॉ. स्टीवेन्सन ने ऐसी सैकड़ों घटनाओं का

अध्ययन किया जिनसे बच्चों तथा वयस्क व्यक्तियों को अपने पूर्वजन्म का स्मरण होना प्रतीत होता था और ऐसी कुछ घटनायें प्रस्तुत की "जिनके मूल्याँकन में पुनर्जन्म आनुभविक तथ्यों के अत्यन्त सत्यभासक स्पष्टीकरण के रूप में एक बहुत गंभीर प्रतियोगी हैं।"

वे कहते हैं, "पूर्व जन्मों की आभासी स्मृतियों का अगला अन्वेषण करने पर पुनर्जन्म इन अनुभवों के अत्यन्त अधिसंभाव्य स्पष्टीकरण के रूप में स्थापित हो सकेगा। इस दिशा में चलने पर अन्त में हम भौतिक मृत्यु के पश्चात् मानव की उत्तरजीविता का अधिक विश्वासप्रद साक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे। माध्यम से प्राप्त होने वाली संसूचनाओं में हमारे सामने यह साबित करने की समस्या रहती है कि कोई व्यक्ति, जो कि स्पष्टत: मर चुका है, अब भी जीवित है। पूर्वजन्मों की आभासी स्मृतियों का मूल्याँकन करने में समस्या यह निर्णय करने की होती है कि कोई व्यक्ति, जो कि स्पष्टत: जीवित है, किसी समय मरा था। यह कार्य अधिक आसान साबित हो सकता है और यदि इसे पर्याप्त उत्साह पूर्वक तथा सफलतापूर्वक जारी रखा जाए तो उत्तरजीविता के प्रश्न के समाधान में निश्चय पूर्वक योगदान दे सकता है।"

कार्ल जी जुंग (1875-1961), मनश्चिकित्सक तथा मनोवैज्ञानिक
(Carl G. Jung, Psychiarist and Psychologist)

"दि अनडिस्कवर्ड सेल्फ" (The undiscovered Self) में कहते हैं :—

"जिस प्रकार कोपर्निकस (Copernicus) को सौर तन्त्र सम्बन्धी हमारी ग़लत संकल्पना को पूर्वाग्रह से मुक्त करना पड़ा, ठीक उसी प्रकार मनोविज्ञान को इस पूर्वाग्रह से मुक्त करने के लिए कि मानस (psyche), एक ओर तो, मस्तिष्क में चलने वाली जैव-रासायनिक प्रक्रिया की मात्र एक अनुघटना है या, दूसरी ओर, एक पूर्णत: अनुपगम्य (unapprochable) तथा अबोधगम्य (recondite) विषय है, लगभग क्रांतिकारी स्वरूप के अत्यन्त ओजस्वी प्रयासों की आवश्यकता थी। मस्तिष्क के साथ मानस का सम्बन्ध होने से स्वयं यह साबित नहीं होता कि मानस एक अनुघटना, एक गौण क्रिया है, जो कि कारणात्मक रूप से जैसे

रासायनिक प्रक्रिया पर निर्भर है...।

परामनोविज्ञान (Parapsychology) की घटनायें हमें सावधान रहने की चेतावनी देती हैं, क्योंकि वे मानसिक कारकों के ज़रिए अवकाश तथा काल के एक आपेक्षिकीकरण का संकेत देती हैं जो कि मानसिक तथा शारीरिक के बीच के समान्तरों के हमारे सरल तथा अति अविचारित व्याख्या पर सन्देह प्रकट करता है। इस व्याख्या के लिए लोग परामनोविज्ञान के निष्कर्षों को या तो दार्शनिक कारणों से या बौद्धिक आलस्य वश बिल्कुल अस्वीकार कर देते हैं। इसे वैज्ञानिक दृष्टि से उत्तरदायित्वपूर्ण आवृत्ति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि सर्वथा असाधारण बौद्धिक कठिनाई से बचने का एक लोकप्रिय मार्ग है। मानसिक घटना का निर्धारण करने के लिए हमें उन सभी घटनाओं पर विचार करना होगा जो कि उसके साथ आती हैं, और तदानुसार हम किसी भी ऐसे मनोविज्ञान का व्यवहार नहीं कर सकते, जो कि अचेतन के अस्तित्व की या परामनोविज्ञान के अस्तित्व की उपेक्षा करता है।

मस्तिष्क की संरचना तथा क्रिया-विज्ञान मानसिक प्रक्रिया की कोई भी व्याख्या नहीं देते। मानस का एक विलक्षण स्वभाव होता है जिसे किसी भी अन्य वस्तु में बदला नहीं जा सकता।

निम्नलिखित उद्धरण उनके एक व्याख्यान से दिया जा रहा है जो कि वर्ष 1959 में 'पुनर्जन्म के सम्बन्ध' में दिया गया था। यह व्याख्यान जुंग के कलेक्टेड वर्क्स (Collected Works), नौवें खण्ड (Vol-9) के भाग-एक में प्रकाशित किया गया था।

पुनर्जन्म कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसे कि हम देख सकते। हम न तो उसे माप सकते हैं, न तो उसे तौल सकते हैं और न ही उसका फोटोग्राफ ले सकते हैं। वह पूर्णत: इन्द्रिय-प्रत्यक्षण के परे होती है। यहाँ हमारा सम्बन्ध एक विशुद्धत: मानसिक वास्तविकता से होता है जो कि हमें केवल प्रत्यक्षत: व्यक्तिगत कथनों के ज़रिए संप्रेषित की जाती है। कोई व्यक्ति पुनर्जन्म की बात करता है, कोई व्यक्ति पुनर्जन्म में अपना विश्वास स्वीकार करता है, कोई व्यक्ति पुनर्जन्म से भरा हुआ होता है। इसे हम पर्याप्तत: वास्तविक स्वीकार करते हैं। मेरी यह राय है कि

'मानस' — मानव जीवन का एक सर्वाधिक प्रचण्ड तथ्य है। इस तथ्य मात्र का, कि लोग पुनर्जन्म के बारे में बातें करते हैं, और यह कि ऐसी कोई संकल्पना है, यह अर्थ है कि उस शब्द द्वारा संकलित मानसिक अनुभवों का एक भण्डार वस्तुत: विद्यमान है।

पुनर्जन्म एक प्रतिज्ञापन (Affirmation) है, जिसकी गणना मानव जाति के आद्य (primordial) प्रतिज्ञापनों में की जानी चाहिए। आद्य प्रतिज्ञापन उन पर आधारित हैं जिन्हें मैं आद्य प्ररूप (archetypes) कहता हूँ। इन प्रतिज्ञापनों में मानसिक घटनायें अध:स्थित होनी चाहिए, जिन पर उनकी सार्थकता सम्बन्धी सभी तत्वमीमांसीय तथा दार्शनिक अभिग्रहों में प्रवेश किये बिना चर्चा करना— मनोविज्ञान का कार्य है।

डब्ल्यू.एफ.जी.स्वान, भौतिकीविद् एवं पूर्व अध्यक्ष, बर्टोल रीसर्च फाउन्डेशन
(W.F.G. Swann, Physicist, Former Director of the Bartol Research Foundation)

(निम्नलिखित उद्धरण के प्रथम अंश के लिए आमुख देखिये)

हमें किसी ऐसी सत्ता के आह्वान पर, जो कि अवकाश तथा काल के सम्बन्धी अभिव्यक्ति का दावा नहीं करती, बहुत विस्मय नहीं होना चाहिए। आखिरकार, यह अभिव्यक्त करने के लिए कि ऐसी वस्तुयें कहाँ हैं और वे कहाँ कब थीं, उनके साथ समकक्ष एक्स, वाय, आर,टी (x,y,r,t) जोड़े बिना उन वस्तुओं को अच्छी या बुरी कह सकता हूँ।

विलियम जेम्स (1842-1910), विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक
(William James, world-famous Psychologist and Philosopher)

उस दशा के अनुसार जिसमें मस्तिष्क स्वयं को पाता है, उसकी अवरोधकता

की आड़ को भी उठती या गिरती माना जा सकता है। जब मस्तिष्क पूर्ण सक्रियता में होता है तो वह आड़ इतनी नीचे गिर जाती है कि आध्यात्मिक ऊर्जा की एक तुलनात्मक बाढ़ आ जाती है। अन्य समयों पर, विचार की केवल ऐसी प्रासंगिक विचार-लहरें उठती हैं जिन्हें गहरी नींद उठने देती है और जब अन्ततः कोई मस्तिष्क कार्य करना पूरी तरह से बन्द कर देता है या क्षीण हो जाता है, चेतना की वह विशेष धारा, जिसके वर्धन में उसने सहायता की थी, प्राकृतिक विश्व से पूर्णतः विलुप्त हो जायेगी। किन्तु अस्तित्व का वह क्षेत्र जिसने चेतना की आपूर्ति की, फिर भी अविकल रहेगा, और चेतना उस अधिक वास्तविक विश्व मे, जिसके साथ वह यहाँ रहते समय भी अविच्छिन्न थी, हमें अज्ञात रीति से फिर भी अविच्छिन्न रहेगी।[4]

4. *This is quoted from his lecture, first delivered at Harvard in 1893 and published as Jame's essay on Human Immortality.*

आत्मा और पुनर्जन्म-दो

बहुत से लोगों का ऐसा सोचना है कि केवल हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मानुयायी आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। यहाँ अनेक सुविख्यात अंग्रेज-कवियों की रचनायें उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा रही हैं जो आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। कुछ कवि ईसाई मतावलम्बी होने के बावजूद भी यह मानते हैं कि " जीवन घटना-चक्रों की पुनरावृत्ति होती है।"

अंग्रेज राष्ट्रकवि **जॉन मेसफील्ड** (John Masefield) का मानना था कि उसने अनेक जन्म थीब्स, ट्राय और बेबीलोन में लिये थे। उसने अपनी कविता "पंथ" (A Creed) में बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन करते हुए लिखा है :

याद है मुझे पिछले जन्मों की बातें,
पल-पल गुजरते सपने और विस्मृत इरादे।
मानवीय रूप में पली थी मेरी आत्मा,
"अनन्त" के बाद फिर शुरू की यह जीवन यात्रा।।

विनाशी शरीर के ये तत्व पाँच,
बिखरे हैं मिट्टी में सैकड़ों बार।
"कलम" को पकड़ने वाले ये मेरे हाथ,
पंच तत्व में मिले हैं, बने हैं अगणित बार।।

मेरी आत्मा के गहरे रिश्ते,
ट्राय की वैभवशाली परम्परा में हैं चमकते।
थीब्स की मधुर स्मृतियाँ और बेबीलोन के झूलते बाग,
मन-दर्पण में छटा बिखेरते हैं अब भी बार-बार।।

सर इडविन आरनोल्ड (Sir Edwin Arnold) भगवद्गीता के अनुवाद ''जीवन के दिव्य गीत'' (The Song Celestial) में पुनर्जन्म के बारे में लिखता है :

मनुष्य पहनता है नया वस्त्र,
ज्यों फटा-पुराना फेंक कर।
आत्मा धारण करती है नूतन काया,
त्यों पुरातन सपने, रिश्ते तोड़कर।।

अगर न होता पुनर्जन्म तो
पाप-पुण्य का फल कैसे मिलता?
संस्कारों का संचित सपना,
कर्मक्षेत्र पर पाप-पुण्य बन कैसे फलता?

गमन करती है जीवन यात्रा,
पाप-पुण्य के पायदानों पर।
जीवन-संगीत है बजता,
काल चक्र के तालों पर।।

विलियम वर्डसवर्थ (William Wordsworth) अपनी सुविख्यात कविता ''बाल्यपन की स्मृतियों के अमर गीत'' (Intimations of Immortality from Recollections of Early childhood) में पुनर्जन्म के बारे में लिखता है :

समय के शिलालेखों पर
स्मृति और विस्मृति के चक्र।
महाशून्य की धड़कन में
मिलाते हैं जीवन से जीवन का स्वर।।

तोड़ बन्धन स्थान काल का
आती है आत्मा परमधाम से।
है परमात्मा का निवास जहाँ,
सजती है नूतन परिधान से।।

छठवीं शताब्दी का वेल्स कवि **टेलाइसीन** (Taliesin, Welsh bard) ने पुनर्जन्म सम्बन्धी अपने विचार को कविता के रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया है :

लूसीफर के नर्क में पतन के समय,
मेरे राज्य की सीमायें थीं महान।
सिकन्दर महान् का मैं हूँ पूर्वज,
पर हाय ! जिसका इतिहास है अज्ञात।।

सूडाम और गमोरा को मैंने,
देखा है खण्डहर में बदलते।
जब तक रहेगी लय और गति धरा में,
मेरे जीवन कपड़े रहेंगे बदलते।।

महान कवि **जॉन मिल्टन** (John Milton) आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में गहरा विश्वास करते थे। यहाँ उनकी कविता ''कोमस'' (Comus) के कुछ अंश उद्धृत हैं :

ज्योतिर्बिन्दु चेतन आत्मा,
अजर-अमर अविनाशी आत्मा।
शरीर का ले आधार पार्ट बजाती आत्मा,
चेतन, गुण-शक्ति सम्पन्न अविनाशी आत्मा।।

उन्नीसवीं शताब्दी के सुविख्यात अंग्रेज कवि **अल्फ्रेड लार्ड टेन्नीसन** (Alfred Lord Tennyson) ने आत्मा तथा पुनर्जन्म के बारे में अपने विचारों को कविता के माध्यम से निम्न प्रकार व्यक्त किया है :

अन्तर्मन के दिव्य-चक्षु,
पूर्व जन्म की हैं याद दिलाते।
चेतन सपनों की दुनिया में
विस्मय सपने हैं जैसे आते।।

सच कहूँ मैं आश्चर्य मन की बातें
आश्चर्य बढ़ता जाता है।
पर पिछले जन्म के नाम पते का,
मिलता नहीं कुछ पता ठिकाना है।।

मन दर्पण में मेरे
तस्वीर उभरती है पिछले जन्मों की।
मेरा मन कहता है मुझसे,
कहानी पिछले जन्मों की।।

मारग्रेट एल. वुड्स (Margaret L. Woods) पुनर्जन्म के लिए अपनी इच्छा को निम्न प्रकार व्यक्त करता है :

ऐ धरती माँ
महाशून्य से
वापस आऊँगा मैं
इस धरा पर
पुनः लेकर मनुज काया।

शाश्वत प्रेम, अनन्त जिज्ञासा
के नव-पंखों पर सवार
महाशून्य की यात्रा पर प्रस्थान .... ।
समय चक्र के रथ पर सवार
ओ मेरी प्रिय माँ ! वसुन्धरा !
करता रहूँगा इन्तजार
जब तक कि
परम सत्य आवाज
देगी आदेश मुझे
वापस आने
पुनः इस मनुष्य लोक में ।

सुविख्यात ईश्वरवादी अंग्रेज कवि **राबर्ट ब्राउनिंग** (Robert Browning) ने "पेरासेलसस" (Paracelsus) में लिखा है :

अनुभव होता है मुझे बार-बार ।
पूर्व जन्म में था मैं एक सन्त महान् ।।
सधुक्कड़ी जीवन के राहों पर चलकर,
चेतन-दीप जगाया था अन्धेरा मन का मिटाकर ।।

मैथ्यू ऑरनोल्ड (Mathew Arnold) ने अपनी कविता "इम्पेडोकल्स ऑन इटना" (Empedocles on Etna) में लिखा है :

अनचाहे
गम की तरुणाई
और
बोझिल संसार में

पुनः शुरू होगा
जिन्दगी का सफरनामा।
दु:खों की बस्ती में
पुनः गुजरेगी
जिन्दगी की
सुबह और शाम ॥

लॉरेन्स बिन्यान (Lawrence Binyon) कलाकार, कवि तथा इतिहासकार ने अपनी कविता "बिसरी यादें" (Unsated Memory) में लिखा है :

वापस कर दो।
मेरा मूल वतन
मेरे मन की अशोक वाटिका
जहाँ से आकर
मैं दफन हो गया
इस तन में।
पवित्र चिन्तन,
संकल्प,
और आत्मा की भव्यता
कर दो वापस
फिर मुझे, एक बार।
दैवी स्वरूप
और शानदार अतीत
अवशेष हैं बस।
मेरे मन में
बनकर
एक ताजमहल।

जॉन लेडन (John Leydon) ने अपनी कविता "स्कॉटलैण्ड के संगीत के गीत" (Ode to Scottish Music) में लिखा है :

हिन्दू ग्रन्थ जैसे बात बताते,
निर्झर झंकृत मन का स्वर।
दूर चला जाता हूँ क्षितिज से
फिर दुःख भोगता हूँ लेकर यह तन।।

सुविख्यात कवि **सेम्युअल कॉलरिज** (Samuel Coleridge) ने अपनी कविता "एक बच्चे का जन्म सुनकर घर की यात्रा पर प्रस्थान" (On a Homeward Journey upon hearing the birth of a son) में लिखा है कि उसे प्राय: यह अनुभव होता है कि उसने पुनर्जन्म लिया है :

मेरा मस्तिष्क
विचित्र कल्पनाओं और
अज्ञात भूतकाल का प्रतिदर्श में
करता है सदैव प्रश्न।
चुपके से एक देवी
बताती है
इस भौतिक शरीर से पूर्व भी
था तुम्हारा भौतिक शरीर।।

विश्वविख्यात नाटककार और कवि **विलियम शेक्सपियर** (William Shakespear) "सानेट 59" (Sonnet 59) में पुनर्जन्म के सम्बन्ध में अपना विचार निम्न पंक्तियों में कविता के माध्यम से प्रगट करते हुए लिखता है :

यदि न होता पुनर्जन्म तो
मन श्रम कैसे करता।
पूर्व बच्चे की खोज में
व्यर्थ परिश्रम क्यों करता।।1।।

प्राचीन पुस्तकों में है झलकता
अभिलेख प्राचीन भी हैं बतलाते।
आश्चर्य के दर्पण में
रूप तेरा कैसे निर्मित पाते।।2।।

सुहाने थे वो दिन, या
सुहानी है यह जीवन डगर।
पूर्व जीवन की बौद्धिकता ने
लिखी कहानी पतन।।3।।

विलियम अर्नेस्ट हेनली (William Ernest Henley) आत्मा के अस्तित्व एवं पुनर्जन्म के विश्वास का महान् समर्थक था। उसका विश्वास था कि उसने अनेक देशों में जन्म लिया है। उसने अपनी कविता "टू डब्लू.ए." (To W.A.) में अपना यह विश्वास निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :

बेबीलोन के महलों के खण्डहर।
कह रहे हैं कहानी दफ़न।।
मैं राजा था और तू इक ईसाई दास।
टूटते बिखरते देखा है मैंने तेरा अहंकार।।

एक अन्य कविता में **विलियम अर्नेस्ट हेनली** महोदय लिखते हैं कि :

मैं महान सेमूराई था, सम्राट,
मेरी तलवार का इतिहास है गवाह।।
ऐतिहासिक बलशाली और विद्वान।
इतिहास के पास नहीं है मेरा जवाब।।
पुजारी और भारवाहक जीवन की स्मृतियाँ।
फूजी के चेरी के बगीचे की बहारें, बताती हैं कहानियाँ।।
दर्जनों जन्म पूर्व प्रिये एक बार।
हमारे प्रेम का गवाह बना था जापान।।

फ्रान्सिस कार्नफोर्ड (Frances Cornford) ने पुनर्जन्म के सम्बन्ध में लिखा है :

एक बार
समुद्र के किनारे
भयानक स्वर गर्जना के साथ
सूरज कर रहा था
मेरे चेहरे पर क्रीड़ा।
युगों-युगों में
प्रकृति का यह विकराल स्वरूप
कहानी लिखता है
सृजन का
विनाश का और
कालजयी चक्र, का।

कैसे बांध दूँ
शब्द की सीमित सीमाओं में,
प्रलयंकारी गर्जना के
इस शाश्वत क्षण को
मैं कौन हूँ ?
कहाँ से मैं आया ?
भूल गया था अपने घर को।

इस प्रकार अनेक कवियों ने आत्मा के अस्तित्व में अपना विश्वास व्यक्त किया है। लेकिन हाय ! आज समय कितना बदल गया है ! लोग इन कविताओं को पढ़ने से न केवल मुँह चुराते हैं बल्कि मुँह भी बिदकाते हैं। आज शारीरिक प्रेम पर आधारित कविता का सृजन करना फैशन बन गया है जो मनुष्य के दैहिक-भान को बढ़ाता है।

आत्मा और पुनर्जन्म-तीन

इसमें अमेरिका के अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख कवियों का उद्धरण प्रस्तुत है जो आत्मा के अस्तित्व तथा पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

हेनरी वर्डसवर्थ लांगफेलो (Henry Wordsworth Longfellow) ने ''गर्मी में बरसात'' (Rain in Summer) कविता में इस सम्बन्ध में अपना विचार निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :

भविष्य द्रष्टा ने
मानवीय काया के
जन्म और मृत्यु,
नर्क और स्वर्ग के
रहस्यमय चक्रों के बीच
गुजरते जीवन चक्र का
किया साक्षात्कार।
अद्भुत !
अदृश्य ..... जगत्
समय के विशाल
चक्रों पर सवार
निरन्तर, अमिट, अटल और गतिमान।

हेनरी वर्डसवर्थ लांगफेलो ने अपनी एक अन्य कविता ''जीवन-गीत'' (A psalm of life) में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है :

मानता नहीं मैं,
जीवन केवल सपना है।
विनष्ट होती आत्मा
नहीं जगत् में कुछ अपना है।
सच है जीवन, सत्य है जीवन,
कब्र नहीं है अन्तिम मन्जिल।
ले जाती है आत्मा अपने संग,
जो कर्म होते हैं संचित।।

जॉन ग्रीनलीफ व्हाइटिअर (John Greenleaf Whittier) ने इस सम्बन्ध में लिखा है :

कर्म हमारे भाग्य बनाते,
सुख-दुःख के हैं निर्माता ।
कर्म करे जो जैसे
सुख-दुःख वैसे पाता।।1।।

जीवन रूपी महल बनाते,
त्याग और पुरुषार्थ की ईंटों से।
जैसा बोते हैं, वैसा काटते,
संस्कार और कर्म के खेतों से।।2।।

आत्मा लेती है पुनर्जन्म,
पूर्व जन्म के आगोशों पर।
भूतकाल पुनः है प्रविष्ट होता,
अविनाशी दिवालों पर।।3।।

सोचो ! सोचो ऐ नर !
कहाँ गये मिल्टन के पवित्र जीवन गीत।
क्या राफेल के ''फरिश्ते का जादू
हो गया व्यर्थ !।।4।।

जन्म लेंगे पुनः हम,
कर्म क्षेत्र की शय्या में।
उभरेंगी पिछले जन्मों की तस्वीरें,
जीवन की भूल-भुलैया में।।5।।

जेम्स रसेल लावेल (James Russell Lowell) ने अपनी कविता ''दि ट्विलाइट'' (The Twilight) में लिखा है :

कभी-कभी आती है खुशबू,
स्वप्नलोक के गलियारों में।
आती जाती है एक मानव की छाया,
उजियारे में, अन्धियारे में।।
बात बताती है पिछले जन्म की,
याद दिलाती है हर पल।
इस धरा पर यहीं कहीं,
गुजरा था यौवन, बीता था बचपन।।

जॉन टाउनसेन्ड ट्राउब्रिज (John Townsend Trowbridge) ने अपनी कविता ''सीमान्त'' (Beyond) में पारलौकिक यात्रा के बारे में निम्न प्रकार लिखा है :

चाँद सितारों के पार
महाप्रयाण की यात्रा
पर निकल पड़ी
मेरी आत्मा।
पारलौकिक मानव, सपने और दिव्य प्रकाश,
सदा याद दिलाते हैं
कि समाप्त हो चुका है
जो था आत्मा के साथ।।

इमिली डिकिन्सन (Emily Dickinson) ने अपनी कविता "मिट्टी का लिबास" (An overcoat of clay) में आत्मा के सम्बन्ध में अपना विचार निम्न प्रकार व्यक्त किया है :

चुनौती मौत की ?
स्वीकार है
नहीं डरता मैं मौत से
सपने में
सोते-जागते कहीं भी।
देवताओं के अस्तित्व का भय
करके ज्ञानार्जन
बनाता है मुक्त मुझे
मृत्यु के भय से।
आत्मा और श्मशान की भूमि के बीच
वार्तालाप है
मृत्यु !
"नष्ट हो गये" — मृत्यु ने कहा।

''दूसरा शरीर धारण कर लिया है'' — आत्मा ने कहा।
मृत्यु ने सन्देह किया
और
मिट्टी का लिबास
प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में छोड़ते
निकल गई मेरी आत्मा।

पाल हेमिलटन हाइने (Paul Hamilton Hayne) ने अपनी कविता ''पूर्व-अस्तित्व'' (Pre-existence) में लिखा है कि :

जीवन के भ्रम-सागर में
गुजरते यात्री
लिखते हैं गीत
कुछ सर्जना के
कुछ ग़मों के
और कुछ सपनों के
युगों ने देखा है
अपनी नंगी आँखों से अनेक बार
मुझे जन्म लेते,
मरते,
फिर कैसे कह दूँ
जीवन है भ्रम!
अनेक कल्प की
सीमाओं को भेद
धुँधली तस्वीरें
सजाती हैं

स्मृतियों का हार
निरन्तर होकर अथक।।

थामस बेली एल्ड्रिक (Thomas Bailey Aldrich) ने अपनी कविता "मेटेमसाइकोसिस" (Metempsychosis) में आत्मा के अविनाशी स्वरूप को स्वीकार करते हुए लिखा है :

मेरी सन्तति पवित्र थी,
मैं ही था रेमूलस और रीमस।
बेबीलोन और नीन्वेह से पूर्व,
सतत गतिशील, अन्तहीन।।1।।

जन्म लेते हैं हम रोते,
मृत्यु समय मौन।
ईश्वर की विचित्र यह नियति
.... हैं हम कौन?।।2।।

कर्म करते इस धरा पर,
मैं आया लेकर मनुज रूप।
ठोकर खाकर बढ़ता जाता,
कदम-कदम ईश्वर के नज़दीक।।3।।

सुविख्यात अमेरिकी कवि **रॉबर्ट फ्रास्ट** (Robert Frost) ने अपनी कविता "भोजवृक्ष" (Birches) में लिखा है :

मृत्यु के बाद
भाग्य के छल से मुक्त
पुनः वापस
आना चाहता हूँ
पार्ट बजाने
इस धरा पर।
यह धरती है
सर्वाधिक उपयुक्त
प्यार का आँगन
और
इन्सानियत
तथा
कर्म का मानस मन्दिर भी।

वाकेल लिन्ड्से (Vachel Lindsay) "चीनी बुलबुल" (The Chines Nightingale) नामक अपनी कविता में लिखता है :

क्या याद है तुम्हें।
अपने पूर्व जीवन की कहानी।
महान् चीनी शासक के,
तुम्हीं थे उत्तराधिकारी।।
हान के पुत्र थे हम,
गहन विषय प्रणेता।
शहतूत की छायों के नीचे
बीता था बचपन मेरा।।

बेंजमिन फ्रैंकलिन, बाइस वर्ष की मात्र उम्र में अपनी एक कविता में लिखता है :

प्रकाशक का शरीर
और पुस्तक के फटे कवर
नदारत है सन्दर्भ सूची
ढेर सारे कार्य........
नहीं है इनका अन्त,
पुनः संशोधित
लेखक का संस्करण
बनकर आयेगी
एक बार— जीवन पुस्तक।

समाप्त

आधार ग्रंथ

Some Reference Books

Following are some of the books which the author consulted. The author thankfully acknowledges the help from these.

1. Anatomy of the Hypothalamus, Ed. By Peter J.Morgane and Jaak Pan Ksepp, Hand book of Hypothalamus (in Three Volumes), Marcel Dekker Inc; New York, 1979.
2. Arnold Toynbee and Arthur Koestler and others, Life After Death, Weidenfeld and Nicholson, London, 1977.
3. Adinarayan, S.P.(1962) The Human Mind, Hutchinson University Library, London.
4. Anand, B.K; G.S.Chhina, and B.Singh, 1961. Some aspects of electroencephalographic studies on yogis. Electroenceph. Clin Neurophysiol., 134:452-56.
5. Annie Besant, Psychology 2nd Edition, Loss Angles, California, Theosophical Publishing House, 1919, pp 230-232.
6. Annie Besant, Psychology Supra pp.212-213.
7. Annie Besant, Psychology 2nd Edition, 1919 Theosophical Publishing House, Los Angles, California pp.210-211.
8. Adrian E.D.: The Physical Background of Perception, Clarendon Press, Oxford, p95.
9. Arnold Toynbee, Arthur Koestler and others, Life After Death, Weidenfeld and Nicholson, London, January, 1977. Second Impression, pp. 194-195.
10. Anand B.K., G.S. Anand and B.Singh, 1961, Some aspects of electroenceph, Clin Neurophysiol-134.
11. Brain and Mind, 1979 Ciba Foundation Symposium 69 (New series), Exarpta Medica, New York, 1979.
12. Benito F.Reyes, Scientific Evidence of the Existence of the Soul, A Quest Book, Pub. House. Wheaton, III., U.S.A., 1970.
13. Bargmann, W. and Scharrer, E.(1951). The site of Origin of the hormones of the posterior pituitary, Arn Scientist 39.
14. Bronk, D.W., Lewy, F.H., and Larrabee, M.G. The hypothalamic control of sympathetic rythems. Am. 7. Physiol., 116, 15, 1936.
15. Barnodes S.H. 'Multiple Steps in the Biology of Memory' in Schmitt (eds) 1970. Vol.2., p.272-278.
16. Charles Furst, Origins of the Mind, Mind-Brain connections. Prentice-Hall Inc., Eaglewood Cliffs, New Jersey, 1979.
17. Clande A. Villee, Biology, fourth edition. W.B.Saunders Company, Philadelphia 1962. P. 452.
18. Catherin Parker Anthony and Norma Jane Kolthoff, Text-book of Anatomy and Physiology, The G.V.Mosby Co., Saint Louis, 1975.
19. Cross, B.A.; and Green, J.B. (1959) Activity of Single neuron in hypothalamus. J.Physiology, 148.
20. Crighton, D.B. Schneider, H.P.G., and Mc Cann, S.M.(1970) Localisation of L.H. releasing factor in the hypothalamus and neurohypophysis as determined by an in vitro method. Endocrinology, 87.
21. Datey K.K., S.N.Deshmukh, C.P.Dalvi and S.L.Vinekar, 1969, "Shavasana" - A yogic exercise in the management of hypertension. Angiology 20:325-333.

22. Du Prel : 'Philosophy of Mysticism', English Translation by C.C.Massey, London, 1889.
23. Del Mar, 'Biology To-day', California. CRM. Books, 1972, Page XXIV.
24. Due Prel's 'Philosophy of Mysticism' quoted by Annie Besant in her book 'Phychology', p.238.
25. Edwin Grant Conklin. 'Hereditary and Environment in the Development of Men' Princeton University Press, Princeton, p 39-60.
26. Erwin Chartaff; Nucleic Acids as Carriers of Biological Information', The origin of Life on Earth'. 298-299.
27. Edmond W.Sinnot : 'The Bridge of Life From Matter to Spirit' Simon and Schuster, New York, 1966. P.128.
28. Edmond W.Sinnot, L.G.Dunn and Theodosius Dobzhausky 'Principles of Genetics' Fifth Edition, Mc Graw Hill Book Company Inc. New York 1958 p.7.
29. Eceles J.C. 'Facing Reality: Philosophical Adventures of a Brain Scientist' Springer-Verlag, New York, 1970. P.210 Also Szentagothai J.
30. Grant G.F. and Vale, W(1974) Hypothalamic Control of anterior pituitary hormone secretion-Chacterised Hypothalamic peptides. Topics in Experimental Endocrinology', Vol.2, V.James and L.Martin (Eds), Academic, New York.
31. Gharote., M.L. 1971b. Energy expenditure during deep meditative state. Yoga-Mimahisa 14:1x2:57-62.
32. G.Delance, Documents Pour Servival. Etade de la Re. Incarnate a Evitions de la B.P.S.Paris, 1924.
33. Gita Ch. 12 Verse 17.
34. Gita Ch. 12 Verse 18-19.
35. Harris, R.E. and Singer, M.T. 'Interaction of personality and stress in the Pathogenesis of essential hypertension, Hypertension Proc. Council for high Blood Pressure Research, 1967, 16,104.
36. Heine, B.E., Sainsbury, P; and Clynoweth, R.C., 'Hypertension and Emotional disturbance'. J.Psych. Res., 1969, 7, 119.
37. Head H. 'The Conception of nervous mental energy II Vigilence: A Physilogical state of Nervous System.' Br.J.Psychol, 1923, 14, 126.
38. Herbert Sorension, Marguerite Malm, Garlic A. Forehand, (1971) 'Psychology for Living', Tata Mc Graw Hill Publishing Company Ltd., Bombay, New Delhi.
39. Horward C.Warren 'Dictionary of Philosophy' Cambridge Honghton Milfin Co., The Riverside Press, 1934, p.128.
40. Hyden H. 'Biochemical Changes Accompanying Learning', in Quarton Melenchuk and Schmitt(eds.) 1967, p.765-771.
41. Hyden Holger: 'Changes in RNA Content and base composition in Cortical neurons of rats in a learning experiment, involving transfer of handedness'. Proceedings of The National Academy of Science, 52, p.1030-35.
42. Haddock, Somnolism and Psychism. P.213 as quoted by Annie Besant in her book 'Psychology'. P.238.
43. Haddock: 'Somnolism and Psychism.' London 1851.
44. H.W.B. Joseph: 'Introduction to Logic'. Oxford Clarendon Press. P.403.
45. Ibid, p.17.
46. John C.Eccles, 'Facing Reality, Philosophical Adventure by a Brain Scientist, Springer-Verlag, New York, 1970.

47. (i) James H. Hyslop 'Science and future life'.
(ii) F.W.H. Myers 'Human Personality and its survival after bodily death'.
48. James M.Ford and James E. Monroe, 'Living Systems, Principles and Relationships', Canefield Press, Harper and Row Publishers Inc; New York, 1977.
49. J.B.Rhine: 'The Reach of The Mind', William Slvane Associates. Inc. 1947, New York.
50. Julian Huxley: 'What Dare I think' (This is quoted in Re-incarnation, An East and West Arthrology) compiled and edited by Joseph Head and S.J.Cranston, The Julian Press, Inc. New York. 1961. P.292-93.
51. Keith and Compbell, 'Body and Mind', Macmillan, 1970.
52. Karl R.Popper and John C.Eccles. 'The Self and its Brain', Springer International, Springer Verlag, New York, Inc; 1977.
53. Kocher, H.C.1972 A Yoga practices as a variable in neuroticism, Anxiety and Hostility. Yoga-Mimansa 15:2:37-47.
54. Kocher; H.C. and Vijayendra Pratap, 1972. 'Anxiety Level and Yogic Practices. Yoga-Mimansa' 14:1x2:34-40.
55. Kornhuber H.H. 'Neural Control of Input into Long-term Memory: Limbic System and Amnestic Syndrome in man', in Zippel (eds) 1973, p.1-22.
56. Livingstone, A, and Lederis, K.(1971) 'Functional ultra structure of the neurohypophyses in sub-cellular organisation and Function in Endocrine Tissue', H.Heller and K.Lederis (Eds) Cambridge University Press, Cambridge, U.K.
57. Lashley K.S.: 'In search of the Engram', Symposia of the Society for Experimental Biology. 4; 1950, p.454-462.
58. Marrin R.Barnum, 'Human Form and Function', - A Basic Approach, Saint Louis, Good year Pub. Co., Inc; Santa Monica, California, 1979.
59. M.C.Wittrock, Joseph E.Bogen, Jackson Beatty and others. 'The Human Brain', Prentice hall Inc.; 1977.
60. Mordkoff. A.M. and Passons, O.A. 'The Coronory personality a critique'. Psychosom. Med., 1967, 29, 1.
61. Mac Millan Co., New York.
62. Milner B: Disorders of Learning and Memory after temporal lobe lesious in man in Whitty and Tonquive(eds), 1966, p.109-133.
63. Milner B: 'Amnesia Following operation on the Temporal Lobes', in Whitty and Zanguive (eds), 1966. P.109-133.
64. 'Physiology of Hypothalamus', ed.by Peter J.Morgane and Jaak Panksepp.
65. Nav Bharat Times, New Delhi, dated 24th March, 1976.
66. 'Physiology, Emotion and Psychosomatic illness', Ciba.
67. Foundation Symposium 8(new series) 1972, Associated Scientific Publishers, Amsterdam, London, New York.
68. Pearson, D; Shanberg, A; Osinchak J. and Sachs, H. (1975) The Hypothalamus euro-hypophysical complex in organ culture, morpholgic and bio-chemical characteristics. Endocrinology 96.
69. P.D.Ouspensky Tertium Organnum. The Third Cannon of Thought. A Key to the Erigmas of the World. Third American Edition, New York. Alfred A. Knopf. 1945, p.164.
70. Penfield W. and Perot P.'The Brains, record of auditory and visual experience'. Brain 86, p.596-696.

71. Penfield Wilder 'Science, The arts and spirit' Trans. The Royal Society of Canada. 7(1969). P.73-83.
72. Patanjali Yoga Philosophy 1-11. Anubhut Vishaya Sampramoshah Smriti.
73. Russek. H.I. 'Emotional Stress and Coronory heart disease in American Physician'. Am.J.Med.Sci;1960, 240, 711.
74. Raymond A.Moody.Jr., 'Life After Life', Bantam Books, New York, 1977.
75. Renad, L.P.; Martin, J.B; and Brazeaus, Hypothalamic releasing factors, p.1976; evidence for a regulatory action on control neurons and behaviour Pharmocol, Biochem Behaviour 5(Supp.I)
76. Selye, H. 'Stress in Health and Disease'. Butterworths, Reading, Massachusetts 1976.
77. Selye H. 'Forty years of stress research. The Principal remaining problems and misconceptions'. Can.Med.Assoc. J.1976; 115, 53.
78. Stress and the Heart: Interaction of the Cardiovasular system, Behavioural State and Psychotropic Drugs', Ed. David Wheatlay, M.A;M.D;M.R.C.Psychi, Raven Press, 1140 Avenues of the American, New York-10036.
79. Seyle, H. 'The Stress of Life'. Mc Graw Hill, New York, 1976.
80. Russek, H.I; 'Behavioural Patterns, stress and Coronary heart disease', Am. Family Physician, April 1974, 9.
81. Sokoloff, L, 'Circulation and Metabolism of brain in relation to the process of aging: In : The process of Aging in the Nervous System, Ed.by J.E.Birren, H.A.Imus, and W.F.Windle, Charles C.Thomas, Springfield,III.1959.
82. Swami Abhedanand: 'Life beyond Death'. Rama Krishna Vedanta Math, Calcutta, 1971.
83. Sherrington C.S.: 'Man on His Nature', Cambridge University Press London, 1940, p.43
84. Stainslar Groff, Joan Halifax, Elizabeth Kubler Ross etc.
85. 'Treatise of Human Nature', B.K.I PART-IV Page 250 Alkins Philosophy of Hume-Vide Roger's - A Student's History of Philosophy, p.384.
86. The Scotsman, February 26, 1937, p.16 Cols.3-4.
87. The Theodosices Dobzhansky, The New American Library Inc; New York, 1967, p.126.
88. Unger George : 'Molecular Coding of Information in The Nervous System', Stadler symposium, University of Missouri; Page-6.
89. Vincent H.Goddis 'With Brain Destroyed. They live and think'. Fate Vol.I No.2 Summer, 1948, p.81.
90. Valverde F: 'Structural Changes in The area Striate of mouse after uncleation? Experimental Brain Research, 5(1968) p.274-292.
91. Wilse B.Welbb.Sleep, The Gentle Tyrant, Prentice Hall Inc; 1975.
92. Weiss, E.Psychosomatic aspects of hypertension,J.A.M.A.; 1942; 120, 1081.
93. Wallace, R.K. 1970, 'Pysiological effects of Transcendental Meditation. Science', 167:1751, 1754.
94. Watson J.D.Molecular Biology of The Gene 282-292.
95. W.B.Pillsbury: 'The Essentials of Psychology', MacMillan Company, New York, 1930.
96. Winslow: 'Diseases of The Brain and Mind.'
97. Wallace R.K.1970. Physiological effects of Transcendental Meditation, Science, 167:1751-54.
98. Many other Scientific, yogic and other Journals.

ॐशान्ति